भूदान-गंगा

[तृतीय खण्ड]

(जनवरी '५५ से सितम्बर '५५ तक)

विनोबा

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (बम्बई-राज्य)

मुद्रक :
बलदेवदास,
संसार प्रेस,
काशीपुरा, बनारस

पहली बार : १०,०००
फरवरी, १९५७
मूल्य : डेढ़ रुपया

अन्य प्राप्ति-स्थान
अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

वाराणसी — गांधी-भवन
वर्धा — हैदराबाद

निवेदन

पू० विनोबाजी के गत साढ़े पाँच वर्षों के प्रवचनों में से महत्त्व-पूर्ण प्रवचन तथा कुछ प्रवचनों के महत्त्वपूर्ण अंश चुनकर यह संकलन तैयार किया गया है। संकलन के काम में पू० विनोबाजी का मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ है। पोचमपल्ली, १८-४-'५१ से भूदान-गंगा की धारा प्रवाहित हुई। देश के विभिन्न भागों में होती हुई यह गंगा सतत वह रही है।

भूदान-गंगा के दो खण्ड पहले प्रकाशित हो चुके हैं। पहले खण्ड में पोचमपल्ली से दिल्ली, उत्तरप्रदेश तथा बिहार का कुछ काल यानी सन् '५२ के अन्त तक का काल लिया गया है। दूसरे खण्ड में बिहार के शेष २ वर्षों का यानी सन् '५३ व '५४ का काल लिया गया। इस तीसरे खण्ड में बंगाल और उत्कल की पद-यात्रा का काल यानी जनवरी '५५ से सितंबर '५५ तक का काल लिया गया है। इसी तरह अन्य-अन्य क्षेत्रों की यात्राओं के खण्ड क्रमशः प्रकाशित किये जायँगे।

संकलन के लिए अधिक-से-अधिक सामग्री प्राप्त करने की चेष्टा की गयी है। फिर भी कुछ अंश अप्राप्य रहा।

भूदान-आरोहण का इतिहास, सर्वोदय-विचार के सभी पहलुओं का दर्शन तथा शंका-समाधान आदि दृष्टिकोण ध्यान में रखकर यह संकलन किया गया है। इसमें कहीं-कहीं पुनरुक्ति भी दिखेगी। किन्तु रस-हानि न हो, इस दृष्टि से उसे रखना पड़ा है।

संकलन का आकार सीमा से न बढ़े, इसकी ओर भी ध्यान देना पड़ा है। यद्यपि यह संकलन एक दृष्टि से पूर्ण माना जायगा,

तथापि उसे परिपूर्ण बनाने के लिए जिज्ञासु पाठकों को कुछ अन्य भूदान-साहित्य का भी अध्ययन करना पड़ेगा। सर्व-सेवा-संघ की ओर से प्रकाशित १. कार्यकर्ता-पाथेय, २. साहित्यिकों से, ३. सर्वोदय के आधार, ४. संपत्तिदान-यज्ञ, ५. जीवन-दान, ६. शिक्षण-विचार और सस्ता-साहित्य-मण्डल की ओर से प्रकाशित १. सर्वोदय का घोषणा-पत्र, २. सर्वोदय-के सेवकों से जैसी पुस्तकों को इस संकलन का परिशिष्ट माना जा सकता है।

संकलन के कार्य में यद्यपि पू० विनोबाजी का सतत मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है, फिर भी विचार-समुद्र से मौक्तिक चुनने का काम जिसे करना पड़ा, वह इस कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य थी। त्रुटियों के लिए क्षमा-याचना।

—निर्मला देशपांडे

अनुक्रम

बंगाल

[१ जनवरी '५५ से २५ जनवरी '५५ तक]

भूदान-गंगा

(तृतीय खंड)

अहिंसायुक्त कर्मयोग : १ :

देख रहा हूँ कि बंगाल की इस प्रेममय भूमि मे हमारी सभाओं मे लोग अत्यन्त शान्ति और एकाग्रभाव से हमारी बात सुनते हैं। श्री चारु बाबू ने कहा कि 'इसका कारण यह है कि यहाँ के लोगों को प्यास लगी है और पानी पिलाने का कार्यक्रम शुरू हुआ है।' उनकी यह बात सही है। इस समय न केवल बंगाल को, बल्कि सारे भारत को प्यास लगी है। वास्तव में भूमि का मसला भारत तक ही सीमित नहीं, सारे एशिया के लिए है। किन्तु हिन्दुस्तान मे गाँव-गाँव ग्रामोद्योग टूट गये, इसलिए यहाँ जमीन की प्यास बहुत ज्यादा बढ़ रही है। ग्रामोद्योग तो हमे खड़े करने ही होंगे, भूमि की प्यास भी मिटानी होगी। इसके बिना शान्ति नहीं होगी और न लक्ष्मी ही बढ़ेगी।

जमीन का ही नहीं, प्रेम का भी बँटवारा

बंगाल में तो इसकी और भी ज्यादा जरूरत है, क्योंकि यहाँ कई मसले पैदा हुए हैं। आये हुए शरणार्थियों को बसाने का काम करना है। फिर भी हमारे काम की ओर यहाँ लोगों का ध्यान सिर्फ इसलिए नहीं जाता कि भूमि बाँटी जा रही है; बल्कि इसलिए कि भूमि प्रेम से बाँटी जा रही है। भूमि बाँटने का कार्य कई प्रकार से हो सकता है। एक तो कत्ल का प्रकार है, जो दूसरे देशों में हुआ और यहाँ भी शुरू हुआ था। किन्तु उस रास्ते से दुनिया का भला नहीं हो सकता, यह बात वे जानते है। इसीलिए वे भूदान की तरफ अत्यन्त उत्सुकता से देखते हैं।

दूसरा प्रकार है, कानून से जमीन ली जाय और गरीबों को बाँटी जाय। किन्तु कानून से जमीन तो मिल सकती है, पर लोगों के दिल नहीं मिल सकते। इसके विपरीत इस आन्दोलन में सिर्फ जमीन का बँटवारा नहीं होता, प्रेम का भी बँटवारा होता है। अलावा इसके अगर जमीन कानून से ली जाय, तो सरकार कहती है कि उसे चार लाख एकड़ से ज्यादा भूमि नहीं मिलेगी और हम तो कुल जमीन का छठा हिस्सा पाने की उम्मीद रखते हैं। कानून पर विश्वास रखनेवाले लोग पूछते हैं, आप छठा हिस्सा माँगते हैं, लेकिन आपको उसे देने कौन बैठा है? इस पर हम जवाब देते हैं कि जब भगवान् हमें माँगने की हिम्मत देता है, तो वह लोगों को देने की बुद्धि भी जरूर देगा। आपने देखा कि अभी तक हक के तौर पर जमीन माँगनेवाला कोई नहीं निकला था। अब एक शख्स ऐसा निकला, जिसे भगवान् ने जमीन माँगने की प्रेरणा दी। परिणाम यह हुआ कि ऐसे मनुष्य को पागल समझकर राँची भेजने के बदले लोगों ने ३६ लाख एकड़ जमीन दे दी। कितने आश्चर्य की बात है कि एक ऐसे शख्स को, जिसके हाथ में सत्ता नहीं और न जिसकी अपनी कोई संस्था ही है, लोग लाखों एकड़ जमीन दे रहे हैं। अवश्य ही हमें सभी दलवाले और सर्व-सेवा-संघ मदद देते हैं, पर हमारा किसी संस्था पर अधिकार नहीं है। जिसका कोई अधिकार नहीं है, जिसके हाथ में कोई सत्ता नहीं, आखिर उसे लोग जमीन इसीलिए देते हैं कि भगवान् वैसा चाहता है। इस तरह लोगों को दान देना लाजिमी है। हमारा विश्वास है कि इसका पैगाम जब लोगों के कानों तक पहुँचेगा, तो लोग लाखों हाथों से देने लगेंगे। फिर हमसे लिया भी न जा सकेगा।

'वन्दे मातरम्' का अर्थ क्या?

यह जो काम हमने उठाया है, वह बंगाल के लिए नया नहीं है। यह बात तो बंगाल से ही निकली है, ऐसा हम कहते हैं। आप जानते हैं कि ऋषि बंकिम ने एक मंत्र दिया, जो सारे हिन्दुस्तान में फैल गया। उसीके परिणामस्वरूप

में आये हैं, फिर भी हमें वह मंत्र गाँव-गाँव सुनने को मिलता है। वह मन्त्र है, 'वन्दे मातरम्'। हम यही कहते हैं कि 'वन्दे मातरम्' का अर्थ समझ लीजिये। 'माता भूमि है और हम सभी उसके पुत्र हैं'—यह तो वेदों ने कहा था और यही बात ऋषि बंकिम के मुँह से भी निकली। माता का उसके संतान के साथ संयोग न रहकर वियोग रहे, तो वह कितनी दुःखी होगी, यह सोचने की बात है। हम कहते थे 'माता भूमिः', पर आज बात करते हैं, भूमिपति की। यह कितनी बेहूदा और बेजा बात है कि जिसे हम माता कहें, उसीके स्वामी बन बैठे हैं। हम तो कहते हैं कि 'भूस्वामी' या 'भूपति' बदतर गाली है। अगर भूमि माता है, तो उसे वंदन करना चाहिए। हम 'वन्दे मातरम्' कहते हैं, तो उसकी सेवा करने का मौका हरएक को मिलना ही चाहिए। यहाँ बैठे हुए कुछ बच्चों में भूमिहीन बच्चे हों, तो क्या उन्हें माता के स्तनपान का अधिकार नहीं मिलना चाहिए? हम यह बड़ा अधर्म और नास्तिकता समझते हैं कि लोग भूमि की मालकियत पकड़े बैठे हैं। इसलिए फौरन सबको भूमि बाँट देनी चाहिए।

'वन्दे भ्रातरम्' भी आवश्यक

लोग पूछते हैं कि हमारे यहाँ जमीन की कमी है, हम दरिद्र हैं, तो गरीबी बाँटने से क्या लाभ होगा? अगर लक्ष्मी बहुत होती, हम लक्ष्मीवान् होते, तो उसे बाँटने में मजा भी आता। कुछ लोग कहते हैं कि 'हिंदुस्तान में दौलत बढ़ने दो, फिर बाँटने की बात निकालो।' लेकिन ऐसी बात हम परिवार में तो नहीं कहते। परिवार में अगर दूध कम हो, तो उसे माँ पी ले और बच्चे से कहे, 'दूध कम है, इसलिए मैंने पी लिया; जब बढ़ेगा तो सबको मिलेगा', तो आप उसे माँ कहेंगे या राक्षसी? निश्चय ही यह आसुरी विचार है कि लक्ष्मी बढ़ने के बाद बँटवारा होगा। हमारे पास जो है, उसका बँटवारा करो, तभी लक्ष्मी बढ़ेगी। अगर हम श्रीमान् हों, तो लक्ष्मी बाँटेंगे; शक्तिमान् हों, तो शक्ति बाँटेंगे और अगर दरिद्र हों, तो दारिद्र्य भी बाँटेंगे। बाँट करके ही भाग लेंगे। यह धर्म है कि हम पड़ोसी से प्यार करके ही जी सकते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था कि हम वन्दे मातरम् तो कहते हैं, लेकिन जरूरत है 'वन्दे भ्रातरम्' की। अगर हम पड़ोसी की चिंता नहीं

करते, अपने भाई पर प्यार नहीं करते और सारे देश, दुनिया या विश्व के प्रेम की बातें करते हैं, तो उसमें कोई सार नहीं है। बंगाल में प्रेम-भावना की कोई कमी नहीं, परन्तु बात रुकी है। लोगों के हृदय में प्रेम तो है, लेकिन उसके अनुसार कोई कार्यक्रम नहीं बनाया गया है।

क्रान्ति का सस्ता सौदा

प्रेम जब क्रियाशील होता है, तभी उसमें ताकत आती है। हमारे इस बंगाल में प्रेम की नदियाँ बही हैं, पर उन नदियों से खेती को लाभ नहीं पहुँचा। अब उस प्रेम-भावना और भक्ति-भावना को क्रिया का रूप देने का मौका मिला है। किसी माता को पुष्टिकारक खुराक मिले, तो उसके स्तन में दूध ज्यादा रहता है और किसीको वह न मिले, तो स्तन में दूध कम रहता है। फिर भी जिसे दूध विशेष हो, वह अपने बच्चे को पिलाती है और जिसे कम है, वह भी पिलाती है; क्योंकि छाती में प्रेम रहने पर पिलाये बगैर रहा नहीं जाता। इसलिए हम कहते हैं कि जिसके पास ज्यादा जमीन है, वह ज्यादा दान देगा और जिसके पास कम है, वह कम देगा। लेकिन अपने पास जो है, उसका छठा हिस्सा देना ही होगा। क्रान्ति का इतना सस्ता सौदा कहीं नहीं होगा। दुनिया में जो भी क्रान्ति आयी, वह तोड-फोड करके ही आयी। लेकिन यह क्रान्ति सिर्फ छठा हिस्सा लेकर शान्त हो जाना चाहती है। मान लें कि हर घर में पॉच पाडव हैं। तो हमने कहा कि उन पॉच पाण्डवों के साथ एक छठा भी है और उसे उसका हिस्सा देना चाहिए। आप जानते होंगे कि पाण्डव पॉच नहीं थे, एक छठा भी रहा, जिसका नाम 'कर्ण' था। लेकिन उसकी परवाह नहीं की गयी। फलस्वरूप महाभारत का बड़ा भारी युद्ध हुआ। हम हर घरवाले से कहते हैं कि 'पाण्डवो, तुम्हारा छठा भाई है, पर वह तुम्हें नहीं दीखता। उसे भी तुम दो और उसकी परवाह करो। अगर उस भाई की परवाह करोगे, तो गॉव की शक्ति बढ़ेगी।'

दारिद्र्य मिटाकर नारायण की प्रतिष्ठा

'दरिद्रनारायण' यह शब्द भी इसी भूमि में पैदा हुआ है। स्वामी विवेकानंद

की वाणी से ही इसका उद्‌गम हुआ। फिर इसी शब्द का उपयोग देशबन्धु चित्तरंजनदास ने किया। बाद में इसे गांधीजी ने उठा लिया और हिन्दुस्तान के घरों में पहुँचा दिया। अब यह शब्द घर-घर पहुँच गया है। पर इसके अनुसार काम करना बाकी है। अगर हम सब मनोभाव से दरिद्रनारायण की सेवा करेंगे, तो 'नारायण' बाकी रहेगा और 'दारिद्रय' मिट जायगा। तब जो लोग रहेंगे, वे सभी नारायण-रूप होंगे। सब समान होंगे। यह सब करने का जो तरीका है, वह है भारतीय संस्कृति का तरीका, दान का तरीका, प्रेम का तरीका!

बंगाल को अहिंसायुक्त कर्मयोग आवश्यक

यहाँ वैष्णवों ने भक्तिभाव पैदा किया, पर उसमें निष्क्रियता थी। इसलिए जरूरत है कि देश में सक्रियता निर्माण हो, कर्मयोग की प्रेरणा हो। यह बात बंगाल में पहले किसीको भी नहीं सूझी, ऐसी बात नहीं। यहाँ सक्रियता तो आ गयी, पर वह हिंसक थी और उसने अत्याचार का रूप लिया। वैष्णवों की भक्तिभावयुक्त निष्क्रियता से काम बनता न देखकर बंगाल के तरुणों ने हिंसक कर्मयोग शुरू किया। इससे एक दोष तो मिट गया, पर नया दोष आ गया। निष्क्रियता तो मिट गयी, पर अहिंसा के बदले हिंसा आ गयी। मेरा मानना है कि इस हिंसावाद से शक्ति बढ़ने के बजाय क्षीण ही हो गयी। अब हमें वैष्णवों की अहिंसा और तरुणों की सक्रियता, दोनों लेकर 'अहिंसायुक्त कर्मयोग' चलाना होगा। भूदान का यह आंदोलन 'अहिंसायुक्त कर्मयोग' है। इससे सारे बंगाल की चित्तशुद्धि होगी और प्राणशक्ति बढ़ेगी। चित्तशुद्धि करने और प्राणशक्ति बढ़ाने का यह काम कोई कानून नहीं कर सकता। यह तो जनशक्ति से धर्म-प्रचार द्वारा ही होगा।

लोग बार-बार हमसे पूछते हैं और आज भी पूछा गया कि अगर कानून से जमीन का बँटवारा हो जाय, तो नाहक पैदल घूमने की जरूरत नहीं है। लेकिन यह ध्यान में रखिये कि कानून या दण्डशक्ति में कोई जादू या ताकत नहीं है। समाज में कोई भी शांतिकार्य न तो कभी कानून से हुआ और न होनेवाला ही है। क्रांति सदैव जनशक्ति से होती है और फिर उसके अनुसार कानून बनता है।

इस समय हिन्दुस्तान को शातिमय क्राति की जरूरत है। उससे कम चीज से काम न चलेगा।

दान से दौलत बढ़ेगी

बंगाल मे करीब-करीब १५० लाख एकड जमीन है। हम कबूल करते है कि जनसंख्या के हिसाब से यह ज्यादा नहीं है। लेकिन यह हालत सिर्फ बंगाल की ही नहीं, उत्तर-बिहार की भी यही हालत है। सारे सारन जिले मे हर वर्ग-मील के पीछे एक हजार से अधिक जनसख्या है। इसका अर्थ यह हुआ कि हर मनुष्य के पीछे आधा एकड़ जमीन है। लेकिन हम कहते है कि इस डेढ़ सौ लाख एकड जमीन मे से पचीस लाख एकड़ हमे दे दीजिये। लोग पूछेगे कि 'मान लीजिये किसीके पास छह एकड़ जमीन है, उसका वह एक एकड़ दे दे, तो उसका कैसे चलेगा?' किन्तु हम कहते है कि जमीन का रकबा घट गया, इतने से फसल घटने का कोई कारण नहीं है। किसान जानता है कि अगर छह मे से एक एकड़ दे दिया, तो पॉच एकड़ मे उतनी खाद डालने और उतना ही परिश्रम करने से छह एकड़ की फसल की जा सकती है। जापान मे हिन्दुस्तान से भी कम जमीन है। फिर भी वहॉ हर एकड से दुगुनी फसल पैदा होती है। इसलिए हार खाने की जरूरत नहीं है। 'हरिनाम ले, अपना छठा हिस्सा दान दे दं', तो भगवान् की कृपा से दौलत बढ़ेगी ही। यह भी समझने की जरूरत है कि गॉव मे प्रेम बढ़े और देने-लेनेवाले एक हो जायें, तो मजदूर अधिक प्रेम से काम करेगे। हमने बिहार मे देखा कि जहॉ मजदूरों के पास थोडी जमीन है, वहॉ भी इतनी फसल होती है, जितनी बड़े-बड़े खेतो मे भी नही होती। कारण मजदूरों को जमीन मिलने पर तो वहॉ वे खुद काम करते है और उनकी औरतें और लड़के-बच्चे भी काम करते हैं।

जमीनवाले कानून करने के लिए तैयार हों

लोग पूछते है कि 'हम जमीन देंगे, तो बची जमीन पर काश्त कौन करेगा', तो हम भी पूछते है कि लोगों को जमीन से वंचित रखकर क्या आप यह करते है कि कायम के लिए आपको मजदूर मिलेंगे? अनुभव तो यह

है कि उसे अगर जमीन मिलती है, तो वह अपनी जमीन पर तो काम करता ही है, और आपकी भूमि पर भी काम करेगा। उसे मजदूरी में हिस्सा भी देना पड़ेगा। वह उसे प्यार से देगा, तो वह आपकी जमीन पर भी अत्यन्त कृतज्ञता से काम करेगा।

लेकिन एक बात हम कबूल करते हैं कि कायम के लिए, रोजे कयामत तक आपके खेत पर मजदूर काम करने के लिए आयें—यह नहीं होगा। आपको अपने लड़के को खेती का काम, खेती की उपासना सिखानी होगी। आज लोग जमीन के मालिक बनते और शहर में रहते हैं। जमीन गाँव में पड़ी है, उसे देखते भी नहीं। हम कहते हैं कि अगर वे जमीन का दान कर दें, तो सभी दृष्टियों से कल्याण होगा। जब मजदूर दूसरों के खेतों में जाते हैं, तो उन्हें पूरी मजदूरी नहीं मिलती। इसलिए वे काम भी पूरा नहीं करते। मुश्किल से ८ घंटे में ४ घंटे का काम करते हैं। मजदूरों के हाथ में काम है, तो वे काम की चोरी करते हैं और मालिक के हाथ में दाम है, तो वह दाम की चोरी करता है। दोनों एक-दूसरे को ठगते और दोनों मिलकर देश को ठगते हैं। परिणाम यह होता है कि हमारे देश की फसल कम होती है। हमारा कहना है कि भूदान से हिंदुस्तान में लक्ष्मी बढ़ेगी, प्रीति बढ़ेगी। जहाँ लक्ष्मी, शक्ति, प्रीति, तीनों आ जायँ, वहाँ दुनिया में और कौन सी चीज प्राप्त करने की रह जायगी ?

चनपुरिया
३-१-'५५

अहिंसा के तीन अर्थ

आज दुनिया में हिंसा की शक्तियाँ बढ़ रही हैं और बहुत सारे देश हिंसक शस्त्रास्त्र बढ़ाने में प्रवृत्त हैं। ऐसी हालत में हमें क्या करना चाहिए? या तो हम भी शस्त्रास्त्र बढ़ाने लग जायें या दूसरी कोई शक्ति निर्माण करें, जो शस्त्रशक्ति से बढ़कर हो। अगर हम भी शस्त्रास्त्र सज्जित हो जायें और शस्त्र शक्ति बढ़ाने में ही देश की सारी ताकत लगा दें, तो हमें सेना पर करोड़ों रुपया खर्च करना होगा। अमेरिका या रूस को गुरु बनाना होगा। उनके चरणों में बैठकर उनका शिष्यत्व ग्रहण करना होगा। जैसे वे नचायेंगे, वैसे नाचना होगा। हमें यहाँ के दरिद्र लोगों की परवाह या उनके उत्थान की चिन्ता न करनी होगी, बल्कि सारा ध्यान सेना की तरफ लगाना होगा। फिर भी इस देश में अपार दारिद्रय है, इसलिए अपनी शक्ति से दुनिया के साथ टक्कर देनेवाली सेना हम तैयार नहीं कर सकेंगे। तब दूसरे देशों का आश्रय लेना होगा, जिसका अर्थ यह होगा कि हम नाममात्र के स्वतन्त्र रहेंगे। वास्तव में हमें पराधीन, परतन्त्र या गुलाम बनकर ही रहना होगा। अगर हिंसा की ताकत पर ही हमारा विश्वास है, तो हमें यही करना होगा। किन्तु यदि यह सब भयानक मालूम होता हो, तो हमें दूसरी नयी शक्ति बढ़ानी होगी और वह होगी, अहिंसा की शक्ति।

अहिंसा के तीन अर्थ

आजकल हम अहिंसा का अर्थ यही समझते हैं कि 'हिंसा न करना'। किन्तु उसका इतना ही 'निगेटिव' (अभावात्मक) अर्थ नहीं। उसके तीन अर्थ हैं। पहला अर्थ है, निर्भयता या निडर बनना; दूसरा है, प्रेम और सहयोग करना तथा तीसरा अर्थ है, रचनात्मक कार्य में श्रद्धा रखना। अगर हम निर्भय बनते हैं, आत्मशक्ति पर विश्वास करते हैं, प्रेम और सहयोग से सारे समाज को एकत्र करते तथा रचनात्मक काम में लगाते हैं, तभी सच्चे अर्थ में हमारी ताकत [illegible]। इसलिए ये तीनों बातें हमें करनी होंगी।

हम न किसीसे डरेंगे, न किसीको डरायेंगे

हिंसा मे विश्वास रखनेवाले सदा भयभीत रहते हैं। वे शरीर को ही आत्मा समझते हैं। शरीर को कोई मारे या पीटे, तो उसकी शरण आ जाते है। बाप, जब बच्चो को पीटता या गुरु जब शिष्य की ताड़ना करता है, तो वह उसे हिंसावश होने की तालीम देता है। यह सच है कि बाप बेटे को पीटता है, तो उसकी भलाई के लिए पीटता है; लेकिन उससे वह उसे डरपोक ही बनाता है। वह कहता है कि तेरे शरीर को कोई पीड़ा दे, तो उसकी शरण में चले जाओ। यह तालीम भयभीत बनाती है। अगर भयभीत बनाकर कोई अच्छा काम हो जाय, तो उसमें कोई सार नहीं; निर्भय होकर ही सदा आगे बढ़ना चाहिए। अगर हम अपनी अहिंसा की शक्ति बढ़ाना चाहते हैं, तो यह व्रत लेना होगा कि 'हम न तो किसीसे डरेंगे और न किसीको डरायेगे ही।' जो दूसरों को डरायेगा, धमकायेगा, वह खुद भी डरेगा। इसलिए हम दूसरों को डरायेंगे नहीं और न दूसरों से डरेंगे ही। हमे शिक्षालय और विद्यालय मे यही तालीम देनी होगी। गुरु शिष्य से कहेगा कि तुम्हे कोई डरा-धमकाकर तालीम दे, तो मत मानो। बाप भी बेटे से कहेगा कि कोई धमकाकर या सोटा लेकर पीटता है, तो मत मानो; अगर विचार से समझाता हो, तो मानो। कोई मारे-पीटे या कत्ल कर दे, तो मत मानो। कारण तुम शरीर नही, शरीर से भिन्न आत्मा हो। शरीर तो मरनेवाला ही है। जो दूसरों को दवा पिलाता है, उस डॉक्टर का भी शरीर उसे छोड़ ही जाता है। इसलिए शरीर की आसक्ति मत रखो। आत्मा की भूमिका में रहो। सारांश, कोई मुझे मार नहीं सकता, पीट नहीं सकता, दबा नहीं सकता या धमका नहीं सकता—यह जो समझेगा, वही दूसरों को भी न धमकायेगा, न दबायेगा और न डरायेगा ही। इसीका नाम 'अहिंसा' है।

निर्भयता दो प्रकार की होती है : (१) दूसरे को न पीटना, न डराना और (२) दूसरे से न डरना। अंग्रेजों के राज्य में हम इतने डर गये थे कि साहब का नाम लेने से ही काँपते थे। पर इधर अंग्रेजों से डरते थे, तो उधर हरिजनों को दबाते भी थे। एक ओर खुद सिर झुकाते थे, तो दूसरी ओर दूसरों से झुकवाते थे। इधर

डराते थे तो उधर डराते थे; जैसे बिल्ली चूहे को डराती है, तो कुत्ते से डरती है। तो, हमें डरना और डराना, ये दोनों बातें छोड़नी चाहिए। देश को यही शिक्षण देना चाहिए। इसीको 'वेदान्त' या 'आत्मविद्या' कहते हैं। यही हमारा भारतीय दर्शन है। हम अपने को शरीर नहीं समझते। ऐसे पचासों शरीर हमने लिये और लेंगे, पचासों शरीर छोड़े और छोड़ेंगे। शरीर की हमें कोई कीमत नहीं है। उसे हम एक कपड़ाभर समझते हैं। फट गया, तो फेंक दिया और दूसरा पहन लिया। जाड़े के दिन हो, तो कपडा पहन लिया और गर्मी के दिन हों, तो फेंक दिया। हम देश को समझाना चाहते है कि हम निर्भय बने। न तो किसीको भय दिखाये और न किसीसे भयभीत हों। यह अहिंसा का विचार है। अन्य देशों मे यह विचार नहीं है। वहाँ तो बम है, 'बैटलशिप' (युद्ध-पोत) बनाते है। किन्तु जब हम निर्भय बनेंगे, तभी समझेंगे कि हमारी रक्षा होगी और तभी हम सुरक्षित होंगे। मैं बंगाल के नवयुवकों से कहता हूँ कि अगर हम भारत की शक्ति बढ़ाना चाहते हैं, तो निर्भयता के आधार पर ही बढ़ा सकते हैं। 'टेररिज्म' (आतंकवाद) एक ऐसा शस्त्र है कि अगर कोई बलवान् आयेगा, तो हमें 'टेरोराइज' (आतंकित) कर देगा। इसलिए उसे छोड़कर हमें निर्भय बनना चाहिए।

प्रेम और सहयोग बढ़ायें

हमें प्रेम और सहयोग भी बढ़ाना चाहिए। हमारे देश में यूरोप से 'डेमोक्रेसी' या गणतंत्र आया है। वास्तव मे यह 'गणतंत्र' नहीं, 'बहुजनतंत्र' है। उसने सारी दुनिया मे 'मेजॉरिटी' और 'माइनारिटी' ये दो पक्ष पैदा किये हैं। एक पक्ष का राज्य चलता है, तो दूसरे का विरोध होता है और दोनों के विरोध से आग पैदा होती है। हमारे देश मे यों ही भाषा-भेद, प्रांत-भेद, जाति-भेद आदि तरह तरह के भेद हैं। इनमें पार्टी का और एक भेद दाखिल हो गया है। पार्टी याने 'पार्ट', खंड या टुकड़ा! वास्तव मे मैं पूर्ण हूँ, अखंड हूँ, टुकड़ा नहीं हूँ: 'पूर्णमिदं, पूर्णमहम्।' किन्तु जब मैं कहता हूँ कि मैं सोशलिस्ट हूँ, कम्युनिस्ट हूँ, कांग्रेसी हूँ, हिन्दू हूँ, मुसलमान हूँ, रामानुजपंथी हूँ, नाथपंथी हूँ, फलाना हूँ और फलाना नहीं हूँ, तब मैं टुकड़ा बन जाता हूँ। यह जब चलता है, तब सहयोग और

प्रम नहीं बनता। मैं मानव से भिन्न नहीं, सिर्फ मानव हूँ। मुझे कोई लेबुल चिपका नहीं है, ऐसी वृत्ति होनी चाहिए। हमें ऐसी 'डेमोक्रेसी' बनानी है, 'सर्वोदय' के अनुसार याने जो सबकी राय से चले। तभी 'निष्पक्ष तंत्र' या 'पक्षविहीन तंत्र' होगा। इसे ही विकसित करना है, नहीं तो आप देखेंगे कि हिंदुस्तान की ताकत इलेक्शन में खतम हो जायगी। मैंने एक श्लोक (व्याप्ति) बनाया है : "यत्र यत्र इलेक्शनम् तत्र कार्यं न विद्यते" याने जहाँ-जहाँ इलेक्शन चलेगा, वहाँ कार्य नहीं होगा, कार्यनाश होगा। परस्पर प्रेम न रहेगा, मनमुटाव और मनोमालिन्य होगा। दिल जुड़ेंगे नहीं, टूटेंगे। हमने तो कहा है कि भारतवर्ष में आर्यो, अनार्यो, सब आओ : "एशो हे आर्य, एशो अनार्य शुचिकर मन।" किन्तु इतनी ही शर्त होगी कि मन शुचि (पवित्र) करो। सब आओ, हमारा सब पर प्यार है, यह प्रेम-विचार भारत के महान् ऋषि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने दिया है। उन्होंने कहा है कि परस्पर सहयोग से रहो, प्रेम से रहो; तभी हम आगे बढ़ेंगे। उन्होंने इस तरह पक्षभेद, पंथभेद आदि भेदों पर जोरदार प्रहार किया है। हम भी 'भेदासुर' का नाश करेंगे। यहाँ दुर्गा की उपासना चलती है। वह भेदासुर-मर्दिनी है। उसे 'महिषासुर-मर्दिनी' कहा जाता है। हमें भेदरूपी महिषासुर का मर्दन करना है। दुर्गा भारत की देवता है, जिसके लिए हमने 'वन्दे मातरम्' मन्त्र निर्माण कर लिया है। हम चाहते हैं कि वही दुर्गा 'भेदासुर-मर्दिनी' हो जाय।

गणतन्त्र नहीं, गुणतन्त्र

हम अगर मानव-मानव में कोई भेद निर्माण न करेंगे, तो यह 'गणतंत्र' 'गुणतन्त्र', सद्गुणतन्त्र हो जायगा। तब सद्गुणों की कीमत की जायगी, सिर्फ गणों की नहीं। आज '५१ के विरुद्ध ४९' प्रस्ताव पास किये जाते हैं। इस 'गणतन्त्र' को तो हम 'अवगुणतन्त्र' कहते हैं। ४९ और ५१ मिलकर १०० हो जाते हैं और हम चाहते हैं कि सौ मिलकर काम करो। हमारे यहाँ पहले 'ग्राम-पचायतें' होती थीं। वह इस देश की बहुत बड़ी देन है। आज दुनिया में जो राजनैतिक विचारधाराएँ चलती हैं, उन सबमें हिन्दुस्तान की ग्राम-पचायत अपनी एक विशेषता रखती है। इसमें 'पाँच बोले परमेश्वर' की बात रहती थी। उन

दिनों सारे हिन्दुस्तान में यही बात चलती थी। पाँच मिलकर बोलते, तो प्रस्ताव पास हो जाता। किन्तु अब हम कहते हैं, 'चार बोले परमेश्वर, तीन बोले परमेश्वर' यानी तीन विरुद्ध दो हों, तो प्रस्ताव पास कर लेते हैं। किन्तु हम कहते हैं कि ऐसा प्रस्ताव फेल है, पाँचों मिलकर ही प्रस्ताव पास होगा। यह बात हिन्दुस्तान में पुनः लानी होगी। प्रेम और सहयोग से ही गणतन्त्र चलेगा। प्रेम और सहयोग से ही सारा कारोबार चलेगा। उसके बिना हिन्दुस्तान और दुनिया में अहिंसा न टिकेगी।

हिंदुस्तान में चौदह भाषाएँ हैं। उन सबका एक देश बनाया गया है। जिन्होंने कन्याकुमारी से लेकर कैलास तक यह एक देश बनाया है, उन पर यह जिम्मेवारी आ जाती है कि यूरोप की नकल न करें। यूरोप पीछे है, तो हम आगे हैं। यूरोप का 'स्विट्जरलैंड' यह बाँकुड़ा और मेदिनीपुर जिले मिलाकर होता है। 'बेल्जियम' माने दो-चार जिले और जोड़ दीजिये। वहाँ ऐसे छोटे-छोटे राष्ट्र माने जाते हैं। यूरोप में एक ही लिपि है, एक ही धर्म है। एक-दूसरी भाषा में जरा-सा भेद है। कोई भी इटालियन, फ्रेंच सीखना चाहे, तो १५ दिन में सीख लेगा। वहाँ इतनी समानता है, फिर भी अलग-अलग राष्ट्र बने हैं। और हमने एक देश बनाया है। इस तरह सामाजिक चिंतन में हम आगे हैं और यूरोप पीछे। इसलिए हमें यूरोप का अनुकरण नहीं करना चाहिए। हमें सर्वोदयवादी लोकशाही, सर्वगणतन्त्र बनाना होगा, तभी अहिंसा की शक्ति बढ़ेगी। सारांश, हमने पहली बात यह बतायी कि हमें निर्भय बनना होगा और दूसरी यह कि प्रेम और सहयोग के आधार पर सरकार का गठन करना होगा।

रचनात्मक कार्य पर श्रद्धा

तीसरी बात है, रचनात्मक कार्य पर श्रद्धा करना। उनके औजार "डिस्ट्रक्टिव" (विनाशक) हैं, तो हमारे 'कन्स्ट्रक्टिव' (रचनात्मक)। वे तलवार लेकर आयेंगे, तो हम उनके सामने वीणा लेकर जायेंगे। वे गुस्से से बात करेंगे, तो हम प्रेम से बात करेंगे। उनकी कर्कश वाणी रहेगी, तो हम सुमधुर भाषण करेंगे। हमें असत्य को सत्य से, शस्त्र को वीणा से, चिल्लानेवाले को गायन और

भजन से और विध्वंस के कार्य को रचनात्मक कार्य से जीतना होगा। हमें ऐसी रचनात्मक श्रद्धा रखनी चाहिए। सारांश, निर्भयता, प्रेमयुक्त सहयोग और रचनात्मक काम में श्रद्धा, ये तीनों जब इकट्ठे होते हैं, तभी अहिंसा की शक्ति बढ़ती है। यह शक्ति हम इस देश में विकसित करेंगे, तभी हम दुनिया का मुकाबला कर सकेंगे।

बाँकुड़ा
७-१-'५५

भूदान-यज्ञ सामाजिक समाधि का कार्य : ३ :

[जहाँ श्री रामकृष्ण परमहंस की समाधि लगी थी, उस स्थान पर बैठकर विनोबाजी ने निम्नलिखित उद्गार प्रकट किये।]

आज हम ऐसे स्थान पर बैठे हैं, जहाँ हम सब लोगों की समाधि लगनी चाहिए। महापुरुषों के जीवन के अनुभवों को सामाजिक रूप देना हम जैसे सेवकों का काम है। जैसे समाधि में कोई क्लेश नहीं रहता, वैसे ही सामाजिक समाधि में भी कोई क्लेश न होना चाहिए। आज हमारे समाज और दुनिया में कई प्रकार के क्लेश, संघर्ष और झगड़े चल रहे हैं। अगर हम उन झगड़ों से मुक्ति पायें, तो हमें सामाजिक समाधि का समाधान मिल सकता है।

रामकृष्ण संग्रह को पाप मानते थे

जैसे पूँजीवादी समाज में एक जगह पूँजी रहने पर उससे समाज का काम नहीं बनता, उसके हरएक घर पहुँचने पर ही समाज का कल्याण होता है, वैसे ही व्यक्तिगत समाधि से मार्गदर्शन तो मिलता है, पर जब उसका समाज को लाभ हो, तभी समाज का स्तर ऊपर उठ सकता है। रामकृष्ण परमहंस कांचन को छूते नहीं थे। जहाँ उनके हाथों को कांचन का स्पर्श हुआ, वहीं उन्हें ऐसी वेदना

होती, मानो विच्छू ने काट लिया। काचन बेचारा निर्दोप है। चूँकि परमेश्वर का रूप सारी दुनिया में भरा है, तो काचन में भी परमेश्वर का ही रूप है; इसलिए वह निर्दोप है। फिर भी रामकृष्ण को काचन का स्पर्श सहन नहीं होता था। याने वे सपत्ति के संग्रह या संचय को पाप मानते थे, इसीलिए उन्हें उससे वेदना हुई।

वितरित कांचन परमेश्वर की विभूति

अगर किसी आलसी को जंगल मे एक सेर सोने का पत्थर मिल जाय, तो वह जिन्दगीभर बिना परिश्रम के रहेगा। उसकी जिन्दगी बिना किसी काम के चलेगी। इस तरह काचन से आलसी को उत्तेजन ही मिलता है और समाज की सम्पत्ति एक जगह सग्रहीत हो जाने से समाज को तकलीफ होती है। लेकिन अगर काचन वितरित हो जाय, तो हर घर में उसका लाभ मिले और उससे हानि शून्य हो जाय। वितरित काचन परमेश्वर की विभूति होगी। उसमें आप परमेश्वर का रूप देखेंगे। फिर उसका स्पर्श विच्छू का नहीं, नारायण का होगा।

हम लोगों ने वित्त को 'द्रव्य' कहा है। 'द्रव्य' के मानी है, बहनेवाला, द्रवरूप पदार्थ। जैसे पानी का सोता बहता रहे, तो जल स्वच्छ-निर्मल होगा, वैसे वित्त भी द्रवरूप धारण करने पर स्वच्छ-निर्मल होगा। पानी का बहना बद हो जाय और वह डबरे में भरा रह जाय, तो गदगी फैलेगी। ऐसे ही कांचन भी बहकर और जगह पहुँचे, तो वह गगा नदी के समान पवित्र हो जायगा।

सारांश, इस तरह इस एक महापुरुष (रामकृष्ण परमहंस) ने अपने जीवन से हमें सिखाया है कि किस तरह क्लेशरहित समाधि सम्भव है और किस तरह काचन के सग्रह से हम बच सकते हैं। हमारा दावा है कि हम सामाजिक क्लेश-निर्मूलन तथा समाज में सम्पत्ति और लक्ष्मी वितरित करने का यही काम कर रहे हैं। इसलिए हमें भगवान् रामकृष्ण का परम मंगल आशीर्वाद अवश्य प्राप्त होगा।

विष्णुपुर
१०-१-'५५

कर्म, ज्ञान और भक्ति की त्रिवेणी : ४ :

अभी यहाँ एक पत्रक सुनाया गया, जिसमें यहाँ के वैष्णव-भाइयों की ओर से दुःख प्रकट किया गया है। बंगाल में ही नहीं, हिन्दुस्तान-भर वैष्णव-समाज ने भक्ति-भाव की गंगा-धारा बहायी। बंगाल में तो उसकी एक विशेष वृत्ति ही प्रकट हुई, जिसके बारे मे मैंने कुछ बाते कहीं। इससे यहाँ के वैष्णव-समाज को दुःख हुआ दीखता है। सम्भव है, बंगाल के अन्य स्थानों में भी ऐसा ही कुछ असर हुआ हो। इसलिए उत्तर देने से पूर्व मेरा पहला काम यही होगा कि वैष्णव-समाज से क्षमा माँगूं।

भक्ति और विवेक की भाषा

आप लोगों को मालूम होना चाहिए कि जब मैंने बंगाल मे प्रवेश किया, तो पहले ही दिन के व्याख्यान में कहा था : 'मैं बुद्ध भगवान् की भूमि छोड़कर अब चैतन्य महाप्रभु की भूमि मे आ रहा हूँ।' इसलिए मैं यहाँ के वैष्णव-समाज को विश्वस्त कर देना चाहता हूँ कि उन्हे चैतन्य महाप्रभु के लिए जो आदर है, उसमें मैं भी साथ हूँ। मैं तो अपने को उनके चरणों की रेणु समझता हूँ। यद्यपि मै किसी व्यक्ति को परिपूर्ण नहीं मानता, तो भी चैतन्य महाप्रभु के लिए मेरे मन में अत्यन्त आदर है। मुहम्मद पैगम्बर के अनुयायी (मुसलमान) मानते हैं कि मुहम्मद पूर्ण पुरुष थे और उनमे किसी तरह की पूर्णता का विकास बाकी नहीं रह गया था। ईसामसीह के अनुयायी (ईसाई) भी समझते है कि ईसा परिपूर्ण मानव थे। इस तरह भिन्न-भिन्न महापुरुषों के अनुयायियों में यह खयाल होता है कि वे महापुरुष परिपूर्ण थे, करीब-करीब परमेश्वर-स्वरूप ही थे। किन्तु इस तरह शिष्य के मन मे गुरु के लिए पूर्णभाव रहता है, तो मै उसका अर्थ समझ पाता हूँ। छोटे लड़के के मन मे अपनी माता के लिए ऐसी ही परिपूर्णता का आभास होता है और उसके लिए वह शोभा भी देता है। इस बारे में इस्लाम ने जो बातें कहीं, वे मुझे बहुत महत्त्व की लगीं। वे कहते हैं कि मुहम्मद एक मानव

थे, उसे ईश्वर की पदवी लागू नहीं हो सकती। ईश्वर एक, अद्वितीय है। उसके बराबरी में कोई मानव नहीं आ सकता।

'ला एलाहा इल्लल्लाह, महम्मद अलरसूल अल्लाह।'

याने अल्लाह एक ही है, उसकी जगह कोई नहीं ले सकता, मुहम्मद पैगम्बर भी उसका पैगाम लानेवाला रसूलमात्र है, सेवकमात्र है। लेकिन हमारे भारत में जो गुरु-परम्पराएँ चलीं, उनमें ये मान्यताएँ रहीं कि उस-उस परम्परा के गुरु सब तरह से परिपूर्ण और ईश्वर ही थे। यह भक्ति की भाषा है। इसलाम में जो भाषा बोली गयी, वह विवेक की भाषा है। मैं उस विवेक की भाषा को प्रधानता देता हूँ और भक्ति की भाषा को गौण स्थान। मुझे गांधीजी के भी अनुयायी मिले हैं, जिनका विश्वास है कि परिपूर्ण मानवता गांधीजी में भी प्रकट हो गयी थी। इससे अधिक उत्कर्ष का कोई मौका ही उनमें नहीं रह गया था। मैं कबूल करता हूँ कि इस तरह किसी मानव को अत्यन्त परिपूर्ण मानने के लिए मेरी बुद्धि तैयार नहीं। फिर भी एक शिष्य के नाते, एक भक्त के नाते मैं अपने गुरु को, अपनी माता को परिपूर्ण मानने के लिए तैयार हूँ। एक परिपूर्णता का आरोप हम पत्थर में भी करते हैं और उसे भगवान् की मूर्ति समझकर पूजते हैं। फिर लोग महान् मनुष्य में परिपूर्णता का आरोप करते हैं, तो उसका विरोध करने की मुझे कोई जरूरत नहीं मालूम देती।

विचार उत्तरोत्तर विकासशील

इतनी सफाई करने के बाद मैं कहना चाहता हूँ कि महाप्रभु ने जो धारा बहायी, वह गंगा के समान पवित्र है। लेकिन गंगा की धारा होना एक बात है और समुद्र होना दूसरी बात। गंगा की धारा भी समुद्र होने का दावा नहीं कर सकती। इसलिए दुनिया में जो भी जीवन-विचार प्रकट होता है, उसमें उसके एक-एक पहलू का विकास होता और दूसरे कुछ पहलू विकास के लिए रह जाते हैं। अगर किसी एक चिंतन-धारा या किसी एक पंथ में विचार का परिपूर्ण विकास हो जाता, तो मानव के लिए कोई काम ही शेष न रहता। मानव-समुदाय मुक्त हो जाता और समाज मिट जाता। यही कारण है कि बुद्ध भगवान् के उपदेश के बाद

भी चैतन्य महाप्रभु की गरज मालूम हुई। अगर बुद्ध भगवान् मे सम्पूर्ण परिपूर्णता होती, तो चैतन्य महाप्रभु की जरूरत ही नही थी। इसलिए समझना चाहिए कि समाज मे उत्तरोत्तर विचारों का विकास हो रहा है। एक-एक अग के विकास की परिपूर्णता करने की कोशिश की जा रही है। आज भी किसी विचार में परिपूर्णता आ गयी हो, ऐसा नहीं। इस बारे मे वैज्ञानिकों की वृत्ति बहुत कुछ विचारणीय और अनुकरणीय है। वैज्ञानिक मानते है कि विज्ञान अनन्त है और उसका बहुत थोड़ा हिस्सा हमें मालूम है। आज के उत्तम-से-उत्तम वैज्ञानिकों के पास भी विज्ञान का एक अश ही है। आत्मानुभव के बारे में भी यही न्याय लागू होता है। इसलिए यह समझने की जरूरत नही कि आत्मानुभव अपने सब पहलुओ के साथ परिपूर्ण हो गया और अब उसमे कोई प्रगति या विकास होने की आवश्यकता नहीं है।

भक्ति के आधार से मुक्ति सम्भव

मैं कबूल करता हूँ कि भक्ति-भावना का आश्रय लेकर अन्तिम सीमा तक पहुँचा जा सकता है। जैसे नदी समुद्र से मिलने पर समुद्ररूप हो अन्तिम सीमा तक पहुँच जाती है, वैसे ही मनुष्य चिन्तन-धारा मे बहकर एक पूर्णता पर पहुँच सकता है। इसलिए मैं मानता हूँ कि अगर किसीके जीवन मे कीर्तन की भी परिपूर्णता आ जाय, तो वहाँ इन्द्रिय-निग्रह और योग-भक्ति अच्छी दीखेगी। वहाँ ज्ञान का उत्तम अनुभव होगा और कर्मयोग भी भलीभाँति प्रकट होगा। इसीलिए अगर कोई कहे कि मुझे केवल नाम-संकीर्तन ही पर्याप्त है, तो मै उसे कबूल कर सकता हूँ। लेकिन नाम-सकीर्तन पर्याप्त है, ऐसा जब कहा जायगा, तो उसके मानी यह होंगे, उस व्यक्ति के जीवन में सिवा नाम-संकीर्तन के दूसरी कोई बात न रहेगी। वह भोजन करेगा तो नाम खायेगा, पानी पीयेगा तो नाम पीयेगा और सोचेगा भी तो नाम पर ही सोचेगा। उस मनुष्य के जीवन मे किसी प्रकार का माया-मोह और आसक्ति न होगी। वह जिस किसीका दर्शन पायेगा, उसमें हरि का रूप देखेगा। उसे कड़ुआ रस पिलाया जायगा, तो कहेगा कि 'मैं नाम-रस पी रहा हूँ' और मीठा रस पिलाया जायगा, तब भी कहेगा कि 'नाम-

रस पी रहा हूँ।' अगर उस पर अपमान की वर्षा हुई, तो समझेगा कि 'हरि-कृपा की वर्षा' हुई और उसे मान-सम्मान दिया जाय, तो भी समझेगा कि हरि-कृपा की वर्षा हो रही है। सचमुच ऐसा पुरुष परम धन्य है और उसके लिए हमारी सिवा पूज्य-भावना के और कोई भावना नहीं हो सकती।

ज्ञान, भक्ति, कर्म के समन्वय से समाज का उत्थान

लेकिन जहाँ सारे समाज के उत्थान की बात होती है, वहाँ किसी-न-किसी एक विचार या गुण को सामने रखने से काम नहीं चलता। एक गुण के विकास से सारे समाज में एकांगिता आती है। मैंने कहा था कि भक्ति-भाव में मस्त होकर अपने को भूल जाना और कीर्तन में सन्तुष्ट होना, इतने से जीवन परिपूर्ण नहीं बनता। समाज में उसका पुरुषार्थ रूप में प्रत्यक्ष प्रकाशन भी होना चाहिए। यह बात मैंने पहली बार कही या कोई नयी कही, सो नहीं। उपनिषदों ने भी कहा है कि ब्रह्मज्ञानी परिपूर्ण और सबसे श्रेष्ठ पुरुष है। फिर भी उसने इस प्रसंग में एक ऐसे अद्भुत वाक्य का प्रयोग किया है कि उसीमें उसकी सूक्ष्म-बुद्धि दीख पड़ती है। वहाँ कहा गया है कि ब्रह्मज्ञानी में भी जो क्रियावान् है, वह श्रेष्ठ है : "क्रियावान् एव ब्रह्मविदां वरिष्ठः।" सारांश, ज्ञानयोगी भी अपूर्ण होगा, अगर उसमें फल-त्याग की दृष्टि और उसके ज्ञान की कर्मयोग में परिणति न दीख पड़ती हो। ज्ञान-विहीन केवल भक्ति निष्क्रिय या जड़ बन सकती है। केवल भक्ति-विहीन ज्ञान शुष्क, रूक्ष और क्रिया-विहीन हो सकता है। यदि कोई मुझसे पूछे कि 'आप क्रियाशीलता की इतनी महिमा बताते हैं, तो क्या जो क्रियाशील हो, वह परिपूर्ण होगा ?' तो मैं कहूँगा, नहीं। क्रियाशील मनुष्य भी अगर भक्तिवान् और ज्ञाननिष्ठ न हो, तो उसमें अहंकार और आसक्ति आ सकती है। उस क्रिया-शीलता में परिपूर्णता नहीं, अपूर्णता ही रहेगी।

यूरोप को ज्ञान-भक्ति की आवश्यकता

इसकी मिसाल यूरोप में देखने को मिलती है। वहाँ क्रियाशीलता बहुत बढ़ गयी है। लोगों को टाइम ही नहीं मिलता। वे कहते हैं : 'टाइम इज मनी'

याने समय धन है। वे प्रत्येक क्षण का कर्म में उपयोग करते हैं। फिर भी अमेरिकन और यूरोपियनों की यह क्रियाशीलता अहंकारमय बन गयी है, क्योंकि उसमें भक्ति की नम्रता नहीं है और न आत्म-ज्ञान की निष्ठा ही है। परिणाम यह है कि अमेरिकन दुनिया को बचाने की बातें बघारते हैं। अमेरिका का प्रेसिडेण्ट कहता है कि एशिया के राष्ट्रों को बचाने और उनकी स्वतन्त्रता कायम रखने की जिम्मेदारी हम पर है। मानो दुनिया में परमेश्वर है ही नहीं और सारी दुनिया के संचालन की जिम्मेवारी यूरोप और अमेरिका पर ही है। मानो एशियाई देशों को अक्ल ही नहीं है, सारी अक्ल का भण्डार या तो रूस को या अमेरिका को ही परमेश्वर ने दे रखा है। सारांश, केवल क्रियाशीलता से विकास नहीं होता, बल्कि जीवन एकांगी और विकृत बनता है। अगर मैं यूरोप-अमेरिका में घूमता और मुझे बोलने का मौका मिलता, तो मैं वहाँ वैष्णव-धर्म और आत्मनिष्ठा की बहुत महिमा गाता। लेकिन मैं उस देश में घूम रहा हूँ, जहाँ भक्तिधारा बह चुकी और आत्मज्ञान का भी कुछ विकास हुआ है। इसलिए यहाँ और जो न्यूनता है, उसीकी ओर ध्यान देना-दिलाना मेरा कर्तव्य है।

चैतन्य का युगानुकूल महान् कार्य

अभी एक श्लोक में कहा गया कि कलियुग में हरिकीर्तन से ही काम बन जाता है : 'कलौ तद् हरिकीर्तनात्।' इसका अर्थ यही है कि कलियुग दुर्बलता का युग है। जिस युग में दुर्बलता और आसक्ति फैली है, उसमें कीर्तन के द्वारा आसक्ति से मुक्त होना है। दुर्बल मनुष्यों से कहा गया कि 'भाइयो, इस युग में और कुछ नहीं कर सकते, तो कोई चिन्ता नहीं; लेकिन कीर्तन करो। उसके साथ और भी बातें आ जायँगी।' इसके मानी है, यह हमें एक आश्वासन दिया गया। इसका यह अर्थ कभी न करना चाहिए कि भिन्न-भिन्न युगों के लिए गुणों का बँटवारा किया गया है। कलियुग में यह गुण है और द्वापर के लिए यह गुण है, ऐसा बँटवारा कभी न करना चाहिए। इसका अर्थ इतना ही है कि समाज की स्थिति देखकर किसी-न-किसी गुण को महत्त्व दिया जाता है। जिस युग में अध्यात्म की

जरूरत होती है, उस युग में उसीको महत्त्व दिया जाता है। जिस युग में हमारे देश में जिधर देखो, उधर लोग भोग-विलास में मग्न थे, शृंगार-रस सबसे श्रेष्ठ माना गया और उसके चलते सभी लोग निर्वीर्य हो गये, उस युग में उन्होंने उसे राधा-कृष्ण की दृष्टि से पवित्र कर बहुत बड़ा काम किया। जिनको हिन्दुस्तान के साहित्य का परिचय है, उन्हें मालूम है कि मध्ययुग में संस्कृत-साहित्य में जितनी अश्लील धारा चली, उतनी अश्लील-धारा हमें और किसी भाषा में दीखना मुश्किल है। उस परिस्थिति में जिन्होंने शृंगार की भाषा को ही भक्ति की भाषा का रूप दिया, उन्होंने सचमुच मानव को बचा लिया। जिस जमाने में सर्वत्र उच्च-नीचता थी, 'ब्राह्मण ज्येष्ठ और शूद्र कनिष्ठ' जैसे भेद-भाव या जातिभेद पड़े थे और उस पर इसलाम का हमला हो रहा था, उस जमाने में भक्ति के नाम से समता स्थापित करनेवालों ने सचमुच मानव पर उपकार किया। आसक्त मनुष्य को भक्ति की प्रेरणा देने और ऊँच-नीच भावना रखनेवाले को समता की दृष्टि देने का यह महान् कार्य चैतन्य महाप्रभु ने मध्ययुग में किया। हिन्दुस्तान देश पर उनका यह बहुत बड़ा उपकार है।

मामनुस्मर युद्ध्य च

जो उत्तम गुण हमें चैतन्य महाप्रभु ने दिये, उन्हें अच्छी तरह पकड़कर आगे उनका विकास करना चाहिए। पूर्वजों ने जो कमाई हमें दी, उसके आधार पर हमें और अधिक कमाई करनी चाहिए। आप लोगों ने गीता का वह वाक्य सुना होगा। वैष्णव भी गीता को मानते हैं। गीता कहती है: "मामनुस्मर युद्ध्य च" याने मेरा स्मरण कर और जूझता रह। इस तरह उसने परमेश्वर-स्मरण के साथ युद्ध को, कर्मयोग को जोड़ दिया। कोई कहेगा कि ईश्वर-स्मरण ही बस है, उसमें सब कुछ आ जायगा, तो उसे व्यक्तिगत तौर पर मैं मानने को तैयार हूँ। लेकिन सारे समाज के सामने कोई चीज रखनी हो, तो यही कहना होगा कि ईश्वर-स्मरण के साथ ही ईश्वर ने जो हमें बुद्धि दी है, उसका भी उपयोग करना चाहिए, सतत कर्म करना चाहिए। और यह भी गीता ने कहा ही है: "सततं कीर्तयन्तो मां" भक्त सतत कीर्तन करते रहते हैं। इतना कहकर ही

गीता चुप नहीं हुई, आगे उसने यह भी जोड़ दिया : "यतन्तश्च दृढव्रताः" याने जो अत्यन्त दृढ़तापूर्वक प्रयत्न करते हैं, पुरुषार्थ करते हैं। अगर नारद मुनि मेरे सामने खड़े हो जायँ और कहें कि 'यह क्या बोल रहा है, मैं सतत कीर्तन करता हूँ, तो क्या यह पर्याप्त नहीं है ?' तो मैं उनके चरणों पर प्रणाम करूँगा और कहूँगा कि 'वह आपके लिए पर्याप्त है।' मैं नारद को यह कहने की धृष्टता करूँगा कि अगर सारे समाज के सामने कीर्तन रखना है, तो उसके साथ-साथ कर्मयोग जोड़ दीजिये। मुझे विश्वास है कि नारद मेरी बात मान लेगा।

भक्ति-मार्ग के चिन्तन में संशोधन आवश्यक

जब हम समाज-जीवन की बात करते हैं, तब उनके गुणों का समन्वय करना होगा। केवल एक ही गुण की प्रकर्षता से व्यक्ति का तो चलेगा, पर समाज का नहीं चल सकता। जब लोग कहते हैं कि 'क्या केवल कीर्तन बस नहीं ?' तो मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि फिर आप कीर्तन करते हैं, तो खाते क्यों हैं ? कीर्तन ही करिये। अगर कीर्तन के साथ खाना जरूरी है, तो क्या खिलाना भी जरूरी नहीं ? वैष्णव कीर्तनमय होते हैं, तो मैं उनसे पूछूँगा कि फिर आप शादी क्यों करते हैं ? अगर कीर्तन के साथ शादी भी होती है, तो संयम की भी जरूरत नहीं है ? मैंने ऐसे कीर्तन करनेवाले देखे हैं, जो भक्ति में नाचते और रोते हैं। लेकिन मैं जब दान माँगता हूँ, तो ऐसे कंजूस बन जाते हैं कि उनके हाथों से दान ही नहीं छूटता।

यह केवल हिन्दुस्तान की ही बात नहीं। जितने भक्ति-सम्प्रदाय हैं, सभीमें यह बात देखी गयी है। यूरोप में भी ऐसे ईसाई देखे गये हैं, जो कहते हैं कि ईसा की शरण जाने से ही मुक्ति मिलती है, आप लोगों को नहीं मिल सकती। मैंने उनसे पूछा कि ईसा की शरण जाने में ही ऐसी क्या खूबी है कि मुक्ति मिल जाती है और दूसरे की शरण जाने से वह नहीं मिलती ? इस पर वे कहते हैं कि जो ईसाई नहीं होते, उन्हें सतत पुण्य का आचरण करते रहना चाहिए। और जो ईसाई होते हैं, वे पाप करते जायँ, तो भी उन्हें पुण्य मिलेगा। दुनिया के सभी पापों के लिए ईसामसीह ने बलिदान दिया है। इसलिए उनके अनुयायियों

को पुण्याचरण का प्रयोजन नहीं है। इसीलिए वह पाप करता रहेगा, तो भी मुक्ति पायेगा। इस तरह वास्तव में यह चिन्तन-दोष समस्त भक्ति-मार्ग में आ गया है, सिर्फ बंगाल की भक्ति-धारा में आया है, सो नहीं। इसलिए यह नम्र निवेदन करता हूँ कि आज भक्ति-मार्ग के चिन्तन में संशोधन करने की सख्त जरूरत है।

कलियुग में कीर्तन करने के लिए जो कहा गया है, वहाँ 'कीर्तन' का अर्थ है 'कृति की प्रेरणा'। 'कृति' शब्द से ही 'कीर्ति', 'कीर्तन' शब्द बने हैं। जिस किसीको प्रेरणा होगी, वह कीर्तन करता है। कीर्तन के साथ कर्मयोग भी करना चाहिए। कीर्तन करने से हमें कृति की प्रेरणा मिलेगी। आपने देखा ही है कि चैतन्य महाप्रभु का जीवन कितना पवित्र था। वे हिन्दुस्तान में जगह-जगह जाकर चित्तशुद्धि करने के लिए कहते और अखंड कार्य करते हुए आत्मप्रभुमय हो गये। इसलिए मेरी नम्र राय और प्रार्थना है कि हमें हिन्दुस्तान के लोगों को यह जो पाथेय मिला है, जो सम्पत्ति मिली है, वह यद्यपि समृद्ध है, फिर भी इसमें संशोधन की जरूरत है।

सभी गुणों का विकास कर्तव्य

गीता में कहा है : "श्रेयो हि ज्ञानम् अभ्यासात्।" लोग शुष्क यम, नियम, प्राणायाम करते रहते हैं। उससे ज्ञान श्रेष्ठ होता है। आसन, प्राणायाम से व्यायाम हो जाता है। यह सात्त्विक व्यायाम है, अच्छा व्यायाम है। पर इतने भर से बुद्धि की जड़ता दूर नहीं होती। इसीलिए कहा गया है कि उनसे ज्ञान श्रेष्ठ है। लेकिन जहाँ ज्ञान का नाम लिया जाता है, वहाँ मनुष्य निष्क्रिय बन जाता है। वह तर्कप्रधान हो जाता है, उसमें शुष्कता और पाण्डित्य आ जाता है। इसलिए ज्ञानी से भी भक्त आगे हैं। "ज्ञानात् ध्यानं विशिष्यते।" किन्तु ध्यान में मनुष्य मग्न रहता है, तो निष्क्रिय बनता है और जहाँ ध्यान टूट जाता है, वहाँ क्रिया करनी ही पड़ती है। गीता आगे कहती है : "ध्यानं कर्मफल-त्यागः।" इसलिए ध्यान से भी फलत्यागयुक्त कर्मयोग श्रेष्ठ है। मैं कबूल करता हूँ कि श्रेष्ठ-कनिष्ठ की यह भाषा बोलना अच्छा नहीं है। बेहतर भाषा यही है कि

अनेक गुणों का विकास करना चाहिए। आत्मा में अनेक शक्तियाँ भरी हैं। इसलिए हमें एक ही गुण का विकास नहीं करना है।

अपने को सम्पत्ति के मालिक माननेवाले अवैष्णव

आज सुबह रामकृष्ण के समाधि-स्थान पर मैंने कहा था कि रामकृष्ण परमहंस को कांचन का स्पर्श सह्य न होता था। उन्हींके मार्ग का अनुसरण करते हुए मैं सामूहिक 'कांचनमुक्ति' का प्रयोग कर रहा हूँ। इसलिए मैंने दावा किया था कि भगवान् रामकृष्ण का आशीर्वाद हमारे इस काम को प्राप्त होगा। यही दावा मैं चैतन्य महाप्रभु के लिए भी कर रहा हूँ। उनका भी आशीर्वाद इस काम के लिए प्राप्त होगा। अगर उनकी प्रेरणा न होती, तो बंगाल में इतने सारे भाई मेरी बात सुनने के लिए न आते। इसलिए जिन वैष्णवों के शिष्यों को मेरे शब्दों से दुःख हुआ होगा, उनसे मैं दुबारा क्षमा माँगता हूँ और आशा करता हूँ कि वे भूदान-यज्ञ में पूरा सहयोग देकर अपनी वैष्णवता सिद्ध करेंगे। मैं कहना चाहता हूँ कि जो अपने को जमीन के और सपत्ति के मालिक मानते हैं, वे ईश्वर की जगह लेते हैं। इसलिए वे अवैष्णव हैं। वैष्णव तो वे होंगे, जो सबको विष्णुमय समझकर किसीसे कोई चीज न रोकेंगे। वे सदैव यही समझेंगे कि हमारी सभी चीजें भगवान् की हैं, विष्णु की और समाज की हैं।

विष्णुपुर
१०-१-'५५

अखबार पढ़नेवालों को मालूम है कि आज दुनिया में अगर सबसे अधिक किसी शब्द का उच्चारण होता है, तो वह 'शान्ति' ही है। किन्तु यह शब्द हमारे लिए नया नहीं, भारत के अत्यन्त प्राचीन शब्दों में इसकी गिनती है। हम जितने भी सत्कार्य या धर्म-कार्य करते हैं, उन सबके आरम्भ और अन्त में 'शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः' का तीन बार जयकारा लगाते आ रहे हैं। लेकिन इन दिनों केवल धर्म कार्य करते हुए ही शान्ति का उच्चारण नहीं होता, बल्कि अधर्म-कार्य करते हुए भी वह होने लगा है।

शस्त्रास्त्रों से शान्ति-स्थापना की कोशिश

आज शस्त्रास्त्र बढ़ाने के लिए राष्ट्र-के-राष्ट्र उद्यत हैं। वैज्ञानिकों की मदद से ऊँचे-ऊँचे शस्त्र खोजे जा रहे हैं और इन सबके लिए 'शान्ति' का नाम लिया जा रहा है। इस तरह शस्त्र की होड़ में लगे देशों के नेता, जो कि साथ में 'शान्ति' का भी नाम लेते हैं, ढोंगी हैं—ऐसा हम नहीं कहते। वास्तव में यह पुराना भ्रम है और आश्चर्य की बात है कि विज्ञान के इस युग में वह बचा हुआ है। आज भी समझा जाता है कि शान्ति के लिए शस्त्रास्त्र बढ़ाने की जरूरत है। आज भी लोगों के मन में यह विश्वास है कि बकरों के बलिदान की तरह अशक्तों का संहार हो जायगा, पर शेर का बलिदान न होगा। इसलिए शेर की शक्ति प्राप्त करनेवाला ही बचेगा।

लेकिन अनुभव तो यह है कि जैसे बकरों का बलिदान होता है, वैसे शेरों का नहीं होता, पर उनकी शिकार तो होती ही है। आज शेर, सिंह भी मनुष्य की करुणा के कारण ही बचे हुए हैं। नहीं तो ऐसी स्थिति आती कि उनकी जाति ही विच्छिन्न हो जाती। खासकर विज्ञान के जमाने में हिंसा-शक्ति बढ़ाने का मतलब केवल समाज नाश ही हो सकता है। इसलिए यह भ्रम न होना चाहिए था। लेकिन कहते हैं कि पुरानी आदत और पुराने भ्रम जल्दी नहीं बदलते।

समझकर बातें करते हैं। शान्ति का अधिष्ठान तो विश्वास ही है। अविश्वास से कभी शान्ति नहीं हो सकती।

शान्ति के लिए निर्णय आवश्यक

एक और प्रयत्न दुनिया में शान्ति-स्थापनार्थ चल रहा है। वह यह कि कुछ भले लोग एकत्र होकर 'नैतिक सैन्य-संवर्धन' (मॉरल रिआर्मामेण्ट) करते हैं। उनकी यह कोशिश चल रही है कि दुनिया के अन्य किन्हीं देशों में जाकर कुछ अच्छे काम करें, परस्पर प्रेम-निर्माण हो और मित्रता बढ़े। उनके एक भाई हमसे मिलने आये थे। उनसे हमारी चर्चा हुई। हमने उनसे पूछा : 'परस्पर प्रेम बढ़ाने के लिए छोटी-मोटी सेवा हम करते रहें, यह अच्छा ही है। पर क्या इस संगठन को लड़ाई के बारे में यह निर्णय है कि कोई राष्ट्र शस्त्र ग्रहण ही न करेंगे ?' उन्होंने कहा : 'नहीं, ऐसा कोई निर्णय तो नहीं हुआ है। फिर भी 'आक्रामक-युद्ध' (ऑफेन्सिव वार) में हिस्सा न लेने का निर्णय है।' इस पर हमने कहा : 'इन दिनों हमला न करना और बचाव करना, दोनों में फर्क नहीं होता। 'ऑफेन्सिव वार' और 'डिफेन्सिव वार' (संरक्षणात्मक युद्ध) एकरूप हो जाते हैं।'

तात्पर्य इतना ही है कि बेचारे ये लोग भले हैं, लेकिन इनके मन में निर्णय नहीं है। शस्त्रबल बढ़ाकर शान्ति स्थापित करनेवाले लोगों के पास 'विचार' नहीं है, परस्पर विचार और चर्चा कर शान्ति स्थापित करनेवालों के पास 'विश्वास' नहीं है और भला काम करते हुए शान्ति स्थापित करनेवालों के पास 'निर्णय' नहीं है। दुनिया में अशान्ति और हिंसा इतने व्यवस्थित रूप से बढ़ रही है कि हम अनिर्णयपूर्वक उसका सामना करना चाहें, तो भी कर नहीं सकते।

केवल अभावात्मक कार्य पर्याप्त नहीं

कुछ लोग ऐसे हैं, जिन्होंने शान्ति के लिए तय किया है कि हम शस्त्र नहीं उठायेंगे। ऐसे लोग 'पैसीफिस्ट' (शान्तिवादी) कहलाते हैं। उनके पास निर्णय है यह एक बड़ी वस्तु उन्हें हासिल है। लेकिन युद्ध के समय हम हाथ में शस्त्र

न उठायेंगे, इतने भर से काम नहीं चलता। उसके लिए तो विधायक या रचनात्मक निर्माण के कार्य ही करने होंगे। विधायक (पॉजिटिव) शक्ति ही निर्मित करनी होगी। उसके बिना केवल 'अभावात्मक' (निगेटिव) शक्ति से काम न चलेगा। इसका मतलब यह हुआ कि उनके पास निर्णय तो है, पर सक्रियता नहीं।

देश के विकास के लिए शान्ति जरूरी

कुछ शान्तिवादी कहते है कि दुनिया के अनेक राष्ट्रों को आज शान्ति की जरूरत है, क्योंकि उसके बिना उनका विकास नहीं हो सकता। इसीलिए वे दुनिया मे शान्ति चाहते है। इनके आन्दोलन को 'जागतिक शान्ति-आन्दोलन' (वर्ल्ड पीस मूवमेण्ट) कहते हैं। यूरोप में कई ऐसे देश है, जहाँ कम्युनिस्टों का बहुत जोर है, फिर भी वे शान्ति ही चाहते हैं। कारण शान्ति-स्थापना के बिना उनका विकास न होगा। वैसे चीन भी शान्ति चाहता है, पाकिस्तान शान्ति चाहता है और भारत भी शान्ति चाहता है। लेकिन ये लोग कहते हैं कि हमे शान्ति की बहुत अधिक जरूरत है; क्योंकि अपने देश का हमे जीवन-मान चढ़ाना है, दरिद्रता मिटानी है। किन्तु इतने से शान्ति नहीं हो सकती; क्योंकि उन्हें शान्ति की स्वतन्त्र कीमत नहीं है। शान्ति की कीमत इतनी ही है कि वे दूसरे काम के लिए उसे चाहते हैं। देश के विकसित होने और उसकी सम्पत्ति बढ़ाने के लिए शान्ति चाहते हैं। यह तो सभी देश चाहते है और इस दिशा मे सभी देशों में प्रयत्न हुए हैं।

शान्ति की स्वतन्त्र प्यास चाहिए

लेकिन शान्ति पानी की तरह है। उसके दो उपयोग हो सकते हैं: (१) फसल उगाने के लिए पानी की जरूरत होती है और (२) पानी से ही मानव की प्यास भी बुझती है। जिसे प्यास लगी हो, उसे पानी की हमेशा जरूरत है और उसे पानी की स्वतन्त्र कीमत है। देश को समृद्ध बनाने के लिए या देश का जीवन-मान बढ़ाने और मानसिक समाधान होने के लिए भी शान्ति का उपयोग

हो सकता है। जिसे फसल के लिए पानी चाहिए, वह फसल उग जाने पर कह सकता है कि अब पानी नहीं चाहिए। इसी तरह जिसे समृद्धि के लिए शान्ति की जरूरत है, वह समृद्धि पा जाने पर कह सकता है कि अब हमें शान्ति नहीं चाहिए। किन्तु जिसे प्यास मिटाने के लिए पानी चाहिए, वह हमेशा पानी चाहता है। इसी तरह जब तक मानवमात्र को शान्ति की स्वतन्त्र प्यास नहीं लगेगी, तब तक दुनिया में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती।

भूदान के बारे में जब हम कहते हैं, तो लोग पूछते हैं: 'आप लोगों को समझाते हैं, यह अच्छा काम है। लेकिन कानून बन जाय, तो यह काम कितनी जल्दी हो जायगा?' इस पर हम उनसे यही कहते हैं कि 'हम तो कानून को रोकते नहीं। आप कानून बनाइये; जिन्हें आपने अपना वोट दिया है, उनसे बनवाइये। किन्तु ध्यान रहे कि हमारा यह भूदान का प्रयत्न सिर्फ जमीन प्राप्त कर उसे बाँटने के लिए नहीं चल रहा है। हम यह प्रयत्न इसीलिए कर रहे हैं कि शान्ति का एक नूतन शास्त्र निर्माण हो। लोग शान्ति का स्वतन्त्र मूल्य समझें और अपने मसले, जमीन के और अन्य भी मसले, शान्ति से ही हल कर लें। शान्ति का स्वतन्त्र मूल्य स्थापित करने के लिए आज भारत को बहुत अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है।

शान्ति-शक्ति की उपासना

जब हमने आजादी का आन्दोलन चलाया, तब हम हिंसा से आगे बढ़ ही नहीं सकते थे। क्योंकि हमारे सामने ऐसी सल्तनत थी, जिसके पास बहुत अधिक शस्त्रास्त्र रहे। इसीलिए हमने शान्ति का, अहिंसा का उपयोग किया। लेकिन वह अहिंसा लाचारी की थी। इसके बावजूद आज भारत चाहे तो शस्त्र-बल बढ़ा सकता है। जैसा पाकिस्तान ने किया, वैसा यह भी कर सकता है, अपने बल से या दूसरों की मदद से। इस तरह आज हिन्दुस्तान शान्ति शक्ति या शस्त्र शक्ति बढ़ाने का निर्णय करने के लिए स्वतन्त्र है। वह बुद्धिपूर्वक चाहे जो निर्णय ले सकता है। किन्तु भारत ने शान्ति का जो रास्ता अपनाया, वह ईश्वर की उस पर कृपा ही है। सौभाग्य से उसे अच्छा नेतृत्व भी प्राप्त है।

लेकिन हममें इतनी ही भावना न होनी चाहिए कि हमारा देश सब तरह से पिछड़ा है और शान्ति के बिना काम न होगा, इसलिए देश के विकासार्थ ही हम शान्ति का मन्त्र जप रहे हैं। अगर हम इसी तरह सोचते जायँगे, तो शान्ति की शक्ति न बढ़ेगी। वह केवल व्यावहारिक साधनमात्र बनेगी। केवल व्यावहारिक साधन के तौर पर हम शान्ति का मन्त्र जपेंगे, तो हमारा देश दुनिया पर नैतिक प्रभाव न डाल सकेगा। यह तो सारी दुनिया जानती है कि हिन्दुस्तान में दारिद्र्य है, शस्त्रबल बढ़ाने के लिए उसके पास पैसा नहीं है। लेकिन मान लीजिये कि वह कितना भी बल बढ़ा ले, समृद्ध बने या शस्त्रास्त्र बढ़ाने की शक्ति उसमें आ जाय, तो भी वह यदि शान्ति ही चाहे और शस्त्र न उठाये, तभी शान्ति का नैतिक प्रभाव दुनिया पर पड़ेगा। भौतिक शक्ति हासिल कर और समृद्ध बनकर भी शान्ति की उपासना न छोड़ने की यह निष्ठा हममें तभी आयेगी, जब अनुभव से हमें यह मालूम होगा कि शान्ति में एक स्वतन्त्र शक्ति है और उसीसे पेचीदे मसले हल हो सकते हैं।

कहा जाता है कि 'हमने शान्ति से स्वराज्य प्राप्त किया', पर वह पूर्ण सत्य नहीं है। अगर वह पूर्ण सत्य होता, तो आज हमें शान्ति की शक्ति का अवश्य अनुभव होता। हममें शान्ति के लिए श्रद्धा होती और आज जिस तरह देश की दुर्दशा हुई, वह न होती। आज के पक्षभेद, परस्पर अविश्वास और जमात-जमात में स्पर्धा, यह सब नहीं दीख पड़ता। हमने वह जो शान्ति का रास्ता अपनाया था, वह निश्चय ही लाचारी का था। गांधीजी लाचारी नहीं सिखाते थे, पर हम लोग लाचारी से उनके पीछे गये और इसीलिए उन्होंने उस पर जो अमल किया, वह बिल्कुल टूटा-फूटा रहा। किन्तु इतने पर भी यश मिला, क्योंकि दुनिया की हालत ही ऐसी थी कि अंग्रेज भारत को अपने हाथ में नहीं रख सकते थे। इसलिए जरूरी है कि भारत का कोई भी मसला हो, हम शान्ति से ही हल करें। तभी हमारा शान्ति-शक्ति पर विश्वास बैठेगा।

शान्ति-शक्ति के बिना भारत अशक्त

मान लीजिये, हम कानून के जोर या दूसरे किसी दबाव से लोगों से छीन

लें। पर मैं जानता हूँ कि इस तरह लोगों में जमीन बाँटने की शक्ति आज की सरकार में उपलब्ध नहीं है; क्योंकि यह सरकार ऐसे लोगों से बनी है, जिसमें भूमिवाले बहुत है। जिस शाखा पर वे बैठे हैं, उनके द्वारा उसी शाखा का काटना सम्भव नहीं। बंगाल-सरकार ने यह कानून बनाया है कि सवा सौ लाख एकड में से केवल चार लाख एकड़ जमीन हासिल करें। इसका मतलब यही है कि समाज की आज की स्थिति वे जैसी-की-तैसी रखनेवाले हैं। इसका बचाव उनके पास यही है कि जमीन ज्यादा है ही नहीं। इसलिए वह जिनके हाथ में पड़ी है, पडी रहना अच्छा है। इस तरह वे सबको जमीन नहीं दे सकते। फिर जिन लोगों की बुद्धि इस तरह काम कर रही है, वे जमीन का बँटवारा क्या करेंगे ? वे ग्राम की कुल भूमि ग्राम की कर देंगे, यह सम्भव नहीं। फिर भी मान लें कि सरकार कानून के जरिये सब भूमि जैसे बाँटनी चाहिए, बाँट देगी। फिर भी दिल के साथ दिल न जुड़ेंगे। कटुता निर्माण होगी, शान्ति नहीं। इस तरह भले ही भूमि की समस्या हल हो जाय; पर अगर वह शान्ति-शक्ति के जरिये न हुई, तो भारत अशक्त ही रहेगा। शान्ति का स्वतन्त्र महत्त्व समाज को महसूस न होगा, तब तक शान्ति नहीं हो सकती, दुनिया से हिंसा न टलेगी। भूदान का जो आन्दोलन शुरू हुआ है, वह तो आरम्भ ही है। पर चार साल में जो फल मिला है, वह बहुत बड़ा है। लेकिन यह जो अल्प-स्वल्प काम हुआ, उसके पीछे एक महान् विचार है और वह है, शान्ति-शक्ति की स्थापना करने का।

भेदिया (मेदिनीपुर)
२०-१-'५५

सत्य : आध्यात्मिक साधना की पहली शर्त : ६ :

आज आशा देवी ने सुझाया है कि आध्यात्मिक साधना कहाँ से आरम्भ हो और प्राथमिक महत्त्व किस चीज को दिया जाय, इस बारे में मैं कुछ कहूँ। इस प्रश्न का उत्तर तो अलग-अलग प्रकार से दिया जा सकता है। सबके लिए एक ही उत्तर नहीं हो सकेगा। जो हो सकेगा, वह मैं पीछे बताऊँगा।

आत्म-परीक्षण

आरम्भ में मैं यह कहना चाहता हूँ कि हरएक को अपने मन का परीक्षण करना चाहिए। हममें किन गुणों की न्यूनता है या किन दोषों का प्रभाव हमारे चित्त पर ज्यादा है, यह हमें देखना होगा। शरीर की प्रकृति की चिकित्सा होती है और फिर उसके बाद निर्णय दिया जाता है कि इस शरीर में यह कमी है या फलाना रोग है। तब उस कमी की पूर्ति के लिए कार्य करना होता है। वैद्य वह काम करता है। वैसे ही अपने मन के दोष और न्यूनताएँ क्या हैं, यह हर मनुष्य देखे। इस काम में दूसरों की, मित्रों की भी मदद हो सकती है। परन्तु निर्णय का काम तो उस मनुष्य का खुद का होगा। जो न्यूनताएँ दीख पड़ेंगी, उनका निवारण करना ही उसकी साधना का पहला कदम होगा।

मान लीजिये, अपने में अहंकार दीख पड़ा, तो उसके त्याग के लिए जो साधना जरूरी है, वह करनी होगी। अगर अपने में क्रोध की मात्रा अधिक दीख पड़ी, तो दया, क्षमा आदि के प्रसंग अधिक प्राप्त हों, ऐसी कोशिश करनी चाहिए और उन गुणों का ध्यान करना चाहिए। इसलिए सबके लिए इस प्रश्न का एक ही उत्तर नहीं हो सकता। परन्तु सर्वसाधारण में कुछ खामियाँ होती हैं। इसलिए एक साधारण धर्म बन जाता है और एक साधारण उपदेश दिया जाता है। किन्तु, जिस भक्त का जो लक्षण होता है, उसके अनुसार वह काम करता है। जिसे जो बात जँचती है, उस दृष्टि से वह उस उपासना को स्वीकार करता है। मैंने 'उपासना'

शब्द का प्रयोग किया है। उपासना में गुण का विकास आता है। अगर हममें क्रोध है, तो हमें दया-गुण का विकास करने की कोशिश करनी चाहिए।

त्रिविध कार्यक्रम

यह त्रिविध कार्य है : (१) अगर हममें क्रोध अधिक है, तो दयालु स्वरूप में हमें ईश्वर की उपासना करनी चाहिए। जैसे, इसलाम में ईश्वर को 'रहीम' और 'रहमान' कहा गया है, उस रूप की उपासना करनी होगी। ईश्वर के तो अनन्त गुण होते हैं; लेकिन हममें उसकी कमी है। इसीलिए हम 'रहीम' की उपासना करते हैं। इसी तरह अगर हममें निर्दयता हो, तो हमें दयालु परमेश्वर की और सत्य की कमी हो, तो सत्यमय परमेश्वर की उपासना करनी होगी। (२) हम सृष्टि का निरीक्षण करें। यह निरीक्षण हम इस ढंग से करें कि सृष्टि में जो दया दीखती है, उसका चिन्तन हो। इस तरह अपने में जिस गुण की न्यूनता है, उसके विकास के लिए सृष्टि की मदद ली जाय। इसे 'सांख्य' कहते हैं। परमेश्वर ने सृष्टि में दया की क्या योजना की है, इस दृष्टि से उसका निरीक्षण करें। इसे 'ज्ञान-मार्ग' कहते हैं। ईश्वर ने सृष्टि में जो प्रेम-योजना की है, उसका चिन्तन करें। और (३) हम अपने में वह गुण लाने की कोशिश करें। इसे 'कर्म-योग' कहते हैं। इस तरह त्रिविध कार्यक्रम होगा।

उपासना के विभिन्न मार्ग

कुछ सम्प्रदाय प्रेम पर जोर देते हैं। जैसे, ईसामसीह ने कहा था : "गॉड इज लव" याने प्रेम ही परमेश्वर है। इसलाम ने कहा है : परमेश्वर 'रहीम' और 'रहमान' है। उपनिषदों ने कहा : "सत्यं ज्ञानमनन्तम्"। इस तरह उपनिषदों ने सत्य पर जोर दिया। बापू ने सत्य और अहिंसा पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि सत्य और अहिंसा को एक ही समझो। इस तरह उपासना के भिन्न-भिन्न मार्ग माने जाते हैं। अक्सर मनुष्य में लोभ की मात्रा अधिक होती है। इसलिए दान का उपदेश चलता है और परमेश्वर की उदारता का चिन्तन करने के लिए कहा जाता है। इसी तरह मनुष्य में क्रोध हो, तो उसे परमेश्वर की दया का

चिन्तन करना चाहिए। उसमें काम की मात्रा अधिक हो, तो उसे संयम की साधना करनी चाहिए और परमेश्वर की योजना में किस तरह कानून बने हैं, कैसे नियमन होता है, इसका मनन करना चाहिए। इस तरह काम, क्रोध, लोभ आदि से मुक्त होने की जो सर्वसाधारण दृष्टि है, वह मैंने आपके सामने रखी।

मुख्य दोष : असत्य

लेकिन, अपनी दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्व मैं जिस चीज को देता हूँ और सबके लिए जो चीज मुझे अत्यन्त जरूरी लगती है, वह मैं अभी आपके सामने रखूँगा। हीरालाल शास्त्री* हमसे मिलने आये थे। उनसे हमारी पन्द्रह दिन तक रोज चर्चा चलती थी। उनसे मैंने यह बात छेड़ी। मैंने कहा कि आज जो सामाजिक मूल्य चलते हैं, उनमें बड़ा भारी फर्क करने की जरूरत है। आज कुछ 'महापातक' माने जाते हैं, जैसे, सुवर्ण की चोरी करना, शराब पीना, व्यभिचार करना, खून करना आदि। इन सबकी 'महापातकों' में गणना होती है और बाकी के सब 'उपपातक' माने जाते हैं। लेकिन हमें लगता है कि हमारी साधना तब तक आगे नहीं बढ़ेगी, जब तक हम यह न समझेंगे कि दुनिया में जितने दोष होते हैं, जैसे, खून, व्यभिचार आदि, और जिन्हें दुनिया बहुत बड़ा दोष मानती है—वे सब दोष गौण हैं और मुख्य दोष है, "असत्य"। असत्य ही एक नैतिक दोष है और बाकी के सारे व्यावहारिक दोष हैं। अगर यह वृत्ति समाज में स्थिर हो जाय, तो हम आज की झंझटों से मुक्त हो सकेंगे।

मानसिक रोग

मान लीजिये कि कोई आदमी बीमार पड़ता है। वह उस बीमारी को प्रकट करता है, छिपाता नहीं है, क्योंकि प्रकट करने से रोग डॉक्टर की समझ में आता है और फिर डॉक्टर की उसे मदद मिल सकती है, जिससे वह बीमारी से मुक्त हो सकता है। किन्तु अगर किसीने कोई गलत काम किया, जिसकी दुनिया में निन्दा होती है, तो वह उस काम को छिपाता है। इस तरह मनुष्य अपनी मानसिक बुराइयों को छिपाता है। इसका परिणाम यह होता है कि उसके निवारण

* वनस्थली (जयपुर) विद्यापीठ के अधिष्ठाता।

का रास्ता उसे नहीं मिलता और उसमें से दूसरे की मदद भी नहीं मिलती। इसलिए हम चाहते हैं कि समाज में यह विचार पैठ जाय कि जितने पाप माने जाते हैं, वे सब शरीर के स्थूल रोगों के समान ही मानसिक रोग हैं।

रोगी दया का पात्र

हम रोगी से घृणा नहीं करते, बल्कि उसकी ओर दया की निगाह से देखते हैं, यद्यपि यह जाहिर है कि मनुष्य को बहुत-से रोग दोषों के कारण ही होते हैं। सारे रोग ऐसे ही होते हैं, यह तो मैं नहीं कहूँगा, क्योंकि ऐसी निरपवाद बात नहीं कही जा सकती। कुछ ऐसे भी रोग हो सकते हैं, जो मनुष्य के दोषों के कारण नहीं होते। लेकिन मैं अपनी बात कहूँगा। बिलकुल बचपन की तो नहीं, क्योंकि उस समय के बारे में मैं नहीं जानता; लेकिन जब से मुझे ज्ञान हुआ, उसके बाद की बात करता हूँ। तब से मैंने देखा है कि मुझे जो रोग हुए, वे सब मेरे दोषों के ही कारण हुए। कोई रोग हुआ, तो सोचने पर मुझे मालूम हो जाता है कि वह अमुक दोष के कारण हुआ। मुझे तो जब तक दोष मालूम नहीं होता, तब तक चैन नहीं लेता और सोचने पर कोई-न-कोई दोष मिल ही जाता है। बर्ताव में जो कुछ अव्यवस्था थी, वह दीख जाती है। इसलिए रोग के लिए रोगी ही जिम्मेवार होता है। फिर भी हम उसे दोषी नहीं समझते, बल्कि दया का पात्र ही समझते हैं।

घृणा का दुष्परिणाम

अस्पताल में किसी रोगी को भरती किया जाता है, तो उसका रोग गम्भीर होने पर भी वहाँ के सब लोग उसकी ओर घृणा की दृष्टि से नहीं, बल्कि दया की दृष्टि से ही देखते हैं और मानते हैं कि हमें इसकी सेवा करनी है। साथ ही वह भी अपना रोग छिपाता नहीं है। वैसे ही हम चाहते हैं कि मानसिक बुराइयों के बारे में भी हो। जहाँ जरूरत न हो, वहाँ उन्हें प्रकट न किया जाय। आज तो आम जनता के सामने उन्हें प्रकट करने की प्रेरणा या हिम्मत मनुष्य को नहीं होती, क्योंकि आज समाज में उसकी निन्दा होती है और उन बुराइयों की ओर घृणा की निगाह से देखा जाता है। कुछ रोगों की ओर भी घृणा की निगाह

से देखा जाता है, तो मनुष्य उन्हें भी छिपाने की कोशिश करता है, जैसे—कोढ़। मेरे पेट में अल्सर है, तो मैं उसे छिपाता नहीं, उसे प्रकट कर देता हूँ। लेकिन किसीको कोढ़ हुआ, तो वह उसे छिपाने की कोशिश करता है। इससे उसका रोग दुरुस्त नहीं हो सकता। लेकिन उसका परिणाम यह होता है कि उस मनुष्य का रोग बढ़ता जाता है और चूँकि वह समाज में सबके साथ खुलेआम व्यवहार करता है, इसलिए उसका रोग दूसरों को भी लगने का खतरा रहता है। तो, इसमें सब तरह से खतरा है।

मूल्य बदलना जरूरी

इसी प्रकार आज समाज में मानसिक दोषों के प्रति घृणा है, इसलिए मनुष्य उन्हें प्रकट नहीं करता। होना तो यह चाहिए कि आज समाज में जितने भी दोष गिने जाते हैं—शराब पीना, व्यभिचार करना आदि—वे सब मामूली दोष हैं और नैतिक दोष एक ही है, 'छिपाना', 'असत्य'। अगर यह मूल्य स्थापित हो जाय, तो समाज जल्दी सुधरेगा। इसलिए सत्य और अहिंसा में फर्क किया जाता है। विशेष हालत में किसीने हिंसा कर डाली, तो उसका वह दोष होगा। किन्तु असत्य ही तो मूल नैतिक दोष है और बाकी के सारे शारीरिक या मानसिक दोष हैं, यह मूल्य समाज में स्थिर होना चाहिए।

दोष प्रकट करें

इसलिए मैं चाहता हूँ कि हमें बेखटके अपने दोषों को प्रकट कर देना चाहिए। कुछ लोगों को भय लगता है कि इससे तो दोष बढ़ेंगे। तभी तो वे कहते हैं कि लोक-निन्दा की जरूरत है और इसीलिए लोक-निन्दा को विकसित किया गया है। लेकिन आज इस पर इतना जोर दिया गया है कि उससे कुछ दोष तो कम होते हैं, पर उनके पीछे असत्य फैलता है। असत्य बहुत बड़ा दोष है। इस तरह छोटे दोषों के बदले कोई बड़ा दोष आये, तो खतरा पैदा होता है। आज बच्चे अपना अपराध छिपाते हैं। लेकिन अगर उन्हें तालीम दी जाय कि अपराध छिपाना ही सबसे बड़ा अपराध है, सबसे बड़ा दोष है, तो वे ऐसा न करेंगे। इन दोषों की तरफ देखने की समाज की आज जो दृष्टि है, वह बदलेगी। आज हम जिन दोषों को भयानक पाप मानते हैं, उन्हें वैसा न मानें, तो उन

सुधार होगा और आध्यात्मिक साधना में उससे मदद मिलेगी। जहाँ मनुष्य सत्य को छिपाता है, वहाँ दंड से बचने के लिए छिपाता है। उसका छिपाना भी कुशलता मानी जाती है। इसलिए हम चाहते हैं कि दोषों के लिए दंड ही न होना चाहिए, बल्कि उनकी दुरुस्ती होनी चाहिए। कोई बीमार पड़ता है, तो हम उसे सजा थोड़े ही देते हैं। हाँ, उसे उपवास करने के लिए कहते हैं, कड़वी दवा पिलाते हैं और कभी-कभी ऑपरेशन भी करते हैं। अगर इन्हींको दंड कहना हो तो कहिये। परन्तु यह तो 'ट्रीटमेंट' है, उपचार है, सेवा है। इसलिए समाज में जितनी बुराइयाँ हैं, उन सबके लिए उपचार ही होना चाहिए, दंड नहीं। यह बात समाज में रूढ़ हो जाय, तो आसानी से मन दुरुस्त हो सकता है और समाज बदल सकता है। कुछ लोगों को इसमें खतरा मालूम होता है। वे कहते हैं कि अगर यह दंडवाली व्यवस्था मिट जायगी, तो मनुष्यों के दोष खुलेआम फैलेंगे। लेकिन यह विचार गलत है। आज दंड देकर सब दोषों को दबाने या छिपाने की प्रवृत्ति बढ़ी है। उससे अन्तःशुद्धि नहीं होती और परिणामस्वरूप बुराइयाँ फैलती हैं। इसलिए मेरी यह मान्यता है कि सब लोगों को और खासकर आध्यात्मिक साधना करनेवालों को तो सत्य को कभी छिपाना ही न चाहिए। यही सर्वोत्तम साधना होगी। यही प्राथमिक, बीच की और आखिरी साधना होगी। यही एकमात्र साधना होगी।

उपनिषदों में कवि कहता है :

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत् त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥

याने "सत्य का मुख हिरण्मय पात्र से ढँका हुआ है। मैं सत्य-धर्मा हूँ, इसलिए हे प्रभु, वह असत्य का पर्दा दूर कर दो!"

आरम्भ कहाँ से हो?

इसलिए यही सर्वोत्तम या सर्वप्रथम साधना है। इसका आरम्भ स्कूल से और घर से हो। आज तो यह होता है कि लड़के माता-पिता से अपने दोष छिपाते और मित्रों में प्रकट करते हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि जो माता-पिता पर इतना प्यार करते हैं, उनके लिए त्याग करते हैं, उनकी सेवा करते हैं,

कहा कि 'सत्य है खजूर।' उसने समझा कि मैं विनोद कर रहा हूँ। फिर मैंने कहा कि 'अगर आपको लगता है कि सत्य खजूर नहीं है, तो सत्य बादाम समझो।' वह बात भी उसे नहीं जँची, तो मैंने कहा : 'सत्य क्या चीज है, यह आपको मालूम है, ऐसा दीखता है। क्योंकि मैं जिस-जिस चीज का नाम लेता हूँ, वह आपको जँचती नहीं। फिर आप ही बताइये कि सत्य क्या है? उसके अनुसार मैं व्याख्या करूँगा। सत्य की व्याख्या भी सत्य की कसौटी पर कसी जायगी।' सत्य की कोई व्याख्या नहीं हो सकती। सत्य स्वयं स्पष्ट है। दुनिया में इतना स्पष्ट दूसरा कोई तत्त्व नहीं है। अहिंसा किसे कहा जाय, इसकी व्याख्या करने जाओ, तो काफी तकलीफ होनी है। लेकिन सत्य के साथ वह बात नहीं है।

गीता ने कहा है कि असुरों में सत्य भी नहीं होता। याने, सत्य ऐसा गुण है कि बच्चा भी उसे समझ सकता है। किन्तु बच्चे को जब हम सिखाते हैं कि सत्य बोलो, तभी वह असत्य क्या चीज है, यह सीख जाता है। क्योंकि वह पूछता है कि सत्य बोलना याने क्या? तब उसे असत्य का परिचय कराना पड़ता है। इतना स्वयं स्पष्ट है सत्य। परन्तु हम उसे दबाने की कोशिश करते हैं। व्यापार, व्यवहार, हर जगह असत्य की जरूरत है, ऐसा कहा जाता है। याने, किस चीज को महत्त्व देना और किस चीज को गौण मानना, यह हम जानते ही नहीं। इसलिए अपनी दृष्टि से तो मैं यही कहूँगा कि आध्यात्मिक और व्यावहारिक, दोनों दृष्टियों से सत्य को प्रधान स्थान देना चाहिए। हमारे लिए सर्वप्रथम वस्तु सत्य ही है। हमें उसीकी उपासना करनी चाहिए।

सत्य और निर्भयता

सत्य की पूर्ति में दूसरे गुण आते हैं। लेकिन आज ऐसा नहीं होता, क्योंकि हम अपने दोष प्रकट करते हैं, तो समाज में निन्दा होती है। उस निन्दा को सहन करने की हिम्मत हममें होनी चाहिए। इसलिए सत्य-रक्षा के लिए निर्भयता की जरूरत महसूस होती है। जो कुछ होना है, होने दो; कोई हमारी कितनी भी निन्दा करे, हम सत्य ही बोलेंगे,' ऐसा निश्चय करने की आज जरूरत है। किन्तु वास्तव में सत्य तो स्वाभाविक है। आज समाज की हालत उल्टी है, इसलिए सत्य के लिए निर्भयता की जरूरत है। तभी तो नाहक निर्भयता का महत्त्व बढ़ गया है। नाहक कहो या उचित, पर आज बिना निर्भयता के सत्य प्रकट नहीं कर

सकते। इसलिए निर्भयता को महत्त्व देना पड़ता है। बापू ने भी उसे महत्त्व दिया था और गीता ने तो 'अभय' को सब गुणों का सेनापति बनाया है। पर बारीकी से देखा जाय, तो अभय सत्य की रक्षा के लिए एक युक्ति ही है। अभय के बिना सत्य की रक्षा नहीं हो सकती, इसलिए अभय को स्थान मिला। समाज की आज जो हालत है, वह यदि न होती, तो अभय को इतना महत्त्व का स्थान न मिलता।

भय और अभय

वस्तुतः जीवन में भय और अभय, दोनों की जरूरत होती है। सिर्फ अभय ही अभय चले, तो मूर्खता होगी। अगर कहीं साँप पड़ा है और उससे हम डरें नहीं, तो वह गलत होगा। जहाँ डरने की जरूरत है, वहाँ डरना चाहिए और जहाँ डरने की जरूरत नहीं है, वहाँ नहीं डरना चाहिए। रेल आयी और हम पटरी पर से चल रहे हैं और डरते नहीं, तो वह मूर्खता होगी। इसलिए कुछ जगहों पर भय की भी जरूरत होती है और बच्चों को इस तरह का जो भय सिखाया जायगा, वह ज्ञान ही होगा। ज्यादा खाओगे, तो तकलीफ होगी, अग्नि पर पाँव रखोगे, तो पाँव जल जायगा, बाढ़ में जाओगे, तो डूब जाओगे, यह सब सिखाना ज्ञान की प्रक्रिया ही है। इसलिए उस प्रक्रिया में यह भी होता है कि कौन-से काम करने से खतरा पैदा होगा, यह सब सिखाना चाहिए। वह डर भी ज्ञानस्वरूप है। इस दृष्टि से सोचा जाय, तो भय और अभय, दोनों की जीवन में जरूरत होती है। गीता ने भी कहा है कि कहाँ डरना, कहाँ नहीं डरना, यह दोनों मालूम होना चाहिए।

सत्य ही सर्वप्रथम गुण

लेकिन आज तो उल्टा होता है। माता-पिता से नहीं डरना चाहिए, पर बच्चे उन्हींसे डरते हैं। मूर्ख मित्रों से डरना चाहिए, पर बच्चे उनसे नहीं डरते और उनके पास अपने दिल की बात खोल देते हैं यानी समाज में सब उल्टा ही चलता है। आज अभय को जो इतना सार्वभौम महत्त्व मिला है, उसका कारण यही है कि आज के समाज में उसके बिना सत्य की रक्षा नहीं हो सकती। अभय को सर्वप्रथम गुण माना तो गया है, परन्तु वास्तव में सत्य ही सर्वप्रथम गुण है।

दांतन, मेदिनीपुर
२५-१-'५५

उत्कल : पुरी-सम्मेलन तक

[२६ जनवरी '५५ से ३१ मार्च '५५ तक]

सर्वविध दासता से मुक्ति की प्रतिज्ञा

आज मुझे इस बात की बहुत खुशी हो रही है कि आखिर इस वीर-भूमि में मेरा प्रवेश हो गया। यह वह भूमि है, जिसने चक्रवर्ती अशोक को अहिंसा की दीक्षा दी थी। जिसने 'चंड अशोक' का परिवर्तन कर उसे 'धर्म अशोक' बना दिया। गांधीजी कहते थे कि दरिद्रों की सेवा के लिए कहीं दौड़े जाना है, तो उत्कल में जाना है। लेकिन मैंने देखा कि भारत में अन्य भी ऐसे प्रदेश हैं, जो दारिद्र्य में उत्कल के साथ मुकाबला कर सकते हैं।

स्वराज्य के दो अंश

मुझे इस बात की विशेष खुशी हो रही है कि आज स्वराज्य की प्रतिज्ञा का दिन है और इसी दिन हमारा यहाँ आना हुआ है। इस दिन हिन्दुस्तान ने स्वराज्य की प्रतिज्ञा ली थी और आज इसका एक अंश पूरा हुआ है। लेकिन जो अंश पूरा हुआ है, वह छोटा-सा है और जो पूरा करने का बाकी है, वह बहुत बड़ा अंश है। हम किसीका जुल्म सहन नहीं कर सकते, यह स्वराज्य का एक अंश है और किसी पर जुल्म नहीं करते, यह दूसरा अंश है। हम न किसीसे दबेंगे और न किसीको दबायेंगे, हम न किसीसे डरेंगे और न किसीको डरायेंगे। ये दो अंश मिलकर निर्भयता और स्वराज्य होता है। जंगल का शेर जुल्म नहीं सहन करता, लेकिन वह स्वतन्त्रता का प्रेमी नहीं है। क्योंकि वह दूसरे जानवरों पर जुल्म करता है। इसीलिए स्वातन्त्र्यप्रेमी मनुष्य की व्याख्या मैं यह करता हूँ कि जिसके घर तोता पिंजरे में हो, वह स्वतन्त्रता का प्रेमी नहीं।

अस्पृश्यता मिटानी चाहिए

अंग्रेजों की सत्ता तो हमने यहाँ से हटा दी, फिर भी पूरी तरह से आजादी प्रकट हुई, ऐसी बात नहीं। आज भी यहाँ गुलामी के अनेक प्रकार हैं। इसलिए

आज हम सब लोगों को यह प्रतिज्ञा दोहरानी है, फिर से प्रतिज्ञा करनी है कि इस देश में किसी प्रकार की गुलामी हम न रहने देंगे। आज मुझे विशेष रूप से स्मरण होता है अपने हरिजन भाइयों का, जिनका छूत-अछूत-भेद हमने अभी तक छोड़ा नहीं है। हमें प्रतिज्ञा करनी है कि इस मंगल देश में अस्पृश्यता की अमंगल प्रथा हम एक दिन भी न चलने देंगे। जो भी अधिकार दूसरे सब लोगों को है, वे सभी हम हरिजन भाइयों को देंगे, तभी पूरे आजाद होंगे। यह तो सामाजिक गुलामी का एक नमूना है, जो सबसे बदतर है।

मालकियत मिटानी है

दूसरा आर्थिक गुलामी का नमूना है, भूमिहीन मजदूर और शहरवाले फैक्टरी के मजदूर। आप जानते हैं कि इस आन्दोलन को, जिसे लोग भूदान-यज्ञ-आन्दोलन कहते हैं, मैंने 'मजदूरों का आन्दोलन' माना है। उनके दास्य-निरसन के लिए हमने अभी तो भूदान-यज्ञ और सम्पत्ति-दान-यज्ञ का काम शुरू किया है, लेकिन यह तो आरम्भमात्र है। हमें करना तो यह है कि भारत में कोई भी मालकियत का दावा नहीं करेगा। मालिक एक भगवान् होगा। भगवान् ही मालिक और स्वामी है, हम तो सारे उसके सेवक हैं, सबकी बराबरी है। हमें सम्पत्ति की, कारखानों की मालकियत मिटानी है। सारे समाज की सम्पत्ति समाज-भर बरती रहेगी और सबको उसका समान रूप से लाभ मिलेगा, यह हमें करना है। हमारे देश में स्त्री-पुरुषों के बीच भी काफी असमानता है। इसे भी हमें मिटाकर स्त्रियों को पूरी आजादी देनी है, तभी स्वराज्य का एक अंश पूरा होगा। हमें इस बात की खुशी हो रही है कि इस देश में यह शब्द निकल पड़ा है कि हमें यहाँ 'अहिंसक समाजवादी रचना' करनी है। हिन्दुस्तान के समाजवाद में हम लोगों ने विचार कर निर्णय किया है कि इसमें मनुष्यों के साथ गायों और बैलों का भी समावेश होगा। इसलिए इस देश में अपने जानवरों पर भी हमें बहुत प्यार बरसाना चाहिए। उन पर कोई अन्याय नहीं होना चाहिए। आदिवासियों को हमें दूसरे लोगों के स्तर पर लाना होगा। ये सब प्रतिज्ञाएँ हमें अभी पूरी करनी हैं। इसलिए आज के दिन का महत्त्व ज्यादा है।

मैं तो और गहराई में जाकर यह भी कहना चाहता हूँ कि हमारी इन्द्रियाँ और मन, सब हमारे वश में रहेंगे, हम उनके गुलाम न रहेंगे। इसलिए प्राचीन काल में वैदिक ऋषि ने मंत्र दिया था : यतेमहि स्वराज्ये—हम स्वराज्य के लिए प्रयत्न करेंगे। इस तरह गुलामी के सभी प्रकारों को हमें मिटाना है और उसके लिए भूदान-यज्ञ प्रतीक मात्र है। इतना सारा काम बिना अहिंसक क्रांति के नहीं हो सकेगा, इसलिए हमने अहिंसक क्रांति का उद्घोष किया है। भूदान-यज्ञ में जो जमीन मिलेगी, उसका कम-से-कम एक-तिहाई हिस्सा हरिजनों में बँटेगा, ऐसा हमने बहुत पहले से जाहिर कर दिया है।

भूदान-यज्ञ और सामाजिक, आर्थिक विषमता

आज के दिन हम सब प्रतिज्ञा करें कि हम अपने देश में किसी भी प्रकार की सामाजिक और आर्थिक गुलामी न रहने देंगे। हर मनुष्य को अपनी सम्पत्ति का और अपनी भूमि का छठा हिस्सा देकर ही खायेंगे। सम्पत्ति, जमीन गाँव-गाँव बँटेगी और सारे गाँवों में गोकुल स्थापित होगा। इसलिए हम यह अपना परम भाग्य समझते हैं कि राजनैतिक स्वतंत्रता का मसला हल होने के साथ ही यह काम करने का मौका भगवान् ने हमें दे दिया। आप सब बड़े भाग्यवान् हैं कि ऐसा काम करने, धर्म-कार्य में हाथ बँटाने का मौका मिला है। पहले कदम के तौर पर आज हम छठा हिस्सा माँगते हैं, लेकिन आखिर हमें कुल जमीन गाँव की बनानी है।

लक्ष्मणनाथ रोड
२६-१-'५५

अपरिग्रही समाज के पाँच लक्षण : ८ :

हमने जाहिर कर ही दिया है कि 'हिन्दुस्तान में जैसे हवा, पानी, सूरज की रोशनी सबको हासिल है, वैसे ही जमीन भी सबको हासिल होकर रहेगी।' हमारी खूबी यह है कि हम यह काम लोगों के जरिये करना चाहते हैं। लोगों को समझाकर उनका हृदय-परिवर्तन करके करना चाहते हैं। हम उन्हें समझाना चाहते हैं कि जमीनवालों और भूमि-हीनों, दोनों का इसीमें भला है कि जमीनवाले कम-से-कम अपनी भूमि का छठा हिस्सा भूमि-हीनों को दे दें। हम यह भी समझाना चाहते हैं कि सम्पत्तिवाले अपनी सम्पत्ति का छठा हिस्सा सम्पत्तिहीनों को प्रेम से दे दें। हमारे पास यह काम करने का एक ही शस्त्र है और वह है, प्रेम से समझाना। इसलिए जहाँ-जहाँ हम जाते हैं, लोग हमारे सामने शंका पेश करते और हम उनका उत्तर दिया करते हैं। कई जगह वही शंका बार-बार लोग पूछते हैं, लेकिन हम बार-बार उत्तर देने में थकान नहीं महसूस करते हैं, बल्कि हमारा उत्साह बढ़ता ही है। लोग पूछते हैं और आज भी एक भाई ने पूछा कि आखिर आप जो सर्वोदय-समाज बनाना चाहते हैं, उसमें लक्ष्मी बढ़ेगी या घटेगी? उसमें संग्रह रहेगा या नहीं? लोग समझते हैं कि 'बाबा' पैदल घूमता है, बहुत कपड़ा नहीं पहनता और परिग्रह छोड़ बैठा है, तो सारे समाज को भी ऐसा ही बनाना चाहता है। सारांश, वे समझ लेते हैं कि सर्वोदय-समाज में कम-से-कम संग्रह और शायद लक्ष्मी भी कम-से-कम रहेगी और इसीलिए यह बात सभी हमसे पूछते हैं। किन्तु हम उन्हें समझाना चाहते हैं कि हमें समाज तो 'असंग्रह' के तत्त्व पर ही खड़ा करना है, लेकिन 'असंग्रह' का अर्थ लोग समझे नहीं हैं। आज हम उसे ही समझाना चाहते हैं।

अपरिग्रह में अति-संग्रह, पर विभाजित

आज तो हिन्दुस्तान में सर्वोदय-समाज है ही नहीं। बड़े-बड़े धनपति हैं और लोगों पर संग्रह बढ़ाने की धुन सवार है। लेकिन इतनी संग्रह-निष्ठा करके भी

लोगों ने कितना संग्रह किया ? हर घर में आदमी पीछे ढाई छटाक दूध है, यह तो आज संग्रही समाज की रचना है। किन्तु बाबा जो समाज बनाना चाहता है, असंग्रही समाज लाना चाहता है, उसमें हर मनुष्य के पीछे एक सेर दूध रहेगा। आज तो संग्रही समाज में यह हालत है कि देश के पास सालभर का अनाज होगा या नहीं, यही शंका है।

लेकिन बाबा जो असंग्रही समाज बनाना चाहता है, उसमें कम-से-कम दो साल के अनाज का पूरा संग्रह रहेगा। बाबा के समाज में हर घर में अनाज रहेगा और भूखों को हर घर में जाकर खाना माँगने का हक होगा। जैसे प्यासा किसी भी घर में जाकर पानी माँगता है, तो उससे कोई पैसा नहीं माँगता और पानी पिलाता है, वैसे ही कोई भी भूखा किसी भी घर में जाय, तो लोग उसे खिलाने के लिए राजी होंगे। उसे खिलाने के लिए हर घर में पूरा अनाज हो, ऐसा बाबा का असंग्रही समाज है। बाबा ने यह बात नयी नहीं कही। बाबा के बाबा, परमगुरु उपनिषदों ने ही यह मंत्र दिया है कि अन्न खूब बढ़ाओ। उपनिषद् का अर्थ है, ब्रह्मविद्या। वह सबको समझाती है कि जगत् मिथ्या है, इसलिए आसक्ति मत रखो। वही यह भी सिखलाती है कि 'अन्नं बहु कुर्वीत तद् व्रतम्' अन्न खूब बढ़ाओ। बाबा कहता है कि अन्न बढ़ायेंगे, तो हर घर में अन्न खूब रहेगा। इतना रहेगा कि कोई उसकी कीमत ही न करेगा, उसे मिथ्या समझेगा। फिर अगर कोई भूखा हो, तो लोग उसे खिलायेंगे। लेकिन कोई अन्न बेचेगा नहीं।

आप पूछेंगे कि इसमें असंग्रह क्या हुआ, यह तो संग्रह ही है। लेकिन इसमें यह खूबी है कि भूखे को हर कोई खिलायेगा। जो लोग 'डालडा' खाते हैं, उन्हें अच्छा घी खाने के लिए मिलेगा। बाबा के समाज में खूब घी मिलेगा, तरकारी मिलेगी। किसी भी घर में आप जाइये, घर का मालिक आपसे कहेगा, 'आइये, जरा दो घंटे खेत में काम करें, ग्यारह बजे भोजन करेंगे। अभी तो नौ बजे हैं।' तो, बाबा के समाज में लोग गोश्त, मछली खाना छोड़ देंगे और इसीलिए गाय का दूध खूब पीयेंगे। आज तो गाय को मुश्किल से दूध रहता है, पर बाबा की योजना में, अपरिग्रही समाज में शहद की महानदी बहेगी। जैसे महानदी जंगल से आती है, वैसे ही शहद भी जंगल से आयेगा। इस तरह अपरिग्रही समाज में हम इतना परिग्रह

बढ़ाना चाहते हैं, लेकिन लोग जानते ही नहीं। हम संग्रह तो बढ़ाना चाहते हैं, पर उसे घर-घर में बाँटना भी चाहते हैं। हम नहीं चाहते कि किसीका शरीर मजबूत रहे और किसीका कमजोर। हम चाहते हैं कि हर मनुष्य का शरीर मजबूत रहे। हम नहीं चाहते कि समाज में हाथ के पाँव और पेट का नगाड़ा हो, हर-एक का शरीर समान रूप से मजबूत होना चाहिए। प्रत्येक अवयव में शक्ति रहनी चाहिए। साराश, अपरिग्रही समाज में लक्ष्मी खूब बढ़ेगी। कारण अपरिग्रह याने अत्यन्त संग्रह, लेकिन वह बँटा हुआ।

निकम्मी चीजों का संग्रह न होगा

तीसरी बात यह है कि किसी निकम्मी चीज का संग्रह न रहेगा। असंग्रह के तौर पर हम सिगरेट जैसी चीजों को होली में जलाना चाहते हैं। निकम्मी चीज का संग्रह समाज में न होगा। इस तरह 'असंग्रह' के तीन अर्थ हुए। पहला अर्थ यह है कि समाज में लक्ष्मी खूब बढ़े। दूसरा अर्थ यह कि वह लक्ष्मी घर-घर बँटे। और तीसरा यह कि निकम्मी चीजों का संग्रह न बढ़े। शराब की बोतलें और सिगरेट का बण्डल लक्ष्मी नहीं है।

क्रमयुक्त संग्रह

असंग्रह, अपरिग्रह में चौथी बात यह होगी कि अच्छी चीजों में भी क्रम देखना पड़ेगा। आज तो क्रम का कोई भान ही नहीं रहता और लोग नाहक चीजें बढ़ाते चले जाते हैं। यह क्रम इस प्रकार रहेगा :

(१) खाना उत्तम मिलना चाहिए।
(२) हरएक को कपड़ा मिलना चाहिए।
(३) अच्छे घर मिलने चाहिए।
(४) औजार मिलने चाहिए।
(५) ज्ञान के साधन याने पुस्तक आदि उत्तम मिलनी चाहिए।
(६) मनोरंजन के साधन संगीत आदि भी उपलब्ध होने चाहिए।

जिस तरह चीजों का क्रम लगाया गया है, उसीके अनुसार चीजें बढ़नी चाहिए। एक भाई ने कहा था कि सभा में तो लोग अच्छे-अच्छे कपड़े पहनकर

आते हैं, इसलिए अब दारिद्रय नहीं रहा। किन्तु हम कहते हैं कि दारिद्रय भी है और अक्ल भी कम है। शहरों की यह हालत है कि खाने को नहीं मिलता, पर लोग अच्छे-अच्छे कपड़े पहनते हैं। घी नहीं मिलता, लेकिन 'डालडा' खाते हैं। कई घरों में खाने की चीजें पूरी तरह मुहैया नहीं हैं, लेकिन कपड़े खूब हैं। टूथ ब्रश, पेस्ट, लिपस्टिक आदि हैं और हारमोनियम भी है। अरे भाई! बाजा बजाओ, लेकिन पहले खाओ, फिर बजाओ। इस तरह कौन-सी चीज पहले और कौन-सी चीज बाद में हासिल करनी चाहिए, यह देखना होगा। मान लीजिये कि हमारे घर में पूरा दूध नहीं, घी नहीं है, तो पहले हम उन्हें ही लायेंगे। सारांश, 'असंग्रह' का मतलब हुआ क्रमयुक्त संग्रह।

पैसा कम-से-कम रहेगा

अपरिग्रही समाज में पैसा कम-से-कम रहेगा। पैसा लक्ष्मी नहीं, पिशाच या राक्षस है। वास्तव में केला, आम, तरकारी, अनाज, यही लक्ष्मी है। यह पैसा तो नासिक के छापाखाने में पैदा होता है, कागज से बनता है। जैसे किसीको रिवाल्वर दिखाकर केले ले जाना चोरी-डकैती है, वैसे ही पाँच रुपये का नोट दिखाकर घी ले जाना भी डकैती है। पैसा तो राक्षसों का औजार है, लेकिन लक्ष्मी देवता है। वह विष्णु भगवान् के आश्रय में रहती है। "उद्योगिनं पुरुष-सिंहमुपैति लक्ष्मीः।" उद्योग करनेवाले को लक्ष्मी मिलती है और पैसा तो छापाखाना चलाने से मिलता है। 'कराग्रे वसते लक्ष्मीः।' लक्ष्मी हमारे हाथ की अंगुलियों में रहती है। भगवान् ने जो दस अंगुलियाँ हमें दी हैं, उनसे परिश्रम करने पर लक्ष्मी मिलेगी। सारांश, अपरिग्रही समाज में सबसे कम चीज होगी, पैसा।

कारण पैसे से चोरी सुलभ हो जाती है। वह रात में भी नहीं करनी पड़ती, दिन में ही हो जाती है। यह सारा पैसा लोगों के पास पहुँचा और उसीने लोगों को भ्रम में डाल दिया है। आज जो दरिद्र है, वह लक्ष्मीवान् बना है और जो लक्ष्मीवान् है, वह दरिद्र बन गया है। जिसके पास दही, दूध, तरकारी, अनाज है, वह कहलाता है 'गरीब' और जिसके पास इनमें से कोई भी चीज नहीं, सिर्फ पैसा है, उसे 'श्रीमान्' या 'धनी' कहा जाता है। ये श्रीमान् लोग बेचारे श्रमिकों

के पास जाते हैं और पैसा देकर उनसे चीजें लेते हैं। इस तरह संग्रह याने पैसे का संग्रह और वह अपरिग्रही समाज में कम-से-कम होगा। इसीलिए हम उसे 'अपरिग्रही-समाज' कहते हैं। इस तरह अपरिग्रही समाज के पाँच लक्षण हुए : (१) इस समाज में लक्ष्मी खूब बढ़ेगी याने उसका प्राचुर्य होगा। (२) लक्ष्मी घर-घर बँटी रहेगी याने उसका समान वितरण होगा। (३) निरर्थक वस्तुओं का संग्रह न होगा। (४) क्रम-युक्त संग्रह होगा और (५) पैसा कम-से-कम रहेगा।

जामफूली (बालेश्वर)
२९-१-'५५

भारतीय श्रीमान् बापू की अपेक्षाएँ पूरी करें : ९ :

आप सभी जानते हैं कि आज महात्मा गांधीजी का प्रयाण-दिन है। वह घटना तो दिल्ली की प्रार्थना-सभा में हुई थी और उस दिन मैं पवनार के आश्रम में था। घटना होने के दो घण्टे के बाद मुझे उसकी जानकारी करायी गयी। सुनते ही मेरे मन में यही अनुभव हुआ कि 'अब बापू अमर हो गये' और उस क्षण से आज इस क्षण तक मेरा सतत यही अनुभव रहा है। बापू जब देह में थे, तो उनसे मिलने, उनके पास पहुँचने के लिए कुछ समय लगता था। लेकिन आज उनसे मुलाकात करने के लिए तो एक क्षण की भी जरूरत नहीं पड़ती। जरा आँख बंद करके सोचते ही मुलाकात हो जाती है। वे 'राष्ट्र-पिता' कहलाये जाते हैं और वह संज्ञा उनके लिए सब तरह से योग्य है। हम सब आस-पास के लोग और बहुत-से भारतवासी उन्हें 'बापू' नाम से पहचानते थे। 'बापू' का अर्थ 'पिता' होता है।

व्यापक ईश्वर में सन्तों का स्वतंत्र स्थान

गत वर्ष बारिश में हमारी सतत यात्रा हुई—बाढ़-ग्रस्त प्रदेश में घूमते हुए। किंतु मन में एक क्षण के लिए भी कभी यह चिंता न हुई कि हम किसी मुश्किल रास्ते पर चल पड़े हैं। हम एक परमेश्वर का नाम लेते हैं, तो उसके

साथ दूसरा कोई नाम लेना बाकी ही नहीं रहता। परमेश्वर इतना व्यापक स्वरूप धारण किये हुए है कि उसमें असंख्य सत्पुरुष जुड़े हैं, जैसे अनार के फल के अंदर अनार के असंख्य बीज होते हैं। इसी कारण जब मैं परमेश्वर का स्मरण करता हूँ, तो उसके अंदर 'बापू' का भी स्मरण आ जाता है। मैं मानता हूँ कि ईश्वर के सामने इस तरह की बात बोलना एक हँसी-खेल है। एक उसीकी हस्ती है और दूसरी कोई हस्ती ही इस दुनिया में नहीं है। फिर भी हमारे भक्तिमय हृदय को भास होता है कि संतों का भी अपना अलग स्थान है। भले ही उनकी शक्ति ईश्वर की शक्ति में हो, पर उनका एक स्वतंत्र स्थान अवश्य है।

भूदान-यज्ञ, संपत्ति-दान-यज्ञ, श्रमदान-यज्ञ आदि कार्य चलते-चलते आखिर उनमें से जीवन-दान निकल पड़ा। इस कार्यक्रम से मेरे हृदय को अपार आनद होता है। हमेशा यह समाधान होता है कि मैं निरंतर बापू के साथ रह रहा हूँ।............ आज मुझमें लोगों को कुछ उपदेश देने की वृत्ति नहीं है। जो कुछ बोलूँगा, मानो अपने ही साथ बोल रहा हूँ, इस तरह से बोलूँगा। वैसे व्याख्यान में तो मुझे भाषा सहज ही सूझती है, लेकिन आज शायद मेरे शब्द इतने माकूल या सहज न निकले।

भारत के श्रीमानों से अपील

आज सात साल के बाद मुझे यह कहने में खुशी हो रही है कि देश आहिस्ता-आहिस्ता बापू के उपदेश के नजदीक आ रहा है। आप लोगों ने सुना होगा कि हमारी सबसे बड़ी संस्था 'कांग्रेस' अब बोल उठी है कि 'हिन्दुस्तान के गरीबों का उत्थान ही हमारा उद्देश्य होगा और हम समाजवादी रचना करेंगे।' मैं तो 'साम्ययोगी समाज' यह शब्द सबसे अधिक पसन्द करता हूँ। यह 'साम्यवाद' से तो भिन्न पड़ता है, लेकिन उसका सार इसमें आ जाता है। 'समाजवादी रचना' कहने में भी नेताओं का यही तात्पर्य दीखता है, क्योंकि उन्होंने उसके साथ 'अहिंसा' भी जोड़ दी है। आखिर 'अहिंसक समाजवाद' कहने का तात्पर्य 'साम्ययोगी समाज' ही होता है और उसीके माने हैं 'सर्वोदय'। लेकिन 'साम्ययोग' शब्द मुझे सबसे बेहतर मालूम होता है, क्योंकि उसके अन्दर किसी प्रकार का विचार-दोष नहीं आता।

देखता हूँ कि 'समाजवादी रचना' कहने से लोगों के मन में सवाल पैदा होते

हैं कि उसमें व्यक्तिगत कर्तृत्व (प्राइवेट सेक्टर) के लिए क्या स्थान रहेगा ? इस पर यह उत्तर दिया जाता है कि इसमें खानगी प्रयत्न के लिए भी काफी अवकाश रहेगा। पूँजीवालों को जरा डर-सा लगता है कि 'समाजवाद' शब्द के उच्चारण से शायद कोई दूसरी ही सूरत यहाँ उत्पन्न हो। लेकिन आज के पवित्र दिन में यह जाहिर कर देना चाहता हूँ कि अगर भारत के श्रीमान् भूदान-यज्ञ और सम्पत्ति-दान-यज्ञ में योग देंगे, तो उनके लिए कोई भय, जो उन्हें मालूम होता है, नहीं रहेगा। अगर ये लोग 'सर्वोदय' का विचार समझ लें, तो 'प्राइवेट' और 'पब्लिक सेक्टर' का भेद ही मिट जायगा। इसलिए जिनके पास कुछ सम्पत्ति है, उनसे मेरी आज अपील है कि वे सर्वोदय के विचार से अपने जीवन में परिवर्तन कर दें। मैं इसी आशा से पैदल घूम रहा हूँ कि इस सत्याग्रह के परिणामस्वरूप, जो कि आज मेरा चल रहा है, जमीनवाले और सम्पत्तिवाले इस आन्दोलन को खुद ही उठा लेंगे और इसे अपना ही आन्दोलन समझेंगे। कारण उनके हृदय में सद्भावना रहने की श्रद्धा मुझमें न होती, तो इस आन्दोलन पर मेरा विश्वास ही न होता। गत चार वर्षों का अनुभव मेरी इस श्रद्धा को दृढ़ करता आ रहा है और मैं देख रहा हूँ कि सम्पत्तिवाले और जमीनवाले धीरे-धीरे इस आन्दोलन के अनुकूल हो रहे हैं।

तीन अपेक्षाएँ

आज हिंदुस्तानभर के अपने श्रीमान् मित्रों से मेरी अपील है, भारत के सभी बड़े-बड़े मालिकों से मेरी प्रार्थना है कि वे तीन बातें करें, तो समाज-सेवा का बहुत बड़ा श्रेय उनके हाथ लगेगा। पहली चीज, जो मैं उनसे चाहता हूँ, यह है कि वे मुनाफाखोरी और ब्याज को छोड़ दें। इससे वे कुछ भी खोयेंगे नहीं, बल्कि बहुत इज्जत पायेंगे। दूसरी बात यह है कि वे अपनी सम्पत्ति का उपयोग एक ट्रस्टी के नाते करने की जिम्मेवारी उठा लें और वैसा देश के सामने जाहिर कर दें। मेरी तीसरी माँग यह है कि वे प्रेम-चिह्न या सर्वोदय-विचार की मान्यता के तौर पर सम्पत्ति-दान में अपनी सम्पत्ति का छठा हिस्सा दें, ताकि गरीबों और भूमि-हीनों को शीघ्र मदद पहुँचे। अगर वे ये तीन बातें करेंगे, तो उन्हें 'समाजवाद' शब्द से डरने का कोई भी कारण न रहेगा। इससे उन्हें काफी प्रतिष्ठा मिलेगी।

गांधीजी बहुत आशा करते थे कि हिन्दुस्तान के श्रीमान् अपनी सम्पत्ति का एक ट्रस्टी के नाते विनियोग करना कबूल करेंगे। मैं भी इसी आशा से सतत घूम रहा हूँ। लेकिन इतना ही कहता हूँ कि अब ज्यादा समय नहीं है। यह विज्ञान का जमाना है और जो करना हो, शीघ्रता से करना चाहिए। अगर वे संपत्तिदान में हिस्सा लेते, ट्रस्टी बनने की प्रतिज्ञा करते और मुनाफाखोरी को छोड़ते हैं, तो उनके धर्म, अर्थ और काम, तीनों सधेंगे।

आम जनता योगदान करे

सर्वोदय-कार्यक्रम में चित्त-शुद्धि प्रधान है। वह कार्यक्रम सबको लागू होता है। न सिर्फ सम्पत्तिवालों को, बल्कि गरीबों और सारी जनता को लागू होता है। इसलिए मैंने तो आम जनता से माँग की है कि चाहे कोई श्रीमान्, गरीब या मध्यवित्त हो; पर आप अपने पास की सम्पत्ति या जमीन जो हो, उसका छठा हिस्सा देकर ही रहिये। इस तरह आप जितने ही आगे बढ़ेंगे, उतना ही बड़े लोगों पर भी उसका अच्छा असर होगा। और बड़े लोग जितने प्रमाण में इस कार्य में कूद पड़ेंगे, उतना ही जनता में भी उत्साह आयेगा। पूछा जा सकता है कि फिर इसमें पहला कदम कौन उठाये, गरीब जनता या बड़े लोग? मैं मानता हूँ कि इसमें पहला कदम वही उठायेगा, जिस पर परमेश्वर की प्रथम कृपा होगी। मैं तो जनता में कोई फर्क ही नहीं करता। सबके सामने यह कार्यक्रम रख दिया है, जिसका मुख्य आधार हृदय-परिवर्तन है। अगर हम हृदय-परिवर्तन पर श्रद्धा नहीं रखते, तो हमारे लिए यह अहिंसा का रास्ता छूट जाता और हिंसा की तरफ काम करने की प्रवृत्ति हो जाती। हम अहिंसा का नाम भी लें और साथ ही हृदय-परिवर्तन पर पूरी श्रद्धा भी न रखें, तो दुर्बल हो जायेंगे। इस तरह मन में दुविधा रखने से कोई नैतिक ताकत पैदा नहीं हो सकती। इसलिए आज हम सब—गरीब, मध्यवित्त और बड़े लोग—शुभ संकल्प करें कि हम भूदान, सम्पत्तिदान और श्रमदान के काम उठा लेंगे।

इसमें मुझे कोई संदेह नहीं कि यह कार्यक्रम जितना आगे बढ़ेगा, देश के लिए उतनी ही निर्भयता और सुख-साधनों की उपलब्धि होगी। इसीसे धर्म

बढ़ेगा और सुख भी प्राप्त होगा। मैं यह नहीं मानता कि बड़े लोग, पूँजीवादी हिन्दुस्तान पर प्यार नहीं करते। यह भी नहीं मानता कि मध्यवित्त लोग देश का प्रेम नहीं समझते या आम जनता, जो कि सतत परिश्रम करती हुई उत्पादन में लगी है, देश के लिए ममत्व नहीं रखती। इस तरह जहाँ सबके मन में देश का प्रेम मौजूद है और हमें परमेश्वर की कृपा से स्वराज्य-प्राप्ति के बाद अपना समाज बनाने का मौका मिला है, तो मैं आशा करता हूँ कि सब लोग इसे तत्काल उठा लेंगे।

देश, दुनिया को बचायें

अब तक करीब छत्तीस लाख एकड़ जमीन भूदान में मिली है। उसमें कितनी ऐसी है, जिसे हमें तोड़ना और पानी का इन्तजाम करना पड़ेगा। अगर हमारे पूँजीपति इस काम को उठा लेते हैं, तो हम मानते हैं कि अपने उस आचरण से वे सारे हिन्दुस्तान के प्रेमपात्र बन जायेंगे। उसका यह भी परिणाम होगा कि अहिंसा पर सारी दुनिया की श्रद्धा बढ़ेगी। आज सारी दुनिया भयभीत है। किस दिन क्या होगा, पता नहीं चलता। हम रोज का अखबार पढ़ते हैं, तो कभी ऐसी खबर मिलती है, जिससे लगता है कि शायद अब दुनिया में शान्ति होगी। पर इतने में ही एक दिन ऐसी खबर आती है कि उससे लगता है कि अब शायद अशान्ति होगी। इस दुनिया की बीमार जैसी हालत हो गयी है। उसका बुखार बढ़ रहा है, पर बीच-बीच में घटता भी जाता है। कभी-कभी डॉक्टर जाहिर करता है कि आज इसकी हालत अच्छी है, तो कभी कहता है, आज मामला जरा बिगड़ा हुआ है। ऐसे खतरनाक रोगी जैसी हालत आज दुनिया की हो गयी है! उसे बिना प्रेम, बिना अहिंसा और बिना विश्वास के आरोग्य-लाभ नहीं हो सकता। अगर हिन्दुस्तान के बड़े लोग हमारा सर्वोदय का काम उठा लेते और बाबा को अपने प्रेम से कुछ राहत दे देते हैं, तो हम समझते हैं कि वे तो बच जायेंगे ही, देश और दुनिया भी बचेगी।

हम गांधीजी की श्रद्धा के योग्य बनें

आज गांधीजी के प्रयाण के दिन हम अपने उन सब मित्रों से प्रेमपूर्वक

प्रार्थना करते हैं कि गांधीजी ने हम पर जो श्रद्धा रखी थी, उसके योग्य हम काम करें। गांधीजी साक्षी हैं, वे देख रहे हैं कि हम उनके बालक कैसा काम कर रहे हैं ? अगर हम इतना काम, जो मैंने देश के सामने रखा है, पूरा करते हैं, तो उनकी आत्मा अत्यन्त संतुष्ट होगी, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं। उनकी आत्मा सन्तुष्ट होने का सबूत यह होगा कि हम सबकी आत्मा सन्तुष्ट होगी।

मथानी
३०-१-'५५

मालकियत छोड़ने से ही आनंद-वृद्धि : १० :

जैसे-जैसे भूदान-यज्ञ का काम बढ़ता गया, फैलता गया, वैसे ही-वैसे लोग हमसे पूछने लगे कि 'आप सम्पत्तिवालों को क्यों छोड़ते हैं ? आप भूमिवालों से जिस उसूल पर भूमि माँगते हैं, उसी उसूल पर सम्पत्तिवालों से सम्पत्ति की भी माँग करनी चाहिए। उन्हें भी सम्पत्ति-दान-यज्ञ के जरिये जन-सेवा का मौका मिलना चाहिए।' वास्तव में इस विचार को तो हम पहले से ही मानते थे।

जमीन का मूल्य वास्तविक और संपत्ति का काल्पनिक

वैसे देखा जाय तो भूमि में और अन्य सम्पत्ति में हम बहुत ज्यादा फर्क नहीं करते। लेकिन सब कोई समझ सकते हैं कि सम्पत्ति की जो कीमत है, वह काल्पनिक है। सब लोगों ने मिलकर उसे कीमत दी है। किन्तु जमीन की कीमत असली है। मान लीजिये कि लोग अगर तय कर लें कि हमें कोई सम्पत्ति या सुवर्ण देगा, तो हम उसके बदले में घी, दूध, तरकारी न देंगे, तो आज दिन मानी गयी रुपये की कीमत गिर जायगी। किन्तु जमीन की ऐसी हालत नहीं है। जमीन का जो मूल्य है, वह स्वतंत्र मूल्य है। और जब तक मनुष्य को अन्न आदि की जरूरत रहेगी, तब तक वह न टूटेगा। इसलिए हवा, पानी और सूरज की रोशनी जिस कोटि में आती है, उसी कोटि में जमीन भी है। जमीन वैसी ही सबके लिए जरूरी है, जैसे हवा, पानी और सूरज की रोशनी। इसीलिए हमने भूदान-यज्ञ से आरम्भ किया। लोगों के पास भूमि माँगने गये और लोग देते गये। किन्तु

जैसे-जैसे भूदान-यज्ञ आगे बढ़ा, वैसे-ही-वैसे हमने सोचना शुरू किया कि सम्पत्ति-वानों को भी यह मौका मिलना चाहिए कि वे अपनी सम्पत्ति का एक हिस्सा समाज के लिए समर्पण करें। एक धर्म के तौर पर और जब कि लाखों एकड़ जमीन दान में मिल रही है, तो अब सम्पत्ति की भी जरूरत फौरन पैदा हुई है। क्योंकि सम्पत्ति के मदद के बिना लाखों एकड जमीन में फसल पैदा करना कठिन है। इस तरह भूदान-यज्ञ की सफलता के लिए सम्पत्ति-दान-यज्ञ आवश्यक हो गया है। इसके अलावा सम्पत्ति का अपना भी एक स्थान है। चूँकि सम्पत्ति सारे समाज के सहयोग से ही पैदा होती है, इसलिए उस पर मालकियत समाज की याने परमेश्वर की होनी चाहिए।

अहिंसक समाजवाद कैसे आयेगा ?

कांग्रेस ने जाहिर कर दिया है कि इसके आगे हम हिन्दुस्तान की रचना समाज-वादी ढंग से करेंगे और हमारा समाजवाद अहिंसक रहेगा। हम कबूल करते हैं कि जहाँ 'समाजवाद' शब्द का उच्चारण होता है, वहाँ उसके साथ-साथ कई प्रकार के विचार पैदा होते हैं, क्योंकि समाजवाद यूरोप में अपने-अपने ढंग का चला है। इसलिए कहना पड़ा कि यहाँ जो समाजवाद आयेगा, वह भारत के अपने ढंग का होगा, अहिंसा के जरिये ही लाया जायगा। 'समाजवाद' का एक अर्थ लोग यह समझते हैं कि 'सारे कारखाने और धन्धे सरकार के या स्टेट के हो जायँ।' अगर 'समाजवाद' का इतना ही अर्थ किया जाय, तो उसके माने हुए कि सरकारी पूँजीवाद या स्टेट कैपिटलिज्म हो जायगा। खानगी लोगों के पूँजीवाद से सरकारी पूँजीवाद लोगों के लिए निश्चय ही कल्याणकारी होगा, यह हम नहीं कह सकते। यह ठीक है कि सरकारी पूँजीवाद पर लोगों का अंकुश ज्यादा रहेगा और व्यक्तिगत पूँजीवाद पर उतना नहीं। फिर भी समाजवाद की असलियत तो यही है कि हरएक व्यक्ति की सेवा समाज को समर्पित हो और व्यक्ति को विकास का पूरा मौका मिल जाय। केवल समाज की सत्ता या सरकारी सत्ता बन जाने से समाजवाद पूरा नहीं होता। समाजवाद के लिए यह धर्म-भावना जरूरी है कि सभी व्यक्ति खुशी से अपनी सब शक्तियाँ, जो कि भगवान् की देन हैं, समाज की सेवा में लगाना अपना धर्म समझें।

इसके अलावा समाज की तरफ से हरएक व्यक्ति को उसकी बुद्धि और आत्मा का विकास करने का पूरा मौका मिलना चाहिए। व्यक्ति की स्वतंत्रता पर कोई आघात नहीं पहुँचना चाहिए। सबको विकास का मौका देने का मतलब है : (१) हरएक की बुद्धि की स्वतंत्रता मान्य करना और (२) सब मनुष्यों को बराबर-बराबर मौका देना। आज सरकार के हाथ में कई ताकतें हैं, पर हम देखते हैं कि हर ताकत का अच्छा ही उपयोग होता हो, ऐसा नहीं। फिर उनमें *धन्धों की भी ताकत सरकार को दे दें, तो उसका कल्याणकारी ही उपयोग होगा,* यह कैसे कहा जा सकता है ? आजकल की सरकारें, जो कि लोकतांत्रिक सरकारें मानी जाती हैं, जब तक केन्द्रित शक्ति से बनी हैं, तब तक उन पर लोगों का अंकुश नहीं पड़ता। इसलिए सरकारी सत्ता विभाजित होकर वह गाँव-गाँव बँट जानी चाहिए। तभी अहिंसक समाजवाद बनेगा।

अहिंसक समाजवाद में पूँजीवादियों का भी कल्याण

अहिंसक समाजवादी रचना में पूँजीवादियों को कोई खतरा न रहेगा, अगर वे अपनी सारी पूँजी, बुद्धि, योजना-शक्ति समाज को समर्पण करने को तैयार हो जायँ। इस पर लोग हमसे कहते हैं कि पूँजीवाले पूछ सकते हैं कि अगर हमारे हाथ में मालकियत न रहे, तो हमें कारखानों का काम बढ़ाने, उसका उत्कर्ष करने में प्रेरणा कहाँ से मिलेगी ? कुछ-न-कुछ स्वार्थ की लालच होने पर ही मनुष्य को उपज बढ़ाने में अपना पूरा श्रम लगाने की प्रेरणा होती है, तभी वह अपनी पूरी ताकत उसमें लगायेगा। लेकिन स्वार्थ की भावना के बिना सेवा की या उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा न मिलेगी, यह धारणा ही गलत है। उसमें मानव-स्वभाव के स्वरूप पर ध्यान नहीं दिया गया है। हम तो मानते है कि मनुष्य में जितनी स्वार्थ की भावना है, उससे बहुत ज्यादा त्याग की भावना है। हर रोज, हर परिवार में हर मनुष्य त्याग कर ही रहा है। कितनी माताएँ और कितने पिता अपने बच्चों के लिए, कितने भाई अपने भाइयों के लिए और घर के लिए मर मिटते हैं। इसलिए करने की बात तो इतनी ही है कि आज जो उनकी त्याग-भावना एक परिवार तक ही सीमित है, उसे गाँवभर फैला दिया जाय। विज्ञान

के इस युग में इस परिवार-भावना को व्यापक बनाने के लिए बाहरी परिस्थिति भी बहुत अनुकूल हो गयी है। धर्म-दृष्टि तो व्यापक भावना के लिए पहले से ही अनुकूल है। इस तरह धर्म-दृष्टि कहती है और विज्ञान भी कहता है कि 'सारे गाँव का एक व्यापक परिवार बनाओ। छोटे-छोटे परिवार बनाने के बजाय एक ही परिवार बनाओ।' आज मानव की तैयारी उसीके लिए हो रही है।

आज हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े पूँजीवादी दावा करते हैं कि हम जन-सेवा के लिए ही काम कर रहे हैं, हम हिन्दुस्तान की सभ्यता के वारिस हैं। हम उन्हें समझाते हैं कि सर्वोदय-विचार में हम आपकी बुद्धि का पूरा उपयोग लेना चाहते हैं। हम सिर्फ आपकी सम्पत्ति का ही बँटवारा नहीं चाहते, बल्कि यह भी चाहते हैं कि आपकी बुद्धि का भी बँटवारा हो। लोगों में यह खयाल है कि अच्छा काम करने के लिए कुछ बाहरी प्रेरणा भी चाहिए। इसीलिए भारत-सरकार भी सोचती है कि अच्छे काम करनेवालों को पदवियाँ दी जायँ। राजाजी को ही लीजिये, वे सारी जिन्दगी निष्काम कर्म में बिता चुके हैं। उनकी जिन्दगी में सेवा के सिवा दूसरी कोई चीज ही नहीं रही। अब इतने बुढ़ापे में, सारी जिन्दगी निष्काम सेवा में बिताने के बाद भारत-सरकार उन्हें "भारत-रत्न" की उपाधि देती है, तो उससे उन्हें सेवा की अधिक प्रेरणा तो न मिलेगी। फिर भी सरकार उन्हें तमगा देती है और वे नम्र होकर उसे स्वीकार भी करते हैं। इससे सरकार की ही इज्जत बढ़ती है। किन्तु क्या सरकार यह नहीं समझती ? यह नाटक क्या राजाजी को उत्तेजन देने के लिए किया जा रहा है ? नहीं। सरकार तो हिन्दुस्तान के बच्चों को ही यह उत्तेजन देना चाहती है कि आप भी राजाजी जैसी सेवा करेंगे, तो आपको 'भारत-रत्न' का तमगा मिलेगा। लेकिन अब सवाल यह पैदा होता है कि राजाजी, भारत-रत्न की कोई उपाधि मिलने की प्रेरणा से तो राजाजी नहीं बने हैं। उन्हें ऐसा कोई अन्दाज ही नहीं था। फिर नये बालकों को भी भारत-रत्न की उपाधि के लालच से क्या राजाजी बनने की प्रेरणा मिल सकती है ? फिर भी जैसे हम बच्चों को समझाते हैं, वैसे ही जनता को भी समझाते और उसे उत्तेजन देते हैं। हम पूँजीवादियों से भी कहते हैं कि आपको 'भारत-रत्न' बना देंगे, अगर आप अपनी पूँजी जनता की सेवा में लगायें। सारांश, यह मानना कि उद्योग देश के हो जाने पर जो पूँजीवादी आज

अपना दिमाग उद्योगों में अच्छी तरह लगा रहे हैं, उन्हें प्रेरणा न रहेगी, सर्वथा गलत है।

मालकियत छोड़ने से आनंद-वृद्धि और चिन्ता-मुक्ति

हमारा सर्वोदय-विचार बहुत ही आगे बढ़ा हुआ समाजवाद है। उसमें सिर्फ सम्पत्ति की ही मालकियत मिटाने की बात नहीं है। हम तो बुद्धि की भी मालकियत भगवान् को अर्पण कर देना चाहते हैं। इसीलिए हम जो भगवान् से प्रार्थना करते हैं—अपने गायत्री-मन्त्र में हम उनसे कहते हैं—कि भगवन्, हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे। भगवान् की सेवा करने के खयाल से जो प्रेरणा मिल सकती है, उससे ज्यादा प्रेरणा मालकियत के खयाल से कैसे मिलेगी? हमने भगवान् का नाम लिया, तो घबड़ाने की जरूरत नहीं है। भगवान् तो जनता के रूप में हमें प्रत्यक्ष दर्शन दे रहा है। माता के अपने बच्चे में आत्म-दर्शन होता है, तो उसे आनन्द होता है। उसे तो सारी प्रेरणा उसीसे, उस आनन्द में से मिलती है। यह जो एक माँ की अपने बच्चे के लिए प्रेम-प्रेरणा है, हमें वैसी ही प्रेम-प्रेरणा जन-सेवा में भी होती है। जन-सेवा के काम में बुद्धि काम न करेगी, यह मानना गलत है।

मुख्य बात इतनी है कि जिसे हम 'मुनाफाखोरी' कहते हैं, उसे छोड़ देना होगा। मान लीजिये कि बिड़ला और टाटा को आज अपने धन्धों का मालिक कहा जाता है। पर इसके बदले 'व्यवस्थापक' या 'सेवक' कहा जाय, तो क्या बिगड़ेगा। इसमें तो उन्हें बेहतर पदवी मिलती है। आज भी वे ही समाज की तरफ से धन्धों का विकास करते हैं। उसके लिए वे अगर मजदूरों जैसा ही मेहनताना पायें, तो उनकी बुद्धि मन्द पड़ेगी, यह मानना गलत है। जहाँ मनुष्य अपने धन्धे या सम्पत्ति का ट्रस्टी होता है, वहाँ उसके आनन्द की वृद्धि होती है और कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती। बाबा रोज-रोज घूमता और उसे रोज-रोज नया घर मिलता है। वह अपने को उस घर का मालिक नहीं कहलाता। फिर भी किसी मालिक को इतने घरों का उपभोग नहीं मिलता। हमने बड़े-बड़े पूँजीपति देखे हैं। उनके हिन्दुस्तान में १०-२० जगह पर बँगले होते हैं। कभी वे अपने दिल्ली के घर में रहते हैं, कभी कलकत्ते के, कभी बनारस के, कभी बम्बई के। लेकिन बाबा तो

रोजमर्रा अलग-अलग घर में रहता है। हाँ, इतना ही होता है कि वे 'मालिक' कहलाये जाते हैं, इसलिए उन्हें अपने मकान की चिन्ता करनी पड़ती है और बाबा 'मालिक' नहीं कहलाया जाता, इसलिए उसे चिन्ता नहीं करनी पड़ती। जब नित्य नये घर का भोग करने का मौका मिलता है, आनन्द की वृद्धि होती और चिन्ता नहीं रहती, तो क्या बिगड़ता है? इसलिए स्पष्ट है कि जो लोग आज धन्धों के मालिक कहलाये जाते हैं, वे अगर कल धन्धों के 'सेवक' और 'व्यवस्थापक' बनें, तो उनका आनन्द कम नहीं होगा, बल्कि और बढ़ेगा। उनकी चिन्ता कम होगी और चिन्तन बढ़ेगा।

चाण्डिल में बाबा बीमार हुआ, तो कई डॉक्टर उसे देखने आये। बाबा पहले दवा लेने से इनकार करता रहा, इसलिए बेचारे डॉक्टर दुःखी होते थे। लेकिन जब बाबा ने दवा लेना कबूल किया, तो सब डॉक्टरों को बाबा का उपकार मालूम हुआ। उन्होंने प्रेम से दवा दी और बाबा से एक कौड़ी भी नहीं ली। लेकिन बाबा अगर कोई पूँजीपति होता और बीमार पड़ता, तो बिना फीस लिये कोई डॉक्टर उसे देखने के लिए नहीं आता। उसकी बीमारी में उसकी तब तक की कमायी हुई आधी इस्टेट खतम हो जाती। इसलिए जो मालिक न रहेंगे, वे कुछ खोयेंगे नहीं। चिन्ता कम होगी और चिन्तन-शक्ति बढ़ेगी। इससे पूँजीपतियों को लाभ होगा, समाज और देश को भी लाभ होगा। फिर यह कहने की जरूरत ही नहीं कि आज उसकी जितनी मान-प्रतिष्ठा है, जितनी कीर्ति है, उससे बहुत ज्यादा मान और कीर्ति उसे मिलेगी। इसलिए सर्वोदय की माँग में, जिसे 'अहिंसक समाजवाद' नाम दिया जा रहा है, किसीको कोई खतरा नहीं है। उसमें सबको आनन्द ही प्राप्त होगा।

लिए कोई इस्टेट नहीं रखी, इसलिए बाबा की बुद्धि काम कर रही है। लेकिन अगर बाबा के पिता उसके लिए इस्टेट रखे होते, तो बाबा बेवकूफ निकलता और आज भूदान न माँगता। ईसामसीह ने लिख रखा है कि 'चाहे सुई के छेद में से ऊँट जा सकेगा, लेकिन सम्पत्ति के मालिकों का भगवान् के राज्य में प्रवेश नहीं हो सकता।' यही बात उपनिषदों ने भी कही है : "अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन।" अर्थात् पैसे के आधार पर जो अमृतत्व चाहेंगे, वे तो मुर्दा बनेंगे।

जहाँ मैंने उपनिषद् का नाम लिया, वहीं लोग यह मानने लगेंगे कि बाबा तो हमें बैरागी बना रहा है। लेकिन हम किसीको बैरागी नहीं बना रहे हैं, सबको ऐश्वर्यसम्पन्न बनाना चाहते हैं। किन्तु यह अवश्य चाहते हैं कि सबको समान भाव से ऐश्वर्य प्राप्त हो। आज तो हिन्दुस्तान के चन्द लोगों को ही खाना नहीं मिलता। लेकिन मान लीजिये, कल सब लोगों को खाना न मिले और सभी भूखे रहें, तो बाबा यह नहीं कहेगा कि 'अब तो साम्ययोग हो गया!' सब समान भूखे रहें, यह कोई साम्ययोग नहीं। साम्ययोग तो वही है, जिसमें सब लोग समान भाव से पोषणयुक्त अन्न खायें। इसलिए उपनिषदों और ईसा का नाम लेने का अर्थ इतना ही है कि हम सबको समान रूप से ऐश्वर्यसम्पन्न बनाना चाहते हैं। अगर हम सब लोग एक साथ सोचेंगे, तो यह बात संभाव्य है और थोड़े ही दिनों में हो भी जायगी।

इस पर अगर लोग पूछें कि जब भगवान् ने सबको अलग-अलग अक्ल दी है, तो सबको समान ऐश्वर्य कैसे प्राप्त हो सकता है? तो हम कहते हैं, जो एक ही परिवार में रहते हैं, क्या उन्हें अलग-अलग अक्ल नहीं होती? फिर भी वे समान खाना खाते और समान ऐश्वर्य का उपभोग करते ही हैं। इसलिए बुद्धि अलग-अलग होने पर भी अगर प्रेम समान होता है, तो समान ऐश्वर्य हो सकता है। हमारा यह कहना नहीं कि हम सबकी बुद्धि समान बना देंगे। वह तो ईश्वर के हाथ की बात है। अवश्य ही हम यह दावा करते हैं कि अगर हरएक को तालीम का अच्छा मौका देंगे, तो आज बुद्धि में जितनी विषमता है, उतनी नहीं रहेगी। फिर भी यह कबूल करते हैं कि बुद्धि में फर्क रहेगा, लेकिन अगर सारे समान रूप से एक-दूसरे पर प्यार करते हैं, तो समान ऐश्वर्य भी ...

पूँजीपतियों को दावत

इसलिए हम सम्पत्तिवानों को दावत देते हैं। उनसे प्रार्थना करते हैं कि आप किसी प्रकार का संकोच या डर न रखें और जैसे गांधीजी सुझाते थे, ट्रस्टी बनने को राजी हो जायँ। आप 'अहिंसक समाजवाद' के नाम से न डरें। उसमें आपको विकास का पूरा मौका मिलेगा, जैसा आज मिलता है। उसमें आपकी बुद्धि का अच्छा उपयोग होगा। इतना ही नहीं, आज आपको जितना आनन्द, सुख और गौरव मिलता है, उससे बहुत ज्यादा आनन्द, सुख एवं गौरव मिलेगा। और आत्म-समाधान, जो कि आज आपको मुश्किल से प्राप्त होता होगा, विशेष रूप से प्राप्त होगा। इसमें आपका किसी तरह से कोई नुकसान नहीं है। इसलिए आप जल्द-से-जल्द इसमें आइये, तो देश का नेतृत्व आपके हाथ में आ जायगा। अगर आप मालकियत छोड़कर देश की धुरा वहन करने के लिए आ जाते हैं, तो हम कबूल करते हैं कि आपके पास जो क्षमता (एफीसिएन्सी) है, उसका देश को उपयोग होगा। पूँजीपतियों का अर्थ आप यह मत समझिये कि लखाधीश,या कोट्याधीश ही पूँजीपति हैं। जिसके पास जो कुछ है, उसका वह आज मालिक है। इसलिए हरएक से हमारी माँग है कि आपके पास जो कुछ सम्पत्ति होगी—थोड़ी या ज्यादा—उसका छठा हिस्सा जरूर दीजिये। जो छोटे हैं, वे छठा हिस्सा दें और दूसरे छठे हिस्से से भी अधिक दे सकते हैं, इसलिए दिल खोलकर दें।

रुपसा (बालेश्वर)
३१-१-'५५

धर्मनिष्ठा से दौलत भी बढ़ेगी

धर्म एक होता है और दूसरा मोक्ष, जिससे समाज की मुक्ति होती है। इस भूदान-यज्ञ में ये दोनों विचार जुड़े हैं। जहाँ भूतदया होती है, वहाँ सब प्राणियों में प्रेम और धर्म होता है और जहाँ आत्मा की शक्ति का भान होता है, वहाँ मनुष्य को मोक्ष मिलता है, मुक्ति होती है। यह जो छठे हिस्से का दान हरएक से माँगा जाता है, उससे धर्म फैलता है। उसीके साथ मालकियत मिटाने की जो बात हम समझाते हैं, उससे समाज मुक्त होता है। वास्तव में स्वातंत्र्य, मुक्ति महत्त्व का विचार है और धर्मनिष्ठा भी महत्त्व का विचार है। दोनों विचार इस आंदोलन से फैल रहे हैं। लेकिन लोग इनका महत्त्व नहीं समझते और हमारे सामने आर्थिक सवाल ही पेश करते हैं। पर समझने की बात है कि जहाँ आत्मा को अपनी मुक्ति का भान होता और धर्मनिष्ठा बनती है, वहाँ आर्थिक कामना की प्राप्ति होती है; यह महाभारत में व्यासदेव का वचन है।

अपनी-अपनी सोचने से ही आर्थिक समस्या

मालकियत की भावना मिट जाय और सबके लिए दया और धर्मनिष्ठा बने, तो सभी लोग बाँटकर खाने की बात सोचेंगे। उससे हिंदुस्तान की दौलत जरूर बढ़ेगी और सबकी वासनाएँ तृप्त होंगी। अगर लोग यह समझ जायें, तो आर्थिक सवाल पेश करनेवाले भी रुक जायेंगे और दूरदृष्टि से इस काम में शरीक होना ही पसंद करेंगे। आज आर्थिक समस्या हरएक के सामने खड़ी है। वह इसलिए खड़ी है कि लोगों ने सबके लिए सोचने का छोड़ दिया और हरएक अपने-अपने लिए ही सोचने लगा। जहाँ अपनी-अपनी सोची जाती है और दूसरों की परवाह ही नहीं की जाती, वहाँ लक्ष्मी बढ़ाने के साधन हाथ में नहीं आते।

रेमुना
५-२-'५५

त्रिवर्ग का सम-साधन और अंतिम ध्येय मुक्ति : १२ :

आज हमसे यह सवाल पूछा गया कि 'भूदान का काम तो अच्छा है। किन्तु मानव में विद्यमान स्वार्थ, लोभ और सत्ता हासिल करने की प्रेरणा का आप क्या करने जा रहे हैं ? उनका उत्तर आपके पास क्या है ?' यह बहुत बड़ा और बुनियादी सवाल है। अगर इसका उत्तर ठीक समाधानकारक मिल जाता है, तो मनुष्य परोपकार के काम में पूरी ताकत लगा सकता है। नहीं तो वह डाँवाडोल ही रहेगा।

काम-वासना का नियंत्रण

मनुष्य में भोग और ऐश्वर्य की वासना होती है याने सत्ता की भी वृत्ति होती है, इसमें कोई शक नहीं। यह बात मानी हुई है। गीता ने इसे 'भोगैश्वर्य-प्रवृत्ति' नाम दिया है, याने भोग-ऐश्वर्य-सत्ता की लालसा। लेकिन गीता ने हार नहीं खायी और इसे जीतने तथा काम में लगाने का उपाय भी उसने बताया है। एक जमाना था, जब समाज में विवाह-संस्था मौजूद ही नहीं थी और काम-वासना के अनुकूल जैसे जानवर बरतते हैं, वैसे ही मनुष्य भी बरतते थे। प्राचीनकाल के ऋषि-मुनियों की कहानी हम सुनते हैं, तो वहाँ बड़े-बड़े ऋषियों पर भी काम-प्रेरणा का परिणाम दीख पड़ता है। लेकिन उस वासना का नियंत्रण करने का विचार भी मनुष्य को सूझा, क्योंकि अनियंत्रित वासना से न वासनापूर्ति होती है और न समाज में शांति ही रहती है। उसने इसका भी अनुभव किया और उसके बाद विवाह-संस्था की खोज की।

किन्तु विवाह-संस्था भी सतत विकसित होती गयी है। पहले राक्षस-विवाह और फिर गंधर्व-विवाह जैसे नाना प्रकार के विवाह चले। इस तरह विकास होते-होते आखिर हिन्दुस्तान में ब्राह्म-विवाह निश्चित हो गया और उसे शास्त्र-विधि के तौर पर मनुष्य ने मान्यता दे दी। अब वह उस विवाह-विधि के अनुसार भी आगे के लिए नियंत्रण की बातें सोचने लगा है। एक साथ अधिक पत्नियाँ न

होनी चाहिए, इस तरह का विचार भी मनुष्य में बढ़ रहा है। थोड़े दिनों में आप देखेंगे कि एकपत्नी-व्रत का कानून भी सरकार की तरफ से बन सकेगा, क्योंकि मानवों का विचार उस दिशा में बहुत तीव्र गति से बढ़ रहा है। रामायण में दशरथ की तीन पत्नियाँ और उसके पुत्र का एकपत्नी-व्रत जाहिर है और मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र का ही आदर्श समाज के सामने रखा गया है। अभी बहुपत्नीत्व का कानून से निषेध नहीं हुआ है, लेकिन थोड़े दिन में हो जायगा। क्योंकि उसके लिए लोगों का मनोभाव तैयार हो रहा है। आज भी किसीकी दो पत्नियाँ हों और उसे पूछा जाय कि क्या आपको दो पत्नियाँ हैं? तो जरा वह लज्जित होता है और शरमाते हुए कुछ कारण बता देता है।

जाहिर है कि मनुष्य आज काम-वासना के नियंत्रण में काफी आगे बढ़ा है और पहले के जमाने में समाज की जितनी उच्छृंखल-वृत्ति थी, उतनी आज नहीं रही है। यद्यपि व्यक्तिगत तौर पर मनुष्य को काफी आगे जाने की जरूरत है, लेकिन इतना तो मानना ही पड़ेगा कि विवाह-संस्था बनने के पहले का मानव-समाज, विवाह-संस्था बनने के बाद का याने आज का मानव-समाज और विवाह-संस्था का अंतिम विकास होने के बाद का मानव-समाज, इनमें मानव-स्वभाव बदला है और बदलेगा। यह मिसाल मैंने इसलिए दी कि ध्यान में आ जायगा कि मानव-स्वभाव कोई नियमित और स्थिर वस्तु है, ऐसा नहीं। वह सतत विकसित होता चला आया है और आगे भी होता चला जायगा। आगे भी हमें उचित दिशा में कदम उठाना है।

प्राचीन शिक्षा-शास्त्र ताडन को मानता था, आज का नहीं

दूसरी मिसाल है! पहले यह मानते थे कि बच्चों को तालीम के लिए ताडना करनी चाहिए। पाँच साल की उम्र तक उनका लालन करना चाहिए और उसके बाद "दश वर्षाणि ताडयेत्" याने दस वर्ष तक ताडना करनी चाहिए। तब कहीं विद्या आती है। यहाँ तक कि मनुस्मृति में गृहस्थ के लिए आदेश दिया है कि उसका धर्म अहिंसा है और उसे उस कर्म का पालन करना चाहिए। लेकिन आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि जहाँ मनु लिखता

है कि गृहस्थ को किसीको ताडना नहीं चाहिए, मारना-पीटना अच्छा नहीं, वहीं वह कहता है : "अन्यत्र पुत्रात् शिष्याद् वा दीक्षार्थम् न ताडयेत्" पुत्र और शिष्य को छोड़कर बाकी किसीके लिए ताडना न करने का व्रत लेना चाहिए। याने पुत्र और शिष्य को शिक्षा के लिए ताडना करनी पड़ती है और वह जरूर करनी चाहिए। किन्तु आज के शिक्षाशास्त्री इस विचार को नहीं मानते। बल्कि उल्टा मानते हैं कि शिष्य और पुत्र को ताडना करने की जरूरत ही नहीं, क्योंकि वे बिलकुल आज्ञाकारी होकर आपके घर में जनमे हैं।

मैं तो कहूँगा कि जब तक पुत्र और शिष्य की ताडना जारी है, तब तक दुनिया से 'मिलिटरिज्म' का निराकरण नहीं होगा, हिंसावाद जारी रहेगा। मान लीजिये, आपना लड़का कोई गलत काम कर रहा है। आप उसे पीटते हैं और डर से उसने वह गलत काम छोड़ दिया, तो भी उसका अत्यंत नुकसान हुआ है। अगर वह सुबह जल्दी नहीं उठता, इसलिए आपने उसे पीटा। उससे वह जल्दी उठने लगा याने नियमितता का कर्म आपने उसे सिखाया। लेकिन उसके साथ भयभीतता का दोष भी आपने निर्माण किया। वह दोष सबसे ज्यादा भयंकर है। आपने उसे भय की तालीम दी। आपने उसे सिखाया कि तुम्हारे शरीर को अगर तकलीफ होती है, तो तकलीफ देनेवाले की बात मान लेनी चाहिए। फिर वह लड़का जो कोई धमकायेगा, उसके वश हो जायगा, क्योंकि आपने उसे भय की तालीम जो दी है। निर्भयता ही सबसे श्रेष्ठ गुण है। इसीलिए गीता ने सद्गुणों की सूची में "**अभयं सत्त्वसंशुद्धिः**" कहा है। याने अभय को प्रथम स्थान दिया है। 'सत्त्व-संशुद्धि' याने चित्त-संशुद्धि को, जो सबसे पहले दर्जे का गुण माना जायगा, द्वितीय स्थान दिया है। क्योंकि उन्होंने सोचा कि यदि निर्भयता मनुष्य में न हो, तो किसी भी गुण का विकास न होगा। सत्यनिष्ठा टिक ही नहीं सकेगी और चित्तशुद्धि भी अविकसित ही रहेगी। इसलिए लड़के और शिष्य को समझाना ही अपना हथियार हो सकता है, उसे मारना-पीटना हमारा हथियार नहीं। ऐसा इस जमाने के सारे शिक्षा-शास्त्री मानते हैं।

जब माता-पिता लड़के को पीटते हैं, तो उसके प्रति उन्हें द्वेष तो नहीं रहता, सद्भावना से ही वे उसे पीटते हैं, लेकिन पीटने में कितनी मूर्खता है, यह आप

सोचने से मालूम हो जायगा । सोचने की बात है, माता के उदर से ऐसे लड़के ने जन्म लिया, जो माता की हर बात मानता है । माता कहती है कि वह चाँद है, तो वह भी कबूल करता है कि 'हाँ, वह चाँद है' और माता कहती है कि वह सूरज है, तो वह भी मानता है कि 'वह सूरज है।' इतनी धर्मनिष्ठा रखकर जो लड़का माता के पेट में आये, माता को उसे मारने और पीटने की जरूरत पड़े, यह तो बड़ी विचित्र बात है। यह ठीक है कि लड़के या शिष्य कोई बात नहीं समझ रहे हों, तो उन्हें अच्छी तरह समझा दिया जाय। फिर भी यदि वह नहीं समझता, तो माता-पिता या गुरु खुद को कोई सजा दे सकते हैं, यही हम मानते हैं। मनुस्मृति तो माताओं ने पढ़ी नहीं है, फिर भी पुत्र अगर कोई गलत काम करता है, तो माता खाना छोड़ देती है। उसका असर पुत्र पर होता है। इस तरह आपके ध्यान में आ गया होगा कि मानव के मानस-शास्त्र में काफी फर्क पड़ रहा है और तालीम के लिए लड़कों को मारने-पीटने की बात अब लड़के भी मानने के लिए तैयार नहीं हैं। जाहिर है कि शिक्षण की वह मनोवृत्ति आज नहीं रही। आज वह सारा विचार बदल गया और स्वतन्त्र विकास की आवश्यकता मानव ने ज्यादा महसूस की है। बचपन से ही स्वतन्त्र विकास का मौका देना चाहिए, यह बात मनुष्य ने मान ली।

आज सजा में भी सुधार

तीसरी मिसाल देता हूँ। पहले किसीने चोरी की, तो उसे यह सजा दी जाती थी कि हाथ काट डाले जायँ। लेकिन आज ऐसी सजा देने की बात किसीको भी जँचेगी नहीं, रुचेगी नहीं। आज तो इसे निरी मूर्खता और मानवता के विरुद्ध बड़ा भारी दोष माना जायगा। मनुष्य हाथों से सेवा कर सकता है। सेवा के बड़े साधन हाथ को काट डालने का अर्थ है, उस मनुष्य का सारा भार समाज पर डालना। ऐसी योजना करना निरी मूर्खता है। आज मनुष्य-समाज को यह बात पसन्द नहीं आती। शूर्पणखा राक्षसी ने राम-लक्ष्मण के सामने आकर बेढंगी बातें कीं, तो लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट डाले, ऐसी कहानी रामायण में आती है। इस पर आजकल के पढ़नेवाले लड़के भी पूछते हैं कि यह काम लक्ष्मण ने

कहाँ तक ठीक किया ? फिर उन्हें समझाना पड़ता है कि वह रूपक है, वह कोई मनुष्य की कहानी नहीं है। राक्षसी कामवासना है और उसे विरूप करने का मतलब है, किसी तरह उसका आकर्षण न रहने देना। इतना ही इस कथा का मतलब है।

दुनिया में आज लोगों के मन में फाँसी की सजा रद्द करने की बात उठती है। यद्यपि इसके अनुकूल अभी तक मानव का निर्णय नहीं हुआ है, लेकिन शीघ्र ही हो जायगा और फाँसी की सजा मानवताहीन मानी जायगी।

मानव के मानस-शास्त्र का विकास

एक जमाना था, जब कि स्त्रियों को साधारण जड़ वस्तु माना जाता था। पुरुषों की मालकियत की वस्तु में उनकी गिनती थी। इसीलिए जहाँ युधिष्ठिर द्यूत में हार गये, तो उन्होंने द्रौपदी को भी अर्पण कर दिया, जैसे अन्य चीजें का अर्पण किया था। फिर जब द्रौपदी को दुःशासन भरी सभा में खींच लाया, तो उसने खड़े होकर भीष्म-द्रोण से सवाल पूछा। तो भीष्म, द्रोण, विदुर विस्मित हो गये, उत्तर दे नहीं पा रहे थे। उनके सामने धर्मसंकट खड़ा हुआ। आज के लड़कों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि आखिर भीष्म-द्रोण को यह सवाल क्यों कठिन मालूम हुआ ? यह तो बिलकुल आसान सवाल है। इसलिए मानव का मानस-शास्त्र बदलता आया है। उसका विकास हुआ है।

सत्ताविभाजन द्वारा सत्ताभिलाषा का नियन्त्रण

मनुष्य अपनी वृत्तियों का भी उत्तरोत्तर नियन्त्रण करता आ रहा है और करनेवाला है, यह पहली समझने की बात है। दूसरी बात यह है कि मनुष्य में जैसे भोग-ऐश्वर्य की वृत्ति है, वैसे दूसरी वृत्तियाँ भी मौजूद हैं। केवल भोग ही नहीं, धर्म-कामना और धर्म-प्रेरणा भी मनुष्य में बड़ी बलवान् होती है। धर्म-प्रेरणा को प्रधान पद देकर वासनाओं को उसके अंकुश में रखने की अक्ल मनुष्य को सूझनी चाहिए और उसे वह उत्तरोत्तर सूझेगी ही। मनुष्य की प्रेरणा ही उसमें पड़ती है कि भोग ऐश्वर्य की मानव में स्थित वृत्ति को प्रधानता न मिलनी चाहिए। उसे निरंकुश न होने देकर कुंठित करने का रास्ता ढूँढ़ना

चाहिए। आज मनुष्य को धर्म-बुद्धि या यह रास्ता सूझा है कि सत्ता बाँट दें और भोग सबको समान रूप से मिले। वह ऐसी कोशिश करे, तो भोग-वासना नियन्त्रित और कुंठित हो जायगी। फिर उसे सत्ता की आकांक्षा भी न रहेगी। ये दोनों बातें आज की सरकार मानती है। इसीलिए उसने हरएक को वोट का अधिकार दिया है, इसका मतलब सत्ता सबमें विभाजित करने का आरम्भ कर दिया है। लोग जिसे चुनेंगे, वह नौकरी करेगा और लोगों की सेवा करेगा। जो चाहे, वह सत्ताधारी कहलायेगा, पर उसके हाथ में सेवा करने की ही सत्ता रहेगी, ऐसा विचार लोकशाही में मान्य हुआ।

लेकिन केवल वोट मिल जाने से सत्ता विभाजित नहीं होती। इसलिए हमारी कोशिश जारी है और वास्तव में सत्ता हरएक मनुष्य में विभाजित हो जायगी। इसके लिए आन्दोलन हो रहे हैं। भूदान-आन्दोलन भी उसीका रास्ता है। हम चाहते हैं, हमारी कोशिश है और सर्वोदय की नींव है कि हर गाँव में सत्ता बँटनी चाहिए। गाँव में क्या बोयेंगे और क्या नहीं बोयेंगे? गाँव में कौन-सी वस्तु लाने देंगे और कौन-सी रोकेंगे, इसकी सारी सत्ता गाँव में होनी चाहिए। गाँव को तालीम देने की योजना भी गाँववालों को ही करनी चाहिए। ऊपरवाले सिर्फ सूचनाएँ दे सकते हैं। अधिकार गाँववालों का ही होना चाहिए और जैसी तालीम वे ठीक समझें, दे सकते हैं। गाँव का न्याय गाँव में ही होना चाहिए। गाँव का झगड़ा गाँव के बाहर हरगिज न जाना चाहिए। मेरी तो यहाँ तक राय है कि कोई अपील भी न होनी चाहिए। दो गाँवों के बीच झगड़ा हुआ, तो गाँव के बाहर बात चली जायगी। परंतु यदि गाँव के अंदर ही बात हुई, यहाँ तक कि यदि गाँव के अंदर कोई खून भी हुआ, तो भी गाँव के लोगों को ही उसका न्याय करना चाहिए। चाहे उसके होने में कुछ देर लगे, लेकिन आखिर यह करना ही होगा। वोट का हक तो सत्ता-विभाजन का आरंभ मात्र है, पर उसकी पूर्ति तो तब होगी, जब ग्रामराज्य स्थापित होगा और गाँव के लोग उसमें हिस्सा लेंगे।

स्वार्थ-नियंत्रण के लिए सुख-साधनों का वितरण

जिस तरह मनुष्य की सत्ता-वासना को नियंत्रित और कुंठित करने का रास्ता है, सत्ता का विभाजित हो जाना और हरएक को इसका निश्चित विश्वास होना

कि सत्ता का एक अंश हमारे पास पड़ा है, उसी तरह हरएक में विद्यमान स्वार्थ-बुद्धि को नियंत्रित और कुंठित करने का उपाय है, मनुष्य के सुख के सामान्य साधन सबको समान रूप से मुहय्या करने का प्रयत्न करना। मनुष्य के कुल स्वार्थ का आधार जमीन पर ही खड़ा है। इसीलिए हमने जमीन से शुरू किया और कह दिया कि हरएक बेजमीन को जमीन मिलनी ही चाहिए। उसका हक मान्य होना ही चाहिए। यह एक बिलकुल बुनियादी विचार है, जो हम समाज के सामने रख रहे हैं।

आज जिनके हाथ में सरकारी सत्ता है, उनका और दूसरों का भी, जो उनके खिलाफ अपनी राजनैतिक पार्टी बनाकर खड़े हैं, यह आम विचार चलता है कि जमीन की "सीलिंग" बनायी जाय। ज्यादा-से-ज्यादा कितनी जमीन रख सकते हैं, कानून से उसका स्तर निश्चित किया जाय और बाकी का बाँट दिया जाय। कोई २० एकड़ की बात करते हैं, कोई ३० एकड़ की करते हैं, तो कोई ५० एकड़ की बात करते हैं। इसका मतलब यह है कि भूमिहीनों को कोई भूमि न मिले, सब 'मिडिल क्लास' (मध्यम वर्ग) को मिले और गरीब वैसे ही रह जायँ। किन्तु हम कहते हैं कि जमीन की काश्त करना जाननेवाला हरएक व्यक्ति अगर काश्त करना चाहता है, तो उसे हिसाब से उसके हिस्से में आनेवाली जमीन देनी ही पड़ेगी। उसके बाद यदि ज्यादा जमीन नहीं बचती, तो न बचे। उसकी हम कोई चिंता नहीं कर सकते। गाँव में जितना कुछ अनाज पैदा हुआ हो, उसके प्रमाण में हरएक को कम-से-कम कितना अनाज मिले, इसका राशन करना चाहिए था। केवल ३० एकड़ का सीलिंग बनाकर हिन्दुस्तान की ३० करोड़ एकड़ जमीन इस तरह एक करोड़ परिवार में बँट जाय, तो हिन्दुस्तान की समस्या हल नहीं होगी। ३०-३० एकड़ जमीनवाले अगर एक करोड़ लोग हिंदुस्तान में हो जायँ, तो हिन्दुस्तान का उत्कर्ष नहीं हो सकता, उसमें भूमिहीनों का समाधान नहीं हो सकता। उससे साम्ययुग नहीं आ सकता और न भोगवासना का ही नियन्त्रण हो सकता है।

होना तो यह चाहिए कि गाँव में जो भी जमीन है, वह गाँवभर में बँट जाय। हरएक को उसके परिवार के मुताबिक जमीन मिले। सब मिलकर खेती करें या अलग-अलग, यह तो गाँववाले ही तय करेंगे; लेकिन मालकियत किसी की न रहेगी। मालकियत गाँव की ही रहेगी। कोई मनुष्य प्यासा हो और उसे

पानी मिलने का हक है, तो वह मिलना ही चाहिए। वैसे ही जो जमीन माँगता है, उसे उसके हिस्से की जमीन मिलनी ही चाहिए, बशर्ते वह उस जमीन को काश्त करने को तैयार हो। इस तरह से जमीन से तो आरंभ करते हैं, लेकिन बाकी की बहुत-सी वस्तुएँ, जो मनुष्य के लिए जरूरी हैं, सबको समान भाव से मिलनी चाहिए, यह हमारी माँग है। इससे मनुष्य की भोगवासना कुंठित होगी।

धर्मार्थकामाः सममेव सेव्याः

समान भाव से बँटने का मतलब यह नहीं कि गणित की समानता हम चाहते हैं। हम तो बुद्धि की समानता चाहते हैं। इसमें कुछ कम-बेशी होगा, पर जैसे परिवार में होता है, वैसे ही होगा। परिवार में १० रोटियाँ हैं और खानेवाले पाँच मनुष्य हैं, तो गणित के हिसाब से सबको दो-दो रोटी नहीं बाँटते। हरएक को जितनी जरूरत होती है, उसी हिसाब से मिलती है, किंतु सब मिलकर खाते हैं। परिवार का यह न्याय ही हमें गाँव और समाज को लागू करना है। भोग-वासना को नियंत्रित करने का यही उपाय है। इसलिए यद्यपि हर प्राणी में सत्ता और भोग की इच्छा कुछ-न-कुछ होती है, तो भी उसका निरसन करने की पूरी शक्यता मानव में है।

शास्त्रकारों ने कहा है : "धर्मार्थकामाः सममेव सेव्याः" धर्म, अर्थ और काम का सेवन सबको एक साथ मिलकर और समान भाव से करना चाहिए। यह नहीं हो सकता कि चंद लोगों को धर्म की तालीम मिले और चंद लोगों को न मिले। सबको धर्म की तालीम मिलनी ही चाहिए। धर्म रत्न की प्राप्ति हरएक को होनी चाहिए और हरएक को गुण-विकास का मौका मिलना चाहिए। धर्म का समान भाव से सेवन करने का मतलब यही है। अर्थ का समान भाव से सेवन करने का मतलब यह है कि हरएक को जीवन की आवश्यक चीजें समान भाव से मिलनी चाहिए। कुछ थोड़ी-सी विषमता रहेगी, परन्तु पाँच अँगुलियों में जितनी विषमता रहती है, उतनी ही, उससे अधिक नहीं। इसी तरह कामवासना का समान रूप से सेवन करने का मतलब है कि हरएक को कामवासना का उचित मर्यादा में भोग करने का अवसर मिलना चाहिए। "धर्मार्थकामाः सममेव सेव्याः" यह सामाजिक जीवन

का सूत्र है। इस तरह धर्म-शिक्षण, अर्थ-लाभ और काम-तृप्ति की ऐसी योजना हो जाय, तो समाज की बहुत सारी समस्याएँ हल हो जायँगी। इसके अलावा काम-वासना, अर्थ-प्रेरणा का समान रूप से विभाजन करने के बाद समाज को यह तालीम देनी चाहिए कि अर्थ और काम तुच्छ वस्तुएँ हैं, मुख्य वस्तु नहीं है। मुख्य वस्तु तो यह है कि हरएक को आत्मा का दर्शन हो, जिसे हम 'मोक्ष' कहते हैं। वह सबको हासिल हो और सब उसके लिए कोशिश करें।

समाज मोक्षपरायण बने

पहली बात यह है कि समाज को मोक्ष-परायण बनाना चाहिए, धर्मार्थ-काम-परायण नहीं। याने अंतिम ध्येय धर्मार्थ-काम-सेवन नहीं, मोक्ष-प्राप्ति ही है। इस बात का समाज के सामने हमेशा आदर्श होना चाहिए। दूसरी बात यह है कि धर्मार्थ-काम के समान सेवन की योजना समाज में होनी चाहिए। इन तीनों के सेवन का समान मौका सबको मिलना चाहिए। तीसरी बात यह है कि मानव-स्वभाव दिन-ब-दिन बदलता रहा है और हम उसे उचित दिशा में बदल सकते हैं, ऐसी निष्ठा हममें होनी चाहिए और वैसा पुरुषार्थ हमें करना चाहिए।

सामाजिक जीवन के लिए ये तीन प्रकार के आधार अत्यंत मुख्य-स्थित आधार हैं; ऐसा हम समझते हैं। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हिंदुस्तान को अपना समाज बनाने का मौका मिला है, यह हम लोगों का बहुत बड़ा भाग्य है। हमें अब पुरुषार्थ करने का मौका मिला है, तो जिस दिशा में हमें काम करना है, उसका यह एक चित्र हमने आज आपके सामने रखा।

बालेश्वर
६-२-'५५

चर्खा : अहिंसक क्रान्ति का झण्डा

गांधीजी के साथियों ने राष्ट्र के सामने यह योजना रखी है कि 'गांधीजी की स्मृति में हिन्दुस्तान का हर व्यक्ति अपने हाथ को कती एक लच्छी सूत समर्पण करे।' इसके अनुसार आज यह १२ फरवरी के दिन, जब कि गांधीजी की अस्थियाँ भारत की नदियों में प्रवाहित की गयी थीं, हम यहाँ परमेश्वर को प्रार्थनापूर्वक अपनी सूत्रांजलि अर्पण करने के लिए इकट्ठा हुए हैं। आज मुझे सात साल पहले का वह दिन याद आ रहा है, जब कि पवनार में हमारे आश्रम के सामने 'धाम-गंगा' में वे अस्थियाँ प्रवाहित की गयीं और हजारों लोगों के सामने ईश्वर को साक्षी रखकर हमने प्रतिज्ञा की थी कि 'जो आदर्श हमें बापू ने सिखाया तथा जो अपने इस देश के ऋषि-मुनियों का तथा दुनिया के सब वली और पैगम्बरों का आदर्श है, हम उस आदर्श पर चलेंगे और उसके अनुसार भारत में सर्वोदय-समाज बनायेंगे।' इस तरह की मानसिक प्रतिज्ञा हमने इसी दिन की थी। उस घटना को अभी सात साल हुए हैं। आज हम इसी प्रतिज्ञा की पूर्ति में पैदल घूम रहे हैं।

एक के पोषण के साथ दूसरे का शोषण न हो

देखने की बात है कि हमें दुनियाभर में जो समाज बनाना है, उसकी मुख्य वस्तु क्या होगी? जाहिर है कि आज सारी दुनिया में बड़ी कशमकश है, सर्वत्र अशान्ति का डर फैला हुआ है। कभी 'कोल्ड वार' (ठंडी लड़ाई) चलती है, तो कभी 'कोल्ड पीस' (ठंडी शान्ति)। दोनों कोल्ड-ही-कोल्ड हैं और सारी दुनिया एक राह की तलाश में है, जिससे दुनिया में सबको विकास का मौका मिले और शान्ति स्थापित हो। ऐसी भूख आज सारी दुनिया को है। फिर भी आज दुनिया की जितनी भयभीत दशा है, शायद ही उतनी कभी रही होगी। आखिर इस अशान्ति का मूल कारण क्या है? यह जब हम देखते हैं, तो ध्यान में आता है कि मनुष्य ने अपना मूल कर्तव्य नहीं पहचाना है और वह दूसरों के शोषण पर अपना

पोषण करना चाहता है। यह बहुत ही भयानक जीवन की रचना मानी जायगी। जैसे जंगल का कोई जानवर दूसरे जानवरों को खाकर जीता है, वैसे ही अगर मानव-समाज में भी एक के शोषण पर दूसरे का पोषण चलता रहा, तो वह बहुत ही भयानक रचना होगी। फिर वह 'मानव-समाज' नहीं कहा जायगा, पशुतुल्य होगा। पशु से भी बदतर उसकी अवस्था होगी। 'मानव-बुद्धि' के साथ जहाँ 'पशु-हृदय' आ जाता है, वहाँ दोनों मिलकर समूल नाश ही कर डालेंगे। यह अवस्था बहुत ही खतरनाक होगी। इससे बचने के लिए जीवन का ऐसा तरीका ढूँढ़ना चाहिए, जिसमें किसी मनुष्य के पोषण के साथ दूसरे किसीका शोषण जुड़ा न हो। इसे हमारे शास्त्रकारों ने 'अविरोध' नाम दिया है। उन्होंने हमारे सामने एक सूत्र रखा है : **'सर्वेषाम् अविरोधेन ।'** किसीके विरोध में न जाकर हमें अपनी जीविका चलानी चाहिए।

अविरोधी उत्पादक श्रम

आजकल राष्ट्र-राष्ट्र के बीच के व्यवहार के लिए 'Co-existence' शब्द चल पड़ा है। उसका अर्थ यही है कि एक के साथ दूसरे का अविरोध हो, एक की 'पुष्टि' में दूसरे को 'तुष्टि' मालूम हो। इसके लिए यही उपाय होगा कि जो भी मनुष्य खाता है, वह उत्पादक परिश्रम, शरीर-परिश्रम करे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था कि हम सब लोग "डिव्हाइड" करते हैं, "मल्टिप्लाय" नहीं करते। यानी सम्पत्ति का विभाजन तो करते हैं, खाते तो हैं, हर कोई अपनी सम्पत्ति को क्षीण करने में अपना योग दे रहा है, लेकिन सम्पत्ति की वृद्धि में, उसकी पैदावार में कोई भी योग नहीं देता। आप देखेंगे, आज विद्यार्थी बेकार हैं। कहा जाता है कि विद्यार्थी तो 'विद्यार्थी' ही हैं, अध्ययन कर रहे हैं, उन पर उत्पादन की जिम्मेदारी नहीं है। किन्तु अभी वे उत्पादन में हिस्सा नहीं लेते, व्यापारी भी उत्पादन में हिस्सा नहीं लेते, पुलिस सिपाही, भिक्षुक, योगी, सन्यासी, यति, भक्त, सब-के-सब उत्पादन में हिस्सा नहीं लेते। बीमारों और बच्चों को तो अनुत्पादक जीवन बिताने का अधिकार है ही। इस तरह से कुल मिलाकर बहुत थोड़े लोग रह जाते हैं, जो उत्पादन का भार उठाते हैं और बाकी के लोगों का बोझ उन्हींके

लाल भाई मशरूवाला, जो हमेशा बीमार रहते थे, हमेशा चर्खा चलाते थे। प्रवासी और मुसाफिर भी उसे चला सकता है। किसान खेत पर जाना चाहता है कि बारिश शुरू हो जाती है और १५ मिनट वह रुक जाता है, तो इन १५ मिनटों में वह भी चर्खा चला सकता है। चर्खे को छोड़ और कोई ऐसा सादा औजार हम तो नहीं जानते, जिससे जो पैदावार हो, उसे हर कोई शरीर पर धारण कर सके। अगर हाईस्कूल और कॉलेज के छात्र और शिक्षक यह व्रत ले लें कि 'सभी स्वावलम्बी बनेंगे और अपने बदन पर इससे बना हुआ कपड़ा ही पहनेंगे', तो हरएक व्यक्ति अहिंसक क्रांति का प्रतीक बन जायगा। प्रत्येक व्यक्ति कहने लगेगा, "चौबीसों घण्टे मैंने क्रांति को पहन लिया है। सोते हुए और जागते हुए भी क्रांति मेरे चारों ओर है, यह मेरे हाथ का बना है, इसका सूत मैंने काता है।" इस तरह हरएक बच्चे के हृदय में क्रांति की भावना पैदा होजायगी। इसीलिए गांधीजी ने इतना आसान साधन हमें दिया है। अतः उनकी स्मृति में हर साल हम प्रतीक के तौर पर एक लच्छी दें, जैसे एक ही वोट देते हैं। राष्ट्र की उपासना के तौर पर गांधीजी की स्मृति में हर साल अपने हाथ की कती सिर्फ एक गुंडी अर्पण करना है। इसमें हर कोई हिस्सा ले सकता है।

चर्खा हमारा आधार

गांधीजी ने हमें जो तालीम दी, यह चर्खा उसकी निशानी है। उन्होंने आखिरी दिन तक सूत काता और कहा कि 'चर्खा हिन्दुस्तान को बचायेगा'। उनकी इस पर बड़ी मजबूत श्रद्धा रही। जब कभी हमने उनसे इस विषय पर बात की और निराशा के मौके भी आये—आजादी की लड़ाई में कितने ही ऐसे मौके आये, जब कि 'देश पस्तहिम्मत हो गया' ऐसी भी आवाज आयी—तब गांधीजी कहते : 'निराशा की क्या बात है ? चर्खा है ही। इसमें हिम्मत है, ताकत है। मान लीजिये कि कोई रिवाल्वर और राइफल लेकर हमला करने आये, तो हम सब भाई-बहनों को इकट्ठा कर चर्खा कातेंगे और गोली का सामना करेंगे। हम न डरेंगे और न भागेंगे। यह चर्खा हमें मदद देगा।' बुद्ध भगवान् के एक अनुयायी की कहानी है। वे महान् थे। उन्होंने दरिद्रता का व्रत ही ले लिया था, पैसे का

संग्रह करते ही नहीं थे। पत्नी को इसका बड़ा खेद था। उसने देखा कि मृत्यु का समय आ गया, फिर भी उन्हें शांति नहीं। पत्नी ने कहा, 'आप मेरी फिक्र न करें, बड़े प्रेम से निश्चिन्त हो भगवान् में लीन हो जाइये। मेरे पास चर्खा है, इसलिए मेरी चिन्ता का कोई कारण नहीं है।'

हमारे शास्त्रकारों ने हरएक को यज्ञोपवीत पहनने के लिए कहा है। उसमें विधि यह थी कि वह यज्ञोपवीत अपने हाथ के कते सूत का हो या नहीं तो विधवा के हाथ के कते सूत का हो। इसका मतलब यही था कि घर-बैठे बहनों को उद्योग मिल जाता था। लोग कहते हैं कि यह तो यंत्र-युग आया है। पर बाबा पैदल घूमता है, उसे कोई रोकता नहीं और लाखों एकड़ जमीन उसे मिल गयी है। यंत्र-युग में भी मैं दिल्ली में था, तो चक्की पीसता था। यंत्र-युग था, इसलिए चक्की ने इनकार नहीं किया कि मैं आटा नहीं बनाऊँगी। चक्की से आटा इस युग में भी बनता है। इसी तरह चर्खे से सूत भी इस युग में बनता है।

हिन्दुस्तान की मुख्य शक्ति हाथ

हिन्दुस्तान की मुख्य ताकत हाथ है। हम लोगों को सिखाया ही यह गया कि भाई, दो हाथ हैं। दो और मिल जायें, तो चार हो जायेंगे—चतुर्भुज बन जायेंगे और अगर चार मिल जायें, तो अष्टभुज बन जायेंगे। ऐसी अनन्त शक्ति हिन्दुस्तान में है। अब अगर हाथ की वह शक्ति बेकार पड़ी रहेगी और हम यंत्र-यंत्र जप करेंगे, तो यंत्र के जप मात्र से कोई काम नहीं होगा। लेकिन चर्खा हाथ में ले लें और कपड़ा बनाते जायें, तो उनके हाथ में क्रय-शक्ति भी रहेगी। आप इस दृष्टि से ही इस चर्खे की तरफ देखें कि एक तो वह अविरोधी श्रम का प्रतिनिधि है, जिसकी बदौलत दुनिया को हिंसा से मुक्ति मिलनेवाली है। दूसरी दृष्टि यह कि जो सामने बड़ा भारी युग आया है, जिसमें एक मनुष्य दूसरे के शोषण से अपना पोषण करना चाहता है, उसके खिलाफ होनेवाली क्रांति का यह प्रतीक है। इस दृष्टि से आप देखेंगे, तो यह कल्पना आपको हृदयंगम होगी और उससे देश का रूप पलट जायगा'।

भद्रक

तालीम की योजना

आजकल शिक्षा के विषय में लोगों में काफी मंथन चल रहा है। सोचनेवाले चिन्तन में पड़े हैं, लेकिन बात बिलकुल सरल है। अपनी बहुत सारी जनता देहातों में रहती है। इसलिए ग्राम जनता की तालीम देहाती ढंग से होनी चाहिए, जिससे देहात की उन्नति हो। जो लोग शहरों में रहते हैं, उनकी दृष्टि भी ग्रामोन्मुख रहे, उनके और ग्रामों के बीच अच्छी तरह सहयोग हो, इस प्रकार की तालीम शहरवालों को मिलनी चाहिए। अगर यह हो कि शहरवालों की तालीम एक ढंग से चले और ग्रामों की दूसरे ही ढंग से और दोनों में विरोध रहे, तो वह विरोध देश के लिए खतरनाक होगा।

जीवन की मूलभूत समता

वैसे देखा जाय, तो जिन्दगी का बहुत सारा अंश सबके जीवन में समान होता है, चाहे वह शहर की जिन्दगी हो, चाहे देहात की। पंचभूतों का जो परिणाम गाँववालों पर होता है, वही शहरवालों पर भी। उसमें कोई फर्क नहीं होता। स्वच्छ हवा की जरूरत शहरवालों और गाँववालों, दोनों को समान रूप से है और होनी चाहिए। सृष्टि के साथ सम्पर्क दोनों के लिए लाभदायी है। यद्यपि शहरवालों के लिए यह बात जरा कठिन है, तो भी यह इन्तजाम उनके लिए भी होना चाहिए। आरोग्य शास्त्र की आवश्यकता दोनों के लिए समान है। यह ठीक है कि शहरवालों के लिए आरोग्य की दृष्टि से एक इंतजाम करना पड़ेगा, तो गाँववालों के लिए दूसरा इन्तजाम; लेकिन आरोग्य की जरूरत दोनों के लिए समान ही होगी। परस्पर सहयोग, प्रेम, त्याग-भावना आदि धर्म-विचार दोनों के लिए समान लागू हैं। इतना ही फर्क होगा कि गाँवों में जीवन की बुनियादी चीजें बनेंगी, इसलिए ग्रामीण लड़कों की तालीम अत्यन्त सहज भाव से होगी और शहरों में बुनियादी चीजें न बनेंगी, गौण चीजें बनेंगी, इसलिए वहाँ की

तालीम में उन चीजों पर आधार रखना पड़ेगा, तो उस तालीम में कुछ गौणता आ जायगी। यह जो गौणता शहर के शिक्षण में आयेगी, वह वहाँ के जीवन में ही होने के कारण उसे तब तक टाल न सकेंगे, जब तक कि शहरों को भी हम ग्रामों के समान रूप नहीं दे सकते।

सृष्टिपूजक गाँव, ग्रामोन्मुख नगर

शहर की तालीम में थोड़ी गौणता रह जायगी, यह हम कबूल करते हैं। किन्तु उस गौणता की पूर्ति भी हो सकेगी, अगर दो बातें उसमें हों। एक तो शहरियों का मुँह गाँवों की तरफ हो और दूसरी, विदेश की जानकारी वे काफी रखें। शहरों से यह अपेक्षा जरूर की जायगी कि वहाँ के लोग विदेशी भाषाओं से कुछ परिचय रखें। इसलिए उन भाषाओं में जो नयी-नयी चीजें आयेंगी, उन्हें वे अपने साहित्य में लायेंगे, यह आशा उनसे जरूर की जायगी। अगर उनकी दृष्टि ग्रामोन्मुख रही, तो ग्रामीणों की सेवा करना वे अपना धर्म समझेंगे। मैंने सूत्र ही बनाया था कि 'ग्रामीण होंगे सृष्टिपूजक या परमेश्वर-सेवक और शहर के लोग होंगे ग्राम-सेवक'। अगर यह दृष्टि रही, तो दोनों स्थानों का इस तरह विकास किया जा सकता है कि एक दूसरे की पूर्ति में एक-दूसरे मदद दें।

हर गाँव में विद्यापीठ

मेरी कल्पना है कि हर गाँव में सम्पूर्ण तालीम होनी चाहिए। जिसे हम 'युनिवर्सिटी' या 'विद्यापीठ' कहते हैं, वह हर गाँव में होना चाहिए। क्योंकि हरएक गाँव, चाहे वह कितना भी छोटा हो, सारी दुनिया का प्रतिनिधि है और कुल दुनिया थोड़े में वहाँ पर मौजूद है। इसीलिए वहाँ पूरी तालीम मिलनी चाहिए। प्रत्येक गाँव का सृष्टि के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, इसलिए मनुष्य को सब तरह से वहाँ सृष्टि-विज्ञान हासिल हो सकता है। असंख्य प्राणी, पक्षी, पशु आदि के साथ सम्पर्क रहता है। इसलिए मानव के लिए प्राणिशास्त्र का पूरक ज्ञान वहाँ मिल सकता है। वहाँ खेती होगी, कपड़ा बनेगा, रास्ते बनेंगे और ग्रामोद्योग होंगे। इसलिए उन सब चीजों के जरिये और उन चीजों के लिए इस ज्ञान की जरूरत है। वह सारा ज्ञान ग्राम में प्राप्त होना चाहिए और हो सकता है।

ग्राम में प्राचीनकाल से मानव-समाज चला आया है। अतः वहाँ इतिहास भी मौजूद है और समाज-ज्ञान भी। शहर में जितना एक-दूसरे से आता है, ग्राम में उससे अधिक निकट सम्पर्क आता है। इसलिए वहाँ नीतिशास्त्र और धर्म-शास्त्र बहुत विकसित हो सकता है। आत्मा की व्यापकता, एक-दूसरे के साथ सहयोग करने की वृत्ति, सत्य-निष्ठा आदि जो नीति-धर्म हैं, वे ग्राम में अच्छी तरह प्रकट हैं। ग्रह, नक्षत्र, तारे आदि आकाश में दीखते हैं, शायद शहरों में उनका प्रकाश अच्छी तरह पहुँचता न होगा। इसलिए गाँवों में काव्य-साहित्य का जितना विकास हो सकता है, शायद उतना शहरों में होना मुश्किल है।

सज्जन ग्रामनिष्ठा बढ़ायें

हम आजकल के शहरों में व्यास और वाल्मीकि ऋषि की कल्पना ही नहीं कर सकते। उनकी कल्पना तो ग्रामों या ग्रामों के नजदीक ही कर सकते हैं। शूर और त्यागी पुरुष—जो जंगलों के जानवरों से लड़नेवाले होते हैं—तो ग्रामों में ही हो सकते हैं। इसलिए पराक्रमी पुरुषों की सेवा ग्राम से ही मिल सकती है। राष्ट्रों की सेनाओं के सैनिक ग्रामों से ही मिलते आये हैं। सवाल इतना ही है कि इतना सब होता है, तो ग्राम में तालीम देने के लिए जरूरी सारा सरंजाम क्या हम गाँव में नहीं बना सकते? इसका उत्तर है, ग्रामों की चीजों में से कुछ सरंजाम हम गाँव में बना ही सकते हैं। लेकिन बहुत ज्यादा सरंजाम की नहीं, निरीक्षण और प्रयोग की अधिक जरूरत रहेगी। इसलिए कभी-कभी ग्रामों के लड़कों को शहर की युनिवर्सिटी में जाकर भी कुछ थोड़ा देखने का मौका लेना पड़ेगा। वैसे ही शहरवालों को भी ग्रामों में जाकर वहाँ की कुछ चीजें सीखने का मौका आयेगा। लेकिन इन सबके लिए मेरी निगाह में जो बहुत जरूरी चीज है, वह यह है कि सज्जन और विद्वान् जन गाँवों में रहना पसन्द करें। सत्पुरुषों में ग्राम-निष्ठा बढ़ने से जो काम होगा, वह और किसी दूसरी रीति से न होगा। युनिवर्सिटी के लिए जरूरी चीज तो यही है कि गाँव-गाँव में कुछ सज्जन विचार का अनुशीलन करनेवाले मौजूद हों। कम-से-कम एक-एक सज्जन एक-एक गाँव में आकर रहने लगे, तो उस गाँव के लिए तालीम का इन्तजाम करना किसी तरह से कठिन नहीं होगा।

संन्यासी चलता-फिरता विद्यापीठ

इसके अलावा भिन्न-भिन्न प्रकार का ज्ञान, जो गाँव का कोई व्यक्ति या गाँव का सज्जन भी प्राप्त नहीं कर सकता, गाँवों को मिले, ऐसी भी एक योजना हमारे पूर्वजों ने की थी। उसे हमें भी जारी करना होगा। वह है, 'परिव्राजक संन्यासी' की योजना। संन्यासी गाँव-गाँव घूमता रहेगा और २-४ महीने किसी एक स्थान में भी रहेगा, तो उसका पूरा लाभ गाँवों को मिलेगा। वह सारी दुनिया का और आत्मा का ज्ञान सबको देता ही रहेगा। संन्यासी मानें 'वाकिंग युनिवर्सिटी' (चलता-फिरता विद्यापीठ), जो हर गाँव में स्वेच्छा से जायगा। वह विद्यार्थियों के पास खुद पहुँचेगा और मुफ्त में सबको तालीम देगा। गाँववाले उसके लिए सात्त्विक, स्वच्छ, निर्मल आहार देंगे। इनके अलावा उसे कुछ भी जरूरत नहीं। उससे जितना भी ज्ञान मिल सकता है, गाँववाले पा लेंगे। ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक भी कौड़ी या पैसा खर्च करना पड़े, इससे अधिक दुःख-दायक घटना कोई नहीं हो सकती। जिसके पास ज्ञान होता है, उसे इस बात की अत्यन्त प्यास रहती है कि दूसरों के पास वह (ज्ञान) पहुँचे। उसे भूख होती है कि उसका ज्ञान दूसरों के पास जाय। बच्चे को माता के स्तनपान की जितनी इच्छा होती है, उतनी ही इच्छा माता को भी बच्चे को स्तनपान कराने की होती है; क्योंकि उसके स्तनों में दूध भगवान् ने भर दिया है। कल अगर यह हो जाय कि माताएँ लड़कों से फीस लिये बगैर उन्हें दूध न दें, तो दुनिया की क्या हालत होगी ?

वानप्रस्थ शिक्षक

ऊँचे ज्ञान के लिए शहर की युनिवर्सिटी में जाना पड़ेगा। वहाँ सौ-सौ, दो-दो सौ रुपये खर्च किये बगैर कुछ हो ही नहीं सकता। समझने की जरूरत है कि इस तरह पैसा खर्च कर जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह ज्ञान ही नहीं होता। पैसे से खरीदा ज्ञान 'अज्ञान' ही है। प्रेम और सेवा देकर ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इसलिए जो ज्ञानी पुरुष गाँव-गाँव घूमते हों और वे जिस गाँव में जायँ, उस गाँव के लोग प्रेम से उन्हें २-४ दिन ठहरा लें। उनकी भक्ति करें और उनके पास जो ज्ञान भरा है, उसे हासिल करें, यही योजना हो सकती है। जैसे नदी अपने-आप

लोगों की सेवा के लिए गाँव-गाँव दौड़ी जाती है, जैसे जङ्गलों में खा-पीकर अपने-अपने थनों में दूध-भरकर गायें बच्चों को पिलाने के लिए अपने-आप दौड़ी चली आती हैं, उसी तरह ज्ञानी पुरुष भी गाँव-गाँव में ज्ञान लेकर दौड़ेंगे। 'परिव्राजकों' की यह संस्था फिर से खड़ी होनी चाहिए। इस तरह हर गाँव में युनिवर्सिटी बन सकती है और दुनिया का ज्ञान हर गाँव में पहुँच सकता है।

वानप्रस्थ आश्रम की संस्था फिर से मजबूत करनी चाहिए, जिससे हर गाँव में स्थिर शिक्षक मिल सकें, जिन पर कोई ज्यादा खर्च करना न पड़े। हरएक गृहस्थ का घर है, 'स्कूल' और उसका खेत है, 'प्रयोगशाला'। हरएक वानप्रस्थ है, 'शिक्षक' और हरएक परिव्राजक संन्यासी 'युनिवर्सिटी'। विद्यार्थी हैं, 'आज के बच्चे', जो सीखना चाहते हैं। गाँव-गाँव में ऐसे लोग हैं, जो १-२ घण्टा सीखेंगे और बाकी का समय दिनभर काम करते रहेंगे। इस तरह के चार आश्रमों की जो हमारी योजना है, वह पूरी योजना बचपन से लेकर मरण तक की तालीम की योजना है, ऐसा हम समझते हैं।

कृष्ण-सुदामा का प्रतीक

सर्वोदय में यह दृष्टि है कि सारा गाँव अपने पूरे जीवन की समस्याएँ अपने बल पर हल करे। इसलिए गाँव की कुल दौलत किसी एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि गाँव की बननी चाहिए। तभी गाँव के सब बच्चों के लिए समान तालीम की योजना बन सकती है। अगर हम हरएक को समान रूप से पौष्टिक और सात्त्विक खुराक नहीं दे सकते, तो समान रूप से तालीम क्या दे सकेंगे? सुदामा गरीब ब्राह्मण का लड़का था और श्रीकृष्ण था राजा का लड़का। दोनों गुरु के घर गये थे। दोनों को समान खुराक मिलती थी, समान परिश्रम का काम मिलता था और दोनों को समान ही विद्या दी गयी थी।

अगर किसी गाँव में हमारा विद्यालय खुल जाय, जहाँ एक लड़का गरीब का आये, जो फटे कपड़े पहना हो और दूसरा अच्छे कपड़े पहनकर आये—एक को खुराक खाने को न मिले और दूसरा बैठे-बैठे खाये तथा आलसी बन गया हो—तो स्कूल कैसे चलेगा! इसलिए अगर हम चाहते हैं कि ठीक ढंग से सबरी

तालीम हो, तो उसका यही इलाज है कि गाँव का जीवन एक परिवार के समान हो और गाँव की कुल दौलत, कुल बुद्धि और कुल शक्ति सभी के काम आये।

जिसे हम 'नयी तालीम' कहते हैं; वह उस अहिंसा में छिपी है, जिसका प्रकाश भूदान और ग्रामोद्योग के जरिये फैलेगा। परमेश्वर करे कि ऐसे ज्ञान और प्रेम से भरे गुरु हिन्दुस्तान के हर गाँव में हासिल हों।

असुरेश्वर
६-३-'५५

आदर्श राज्यकर्ता : १५ :

[उत्कल विधान-सभा के सदस्यों के साथ एक वार्ता],

आज की सभा प्रार्थना के बाद शाम को रखने का विचार किया गया था, तो मैंने कहा : 'नहीं भाई, दिन में कोई समय रखो। क्योंकि दिन में सबके चेहरों का दर्शन होगा। रात को चेहरे देखने को नहीं मिलते।'

दर्शन बहुत सूक्ष्म वस्तु

हमारे देश में यह एक पागलपन है कि बहुत-से लोगों को जितनी दर्शन की प्यास होती है, उतनी श्रवण की नहीं। देहात-देहात के लोग दर्शन के ही लिए आते हैं। अवश्य ही दर्शन बहुत सूक्ष्म वस्तु है। दर्शन से जो मिलता है, वह श्रवण से भी नहीं मिलता। मैं नहीं जानता कि यह स्थिति दुनिया के दूसरे देशों में कैसी है, किन्तु अपने इस देश में जरूर है। करोड़ों ग्रामीणों को—बहनों और भाइयों को—दर्शन से ही तृप्ति होती है। यह केवल एक कल्पना मात्र नहीं, बल्कि एक अन्दरूनी अनुभव है। चाहे आप इसे मिस्टीसिज्म (Mystisism) कहिये या 'गूढ़वाद'; किन्तु ये गूढ़वाद नहीं, गूढ़ अनुभव है। मेरी भी मनोवृत्ति ऐसी ही है। इसलिए मुझे चेहरे देखकर जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी बिना चेहरे देखे व्याख्यान देने से नहीं हो सकती। इसीलिए मैंने खासकर कहा था कि दिन में ही सभा रखी जाय। तो, आप लोगों की सहूलियत देखकर यह समय रखा गया।

'चुने गये प्रतिनिधियों' को 'सुर' कहते हैं। इस तरह आपकी गिनती देवताओं में होती है। देवताओं के लिए सबसे बड़ी महत्त्व की बात, जिसकी बहुत ज्यादा जरूरत है, है सावधानी। इसके लिए भी हमारे समाज-शास्त्रियों ने सूचना दे रखी है। उन्होंने कहा है कि देवता तो बड़े प्रकाशमान् होते हैं। उनके पास काफी प्रकाश होता है। सामाजिक समस्याओं पर वे प्रकाश डाल सकते हैं। जिम्मेवारी के साथ समस्याओं का हल कर सकते हैं। ये सारी शक्तियाँ उनमें होती हैं। आज की जनता उन्हें चुनती और अधिकार देकर किसी स्थान पर आसीन कराती है। लेकिन सुरों के अक्सर भोगपरायण हो जाने का खतरा रहता है। इस कारण उनके लिए बहुत जरूरी गुण 'दमन' माना गया है। वैसे 'दमन' क्षत्रियों का गुण है। ब्राह्मणों का तो खैर है ही। गृहस्थों के लिए और यतियों के लिए भी वह है। वास्तव में वह तो सार्वजनिक, सार्वकालिक, सार्वदैशिक गुण है—ऐसा गुण है, जिससे सबको लाभ-ही-लाभ है। किंतु उस गुण की विशेष आवश्यकता देवों को होती है।

उपनिषदों में एक सुन्दर कहानी आती है, जिसका जिक्र हमने 'गीता-प्रवचन' में भी एक दूसरे प्रसंग में किया है। देव, दानव और मानव प्रजापति के घर विद्याभ्यास के लिए गये थे। विद्याभ्यास होने पर प्रजापति ने एक-एक को विदा करना चाहा। अन्तिम उपदेश के तौर पर उन्होंने हरएक को बुलाकर कुछ बातें कहीं। बातें क्या कहीं? एक मंत्र ही—एकाक्षर मंत्र—दे दिया। पहले देवताओं का, पीछे दानवों का और अन्त में मानवों का समावर्तन हुआ। देवता आये, तो उनसे कहा : उपदेश तो अध्ययन के समय आपने बहुत सुन लिया, अब अन्तिम अक्षर आपको दिया जाता है—'द'। पूछा गया कि अर्थ तो समझ गये न? बोले : हाँ, समझ गये। क्या समझे? उत्तर मिला : 'द' याने 'दाम्यत'—दमन करो। गुरुजी ने कहा : ठीक! और वे चले गये। उसके बाद दानव आये, असुर आये। वे भी विद्या पढ़े हुए थे। उन्हें भी वही अक्षर दिया गया, 'द' और पूछा गया कि आप इसका क्या अर्थ समझे? उन्होंने कहा : हम यह समझे कि आप हमें कहते हैं, 'दयध्वम्'—गुरुजी बोले : आप ठीक समझे, जाइये। फिर मानव आये। म

विदाई के समय यही एकाक्षर मंत्र दिया गया और पूछा गया कि आप इसका अर्थ क्या समझे ? उन्होंने कहा : हम यह समझे कि 'दत्त'—दान करो। गुरुजी ने कहा : आप ठीक समझे।

तो, श्रुति कहती है : 'दमम् दानम् दयामिति'—दम, दान और दया, ये त्रिविध धर्म हैं, जिनसे सारे भूतमात्र का कल्याण होता है, समाज की धारणा होती है। फिर श्रुति हमें आदेश देती है कि प्रजापति ने अपने शिष्यों को यह जो 'द' रूपी मंत्र सिखाया, उसकी उपासना करो। मेघ-गर्जना हमें सतत यही सिखाती है। बारिश होने के पहले मेघ-गर्जना होती है, तो ऋषियों ने उस गर्जना पर अपनी विशिष्ट दृष्टि रखी और उससे संदेश पाया : 'दाम्यत दत्त दयध्वम् इति।' 'द द द द द द'—मेघ ऐसे ही बोल करते हैं। इस तरह दमन, दान और दया, ये तीनों चीजें सबके लिए मुफीद हैं, आवश्यक हैं, लाभदायी हैं। फिर भी देवों को उसमें से अर्थ मिला : 'दमन करो।' क्योंकि देवों ने अन्तःपरीक्षण कर देखा कि हम भोग-परायण हैं, भोगासक्त हैं, भोगलोलुप हैं; इसलिए गुरुजी ने हमारे हित की ही बात कही होगी, तो वह दमन ही होगा। इस कारण देवों ने उसमें से 'दमन' अर्थ ले लिया। दानवों ने, जो बड़े निष्ठुर हृदय और क्रूरकर्मा थे, अपने दोष भाँके और समझ लिया कि गुरुजी ने हमारी दोष-निवृत्ति के लिए ही उपदेश दिया है; इसलिए जरूर दया ही कही होगी। इस तरह उन्होंने अपने लिए 'दया' अर्थ ले लिया। और मानव तो लोभी थे ही। लोभ मानव का सबसे बड़ा वैरी है। उन्होंने समझ लिया कि गुरुजी ने हमारा यही दोष हेर लिया और उसके अनुकूल कोई उपाय बताया होगा, तो वह दान ही होना चाहिए। इस तरह तीनों ने अपने आत्म परीक्षण और अन्तर्निरीक्षण से स्थिति देख ली और विभिन्न अर्थ लिये। सारांश, सुरों या देवताओं के लिए 'दमन' की आवश्यकता ज्यादा मानी गयी, क्योंकि वे भोगपरायण होते हैं।

जनक का आदर्श

ऐश्वर्य के बाद भोग सहज ही आता है। किन्तु राजा जनक महल में होते हुए भी अत्यन्त अलिप्त ही रहते थे। वे यही वृत्ति रखते थे कि मिथिला नगरी भस्म जाय, तो भी मेरा उसमें कुछ नहीं जलता। "मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे

दद्मति किञ्चन।" प्रजा की सेवा के लिए तो दौड़ा जाऊँगा, लेकिन मेरा उसमें कुछ नहीं—ऐसी निर्लिप्त वृत्ति से वे रहते थे। ऐसा जनक राजा का वर्णन है। यह आसान बात नहीं कि वैभव के अन्दर रहते हुए भी कोई इतना वैराग्यशील रहे, जलकमलवत् निर्लिप्त रहे। जैसे लक्ष्मी की सतत सेवा पाते हुए भी विष्णु भगवान् अत्यन्त निर्लिप्त या परम वैराग्यशील हैं। वैसे ही या जनक महाराज के समान वैभव में वैराग्य वृत्ति से रहना कोई आसान बात नहीं है। इसलिए जो लोग देवात्मा हैं, चुने हुए अधिकृत सेवक हैं, उनके सामने महाराज जनक का ही आदर्श होना चाहिए।

दरिद्रों के सेवक शंकर-से रहें

कुछ लोग ग्राम जनता में सेवा करते हैं, अपना विचार लोगों को समझाते रहते हैं। लोगों ने उन्हें चुना नहीं और न वे लोगों से चुने जाने की इच्छा ही रखते हैं। अपने को उन्होंने खुद ही चुना है कि मैं लोगों की सेवा करूँगा। उन्होंने अपने ऊपर खुद ही यह जिम्मेवारी डाल ली है। वे स्वाधिकृत हैं, लोगों की तरफ से अधिकृत नहीं। उनके लिए मैं यही चिन्तन करूँगा कि उन्हें शुकदेव का आदर्श रखना चाहिए। ऐसी वैराग्यशील वृत्ति से व्यवहार करना चाहिए, जैसे शुकदेव करते थे। इस तरह एक के सामने शुक का आदर्श हो, तो दूसरे के सामने जनक का आदर्श।

आज हम भुवनेश्वर में हैं, तो सहज ही मिसाल सूझ सकती है कि यहाँ जो ग्राम जनता में अनधिकृत सेवा करनेवाले सेवक हैं, उन्हें भगवान् शंकर का आदर्श अपने जीवन में रखना चाहिए। शंकर वैराग्यशील और 'महोक्षः खट्वांगः' हैं। खटिया पड़ी है, तो वह भी पूरी नहीं, टूटी-फूटी ही। उसे दुरुस्त करके ही शाम को इस्तेमाल किया जायगा। और सामने उनके पास कोई है, तो बैल ही। भिक्षा के लिए कपाल ही है। ऐसे परम वैराग्य में रहनेवाले शिव का आदर्श ही उनका आदर्श होना चाहिए। जो अधिकृत सेवक हैं, उनके सामने भगवान् विष्णु का आदर्श होना चाहिए, जो लक्ष्मी से सदा सेवित होते हुए भी उससे निर्लिप्त हैं। आपसे समाज की यही अपेक्षा रहेगी, क्योंकि समाज दरिद्र

है और आप हैं दरिद्रों के प्रतिनिधि। जितने भी यहाँ आये हैं, कुल-के-कुल दरिद्रों के प्रतिनिधि हैं, क्योंकि आज हिन्दुस्तान ही एक दरिद्र देश है। इसमें बहुत थोड़े लोग श्रीमान् हैं। साधारणतः यह दरिद्र ही देश है। इसलिए दरिद्रों के प्रतिनिधि के तौर पर ही हमें काम करना चाहिए।

बापू इंग्लैंड गये, तो उन्होंने लंदन के उस हिस्से में, जहाँ सबसे गरीब लोग रहते थे, निवास किया। वहाँ से राउण्ड टेबुल कान्फ्रेंस (गोलमेज परिषद्) में आने के लिए घंटा, सवा घंटा लगता था। जैसे दूसरे नजदीक रहते थे, वैसे वे भी रह सकते थे, उसमें कुछ समय भी बचता। किन्तु उन्होंने दूरदृष्टि से सोचा और गरीब लोगों में ही जाकर रहे।

महाराज श्रीकृष्ण जहाँ पाण्डवों के प्रतिनिधि होकर दुर्योधन के पास गये, तो दुर्योधन ने अपने मन्दिर में उनके लिए जगह रखी थी। लेकिन उन्होंने उसका स्वीकार नहीं किया और विदुर की कुटिया ही ढूँढ़ ली। इसीलिए आज तक भगवान् श्रीकृष्ण का चरित्र गाकर लोग नाचते हैं। 'गोपाल' का नाम सबमें मशहूर है। लोग समझते हैं, गोपाल तो हमारा ही है। सतत हमारा काम करनेवाला, हमारे घोड़ों की सेवा करनेवाला, हमारी गायों का गोबर उठानेवाला, हमारी बहनों की सेवा करनेवाला, अपने को हर किसी काम में, खतरे में डालनेवाला, कहीं भी राज्य-सत्ता का अधिकारी न बननेवाला और युधिष्ठिर के सामने सेवक के नाते खड़ा होनेवाला वह एक परम सेवक हिन्दुस्तान में हो गया। वह परम महाज्ञानी होता हुआ भी साधारण मनुष्यों के समान ही रहता था। लोग उसको आज तक याद करते हैं। सारांश, ऐसे लोकोत्तर, परम सेवक श्रीकृष्ण ने विदुर के घर रहना पसन्द किया। वहीं उन्हें अनन्त आनन्द और समाधान मिला। आप लोगों के सामने इसी तरह के आदर्श होने चाहिए, क्योंकि आप दरिद्रों के प्रतिनिधि हैं। महाराज कृष्ण ने भी यही सोचा था कि हम तो वनवासी पांडवों के प्रतिनिधि हैं, इसलिए हमें उसी नाते रहना चाहिए।

जनता थर्मामीटर है

राजनीतिज्ञता होगी, वही चलाते होंगे। लेकिन लोग यही देखते हैं कि दरिद्र भारत का यह प्रतिनिधि कैसा जीवन बिता रहा है। लोग मूर्ख नहीं होते। दुनियाभर की साधारण जनता की परख बहुत अच्छी होती है। मैंने बहुत दफा मिसाल दी है कि जनता तो थर्मामीटर है। वैसे थर्मामीटर जड़ है, चेतन नहीं; लेकिन ठीक उष्णता नाप लेता है। इसी तरह जनता अच्छी परख कर लेती है। यद्यपि वह जड़ है, तो भी उसे परख है। हमारे जितने प्रतिनिधि विदेशों में, पार्लमेण्ट में या असेम्बली में जाते हैं, जनता उनका जीवन देखकर ही उनकी परख कर लेती है। खैर, जनता जो भी करे, परन्तु परमेश्वर तो उनकी परख उनके जीवन से कर ही लेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। तो, पहली बात मैं आपसे यह कहना चाहता था कि आप अधिकृत सेवक हैं। अतः जिन्होंने आपको चुना है, उनके हृदय के साथ आपका हृदय लगना चाहिए। उनका और आपका एक स्वर होना चाहिए। यह ध्यान में रखना चाहिए कि हमारे लिए कुछ सहूलियतें इसीलिए दी जाती हैं कि हम शान्ति से सलाह-मशविरा कर सकें। इसीलिए मकान भी ऐसे होते हैं, जहाँ कुछ एकान्त रहता है, ताकि हम कुछ अध्ययन भी कर सकें। और कुछ तनख्वाह भी हमें इसीलिए दी जाती है। यद्यपि साधारण सदस्यों को जो तनख्वाह मिलती है, वह ज्यादा है, ऐसा तो नहीं कहा जायगा। फिर भी आम जनता की सतह से कुछ अधिक भी उन्हें इसी आशा से दिया जाता है कि वे हमारे सेवक हैं। उन्हें घर की कोई चिन्ता न रहे और सेवक के तौर पर वे निश्चिन्त हो काम करें। सारांश, यद्यपि साधारण जनता के खयाल से आपका जीवन कुछ सहूलियत का होता है, फिर भी आप वह सारी तपस्या खुशी और स्वेच्छा से करें, जो एक गरीब अपनी कुटिया में लाचारी में करता है। अगर ऐसा हो, तो हिन्दुस्तान बहुत उन्नत बनेगा और जो विश्वास आप लोगों पर रखा गया है, उसके आप पात्र सिद्ध होंगे।

भरत-सी तपस्या करें

सहूलियत के इस जीवन में हमें निरन्तर यह खयाल रहे कि हम किनके प्रतिनिधि हैं! अगर हम सतत उनकी हालत का चिन्तन करें, तो हमारा जीवन भरत

जैसा हो जाय। रामचरित्र में भरत आता है। रामचन्द्र ने उससे कहा : 'नहीं, यह जिम्मेवारी तुम्हें उठानी ही होगी, राज्य का संचालन करना ही होगा।' आखिर रामाज्ञा समझकर भरत ने उसे कबूल कर लिया और रामचन्द्र वनवास के लिए गये। चौदह साल तपस्या कर रामचन्द्र वापस आते और उन्हें इच्छा होती है कि प्रथम हम भरत से मिलें। वे भरत से मिलने जाते हैं। कवि लिखता है, 'दोनों भाई एक-दूसरे से मिल रहे हैं और पहचाना नहीं जाता कि दोनों में से कौन वन गया था।' अवश्य ही एक बड़ा भाई है और दूसरा छोटा, इसलिए बड़ा भाई ही जंगल में गया था, यह तो मालूम होता है। फिर भी रूप, आकृति देखकर यह पहचान नहीं होती कि इनमें से कौन जंगल गया था—१४ साल जंगल का सेवन किसने किया था। यह तपस्या इनमें से किसने की है, यह पहचाना नहीं जाता था। सारांश, भरत अयोध्या में रहकर भी तपस्या ही कर रहा था।

भारत की अद्वितीय विचार-संपदा

यहाँ आप लोग भिन्न-भिन्न विचार के प्रतिनिधि मौजूद हैं। कोई अपने को कम्युनिस्ट बतलाता है, कोई सोशलिस्ट, कोई कांग्रेसी, कोई किसी और पक्ष का, तो कोई स्वतन्त्र। ये सभी हैं, लेकिन ये जितनी भी भिन्न-भिन्न विचार-पद्धतियाँ हैं—जिन्हें हम 'आइडियोलॉजी' या 'संप्रदाय' कह सकते हैं—उनके प्रचार के लिए देश में सबको आजादी होनी चाहिए, ऐसा भी मैं मानता हूँ। विचार-प्रचार अनिर्बाध होना चाहिए। उसके लिए कोई बंधन न होना चाहिए। यद्यपि मैं मानता हूँ कि विचार-मंथन सतत ही होता रहे, तो समाज के लिए अच्छा है। फिर भी मेरा स्पष्ट मत है कि जो देश पिछड़ा हुआ है और जिसे सर्वसाधारण मानव-जीवन के लिए आवश्यक चीजें भी प्राप्त नहीं हैं, वहाँ ऐश्वर्य और भोग की लालसा तो छोड़ दीजिये, साधारण मानव-जीवन बिताने के लिए जरूरी कम-से-कम चीजें तो चाहिए ही।

हम समझते हैं कि हमारे पूर्वजों ने बड़े बड़े सुन्दर ग्रंथ हमें दे रखे हैं। इससे बेहतर निगमत दुनिया में किसी देश को हासिल नहीं। हिन्दुस्तान के लिए दावा किया जाता है कि यह एक बड़ा संपन्न देश है। यहाँ सुंदर-सुंदर सैकड़ों नदियाँ

बहती और हिमालय जैसा पहाड़ तो हमारी सेवा करता ही है। हमारा देश बड़ा ही सुजल और सुफल है। लेकिन हिंदुस्तान से भी बहुत अधिक सुजल-सुफल देश दुनिया में मौजूद है। इस बात में हिन्दुस्तान अद्वितीय देश नहीं है। उसका नम्बर कुछ थोड़ा नीचे ही आयेगा, बहुत ऊपर नहीं। अमेरिका में बड़ी सुन्दर जमीन पड़ी है और वहाँ ४०० सालों से काश्त हो रही है। लेकिन हिन्दुस्तान की जमीन १० हजार सालों से जोती गयी और उसकी उर्वरता कम हो गयी है। इसलिए यद्यपि यह ठीक है कि मानव-जीवन के लिए जरूरी सामग्री देने की शक्ति हिन्दुस्तान में पर्याप्त है, फिर भी हम दावे के साथ यह नहीं कह सकते कि हिन्दुस्तान ही अद्वितीय समृद्धिशाली देश हो सकता है या है।

हम यह भी आशा नहीं कर सकते कि भविष्य में हमारा भारत दुनिया में एक अद्वितीय समृद्धिशाली देश बनेगा। किन्तु यह दावा जरूर किया जा सकता है कि यहाँ जो विचार-संपदा हमें मिली है, वह अत्यन्त अद्वितीय है। यह बात मैं कोई अभिमान से नहीं कह रहा हूँ। अगर मैं आज जैसा ही निष्पक्षपाती और तटस्थ होकर दूसरे किसी देश में जनमा होता, तो भी हिन्दुस्तान के लिए यही कहता कि इसका विचार-वैभव निःसंशय अद्वितीय है। यह इसलिए नहीं कि यहाँ ऐसे नाटक, चरित्र लिखे गये या साहित्य रचा गया है। वे तो मामूली चीजें हैं। इनमें तो दुनिया के कई देशों में बहुत तरक्की की गयी है। लेकिन बुनियादी चीज 'आध्यात्मिक विचार-संपदा' है, जिसे हम 'जीवन का पाथेय' कह सकते हैं। वही हमारे लिए अद्वितीय है। पहले गाँव-गाँव में परिव्राजक घूमते थे। वह भी एक जमाना था। बुद्ध भगवान् के जमाने में भिक्षु कितने घूमते थे, महावीर स्वामी के संघ कितने घूमते थे, शंकराचार्य के यति कितने घूमते थे! सतत घूमते ही रहते थे। श्रुति ने भी आज्ञा दे रखी थी कि चलो रे, चलो रे—"चरैवेति चरैवेति।" उसने तो यहाँ तक कहा है कि घूमनेवाला कृतयुग में होता है, खड़ा रहनेवाला त्रेतायुग में, बैठनेवाला द्वापर युग में और सोनेवाला कलियुग में रहता है।

देश की वर्तमान दुर्दशा

किन्तु आज यह कुछ भी नहीं है। लोग इस आध्यात्मिक विचार-संपदा को नहीं

जानते, नहीं पढ़ते और न उसे पढ़कर सुनानेवाले ही यहाँ हैं। ज्ञान की दृष्टि से देखा जाय, तो आज हमारे देश की जनता अत्यन्त अज्ञानग्रस्त है। यह ठीक है कि उसके पास हजारों वर्षों का कुछ अनुभवी ज्ञान है। लोग उसकी बहुत ज्यादा कीमत करते और उसीके कारण यहाँ के चुनाव आदि इतने सफल होते हैं। लोगों को बड़ी शंका थी कि इस देश में चुनाव के प्रयोग, करोड़ों लोगों से वोट हासिल करने में न मालूम क्या-क्या कठिनाइयाँ आयेंगी, कितने दंगे-फसाद होंगे ! पर कुछ भी नहीं हुआ। यह देखकर दुनिया चकित रह गयी। इसका कारण हिन्दुस्तान के लोगों का हजारों वर्षों का अनुभव ही है। उसी कारण वे सहज ही 'दान्त' या दमनशील एवं सभ्य हैं। किन्तु इस अनुभव के बावजूद यहाँ की जनता के लिए ज्ञानदान की कोई योजना नहीं है। संपत्ति तो चूस ही ली गयी। दो-तीन सौ सालों में संपत्ति का शोषण तो चला ही है। और शारीरिक शक्ति भी क्या है ? हिन्दुस्तान के लोगों के शरीर अत्यन्त दुर्बल, अस्थि-चर्म-वशेष हम देख ही रहे हैं ! शायद इस मामले में हम दुनिया में अद्वितीय साबित हों, तो मालूम नहीं। आज हमारे देश की यही हालत है। हम यहाँ की जनता को ऊँचा उठाना चाहते हैं। उसका जीवन सुखी तथा सम्पन्न, समृद्ध और समतायुक्त बनाना चाहते हैं।

समान कार्यक्रम चाहिए

अगर हम इन सभी 'आइडियोलॉजी' पर जोर देकर जनता में भेद ही निर्माण करते चले जायँ और एक-दूसरों के दोष ही देख उन्हें समाज के सामने रखा करें, तो बहुत सोचने पर भी हमारी समझ में ही नहीं आता कि इसमें किस पक्ष का क्या कल्याण होगा। आखिर हमें करना क्या है ? जनता की सेवा करनी है, समाज का जीवन उन्नत और समतायुक्त बनाना है। फिर अगर इन लोगों के विचार भिन्न-भिन्न हैं, तो परस्पर सलाह-मशविरा करें और कभी समाज के सामने उन विचारों को रखें भी, तो शांति से रखें। क्या जनता के उत्थान के लिए सभी दलों का कोई साधारण कार्यक्रम भी हो सकता है या नहीं ? किसी एक प्रश्न पर सब पक्षों के लोग एक हो सकते हैं या

किसी तरह का मतभेद अब भी विचारशील, चिंतनशील मनुष्यों में होगा। इसी तरह का कोई और भी दूसरा कार्यक्रम हो सकता है। ऐसा एक साधारण कार्यक्रम अपने सामने रखा जाय। सरकार की भी यह योजना है। उसके नियोजन में वह चीज आ जाय और आप तथा जनता द्वारा भी वह मान्य की जाय। सब लोग उसमें लगें, यह बात होनी चाहिए।

संपत्ति-दान दीजिये

तीसरी बात मैं यह कहना चाहूँगा कि संपत्तिदान के बिना भूमिदान एकांगी हो जायगा। आरंभ केवल भूदान का हुआ, यह तो उचित ही था। गंगा भी गंगोत्री से अकेली ही निकलती है। फिर इस गंगा में कहीं यमुना का भी संगमन-आगमन होना ही चाहिए, नहीं तो काम कैसे चलेगा? इसलिए भूदान के साथ-साथ संपत्ति-दान जुड़ ही जाना चाहिए। आरंभ में दोनों बातें हमने शुरू नहीं कीं और उस समय वह हो भी नहीं सकता था। किन्तु समय आया है कि अब संपत्ति-दान भी बहुत जोरों से चलना चाहिए। हरएक अपनी संपत्ति का छठा हिस्सा दे, यह हमारी माँग है। लोग कम-बेशी दे सकते हैं। हम कोई टैक्स इकठा नहीं कर रहे हैं। अपनी शक्ति देखकर कोई कम-बेशी भी दे सकता है। परन्तु वह ऐसा न हो कि कोई एक टुकड़ा दे दिया। टुकड़े का दान न हो। अपनी सम्पत्ति का कोई अच्छा-सा हिस्सा गरीब और अमीर, सबको देते ही रहना चाहिए। हमें यह नित्य-दान का कार्य हिन्दुस्तान में रूढ़ करना है। अगर इतनी संपत्ति सार्वजनिक कार्य के लिए मिल सके, तो योजना-आयोग को होनेवाली बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ न होंगी। उसका काम आसान हो जायगा। इसलिए मेरी छठे हिस्से की इस माँग पर भी आप जरा सोचिये।

हम यह नहीं कहते कि आपके पास बहुत ज्यादा संपत्ति है। कुछ ही लोगों के पास वह बहुत ज्यादा हो सकती है, पर सबके पास तो थोड़ी-थोड़ी है ही। उस हालत में आप पर इस सम्पत्तिदान की जिम्मेवारी आ जाती है। कारण, आप लोगों द्वारा चुने हुए हैं, सेवक हैं। आपका आचरण समाज के सामने सहज ही ... आदर्श हो जाता है। हम कुछ भी करें, फिर भी चूँकि जनता ने आपको

चुन ही लिया है, इसलिए हमें आपकी श्रेष्ठता कबूल करनी ही होगी। फिर 'यद्यदाचरति श्रेष्ठः' यह गीता-वचन स्पष्ट ही आपको यह आदर्श रखने की प्रेरणा देता है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि यहाँ जितने भी आये हैं और जो नहीं भी आये, उन सबके कानों तक मेरी यह बात पहुँचेगी।

इसमें आप किसी प्रकार का या सामाजिक भी दबाव न मानें। मेरे पास दूसरा तो कोई दबाव है ही नहीं। मेरे पास कोई सत्ता तो है ही नहीं। न मैं सत्ता चाहता हूँ और न मेरा ऐसे कामों के लिए सत्ता पर भरोसा ही है। 'कुरान' में मुहम्मद पैगम्बर ने स्पष्ट ही कहा है जिसका कि मुसलमानों के जरिये बहुत दफा भंग ही हुआ : "ला इकराह फिद् दीन।" याने धर्म में जबरदस्ती हो नहीं हो सकती। यह भी एक धर्म-विचार है और इसमें भी कभी जबरदस्ती नहीं हो सकती। इसलिए इसमें कोई जबरदस्ती नहीं है। मैं यह भी नहीं चाहता कि सामाजिक दबाव से भी यह काम किया जाय। बल्कि आप इस चीज पर ठण्डे दिल से सोचें कि क्या आप अपना छठा हिस्सा देकर बाकी का भोग करें, तो आपका जीवन बहुत ज्यादा दुःखी होगा? भौतिक दृष्टि से भी मैं नहीं मान सकता कि यह आपके लिए बहुत ज्यादा तकलीफ देनेवाला होगा। इस हिसाब से आपसे भी बहुत दुःखी लोग हिन्दुस्तान में मौजूद हैं। इसके बावजूद आपको इससे आध्यात्मिक सुख तो बहुत ज्यादा मिलेगा और हिन्दुस्तान की सेवा के लिए लोगों को बड़ा भारी उत्साह प्राप्त होगा।

'नित्य-दान' में 'सम-विभाजन'

हम चाहते हैं कि भारत में 'नित्य-दान' की प्रवृत्ति रूढ़ हो ही जानी चाहिए। जहाँ हम 'दान' के साथ 'नित्य' शब्द जोड़ देते हैं, वहीं उसमें से 'परोपकार' की भावना निकल जाती है। नित्य-दान का मतलब नित्य देते रहना है और उसीसे 'सम-विभाजन' होता है, जो कि शंकराचार्य ने कहा था। बुद्ध भगवान् के लिए भी कहा गया है कि 'यं समविभागं भगवो अवण्णई।' बुद्ध भगवान् के शिष्य लोगों को यही समझाते रहे कि सम-विभाजन करो। हम ऐसा ही दान करते हैं,

जिसे भगवान् बुद्ध भी सम-विभाजन कहते थे। सचमुच 'सम-विभाजन' बहुत ही सुन्दर शब्द है। बिलकुल प्राचीनकाल से, वेदों के जमाने से और बौद्ध, जैन, शंकर आदि के काल से आज तक यह शब्द चला आया है। नित्य-दान की प्रवृत्ति से यह सम-विभाग बन आयेगा।

आप सोचें कि आज यहाँ हम एक अच्छे स्थान पर हैं; कुछ गिनी हुई आमदनी है, चाहे ज्यादा न हो। कल इस स्थान पर न रहकर कहीं दूसरे स्थान पर रहें, तो निश्चित आमदनी न रह जायगी। किन्तु हमें इसकी कोई जरूरत नहीं। आपकी जो भी आमदनी हो, कम या बेशी, हर साल आपको उसीका एक हिस्सा देना है। अगर यह विचार आप मान्य कर लें, तो बड़ा अच्छा होगा।

देश में कोई अनपढ़ न रहे

एक बात और! भारत की सबसे बड़ी देन उसका सारस्वत या उसकी विद्या है। लेकिन लोग उसे पढ़ना नहीं जानते। अवश्य ही मैं यह मानता हूँ कि बिना पढ़े भी मनुष्य उन्नत हो सकता है। फिर भी पढ़ना एक बड़ा शक्तिशाली साधन है, इससे कोई भी इनकार नहीं कर सकता। इसलिए हमारे देश के हरएक मनुष्य को पढ़ना-लिखना आना ही चाहिए। हरएक व्यक्ति अच्छी तरह ग्रन्थों को पढ़ सके। पुराने जमाने के एक राजा ने बताया था कि मेरे राज्य का क्या वैभव है? उसने कहा :

> 'न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यः न मद्यपः।
> न अनाहिताग्निः न अविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥'

राजा कह रहा है कि **'न मे स्तेनो जनपदे'** याने मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है। जहाँ पहले वाक्य में चोर न होने की बात कही, वहीं दूसरे वाक्य में कहा : **'न कदर्यः'** याने कोई कंजूस नहीं है। दोनों एक-दूसरे के बाप-बेटे हैं। जहाँ कंजूस हैं, वहाँ चोरों का होना लाजिमी है। अगर आप चोर नहीं चाहते, तो कंजूस भी न होना चाहिए। इसके साथ ही **'न मद्यपः'** कहकर उस राजा ने मानो आपके सारे राज्य-व्यवहार के लिए एक कार्यक्रम ही बना दिया है : (१) कहीं चोरी न होनी चाहिए, (२) कहीं कंजूस न होने चाहिए और (३) शराब

कोई न पिये या कोई व्यसनी न रहे। आगे वही राजा कहता है : 'न अनाहिताग्निः' मेरे राज्य में भगवान् की भक्ति न करनेवाला कोई भी नहीं है। उन दिनों भगवान् की भक्ति अग्नि की उपासना के जरिये होती थी। इसीलिए यहाँ अग्नि का नाम लिया गया है। मतलब यह कि परमेश्वर की उपासना न करनेवाला कोई नहीं, हरएक ईश्वर-भक्त है। और फिर वह क्या कहता है : 'नाविद्वान्' अविद्वान् कोई नहीं याने हमारे राज्य में सभी विद्वान् हैं। सामान्य पढ़ना-लिखना सभीको आता है। सभी 'साक्षर' थे। 'साक्षर' का अर्थ यह नहीं कि उसे सिर्फ अक्षर ही आते थे। बल्कि पूरे अक्षर और अर्थ, दोनों उनके जीवन में उतरे थे। वैसे ही हमारे राज्य में हर व्यक्ति विद्वान् होना चाहिए। राजा ने अन्त में कहा : 'न स्वैरी स्वैरिणी कुतः'। अजीब श्लोक है। मेरे राज्य में दुराचार करनेवाला पुरुष नहीं है। फिर जहाँ ऐसा दुराचारी पुरुष नहीं, वहाँ दुराचार करनेवाली स्त्री हो ही नहीं सकती। दुराचार की सारी जिम्मेवारी पुरुषों पर ही डाली गयी। स्वैरी पुरुष ही नहीं, तो स्वैरिणी होगी कहाँ ?

इस तरह एक आदर्श राज्य उन्होंने हमारे सामने रखा। उसमें यही कल्पना थी कि हमारे राज्य का हरएक मनुष्य विद्वान् होना चाहिए। मेरे मन में भी हमेशा यही आता है कि इस देश का भी हरएक स्त्री-पुरुष विद्वान् होना चाहिए। और कोई वैभव हो या न हो, हमें उसकी परवाह नहीं। लेकिन विद्या तो हमारे पास होनी ही चाहिए।

विचार-प्रचार में सर्वथा निराग्रह

आपने मुझे अपने विचार आपके सामने रखने का मौका दिया, इसलिए मुझे आपका उपकार मानना चाहिए। हमारे जैसे मुक्त विहार करनेवालों में दुनिया में बाँधनेवाली कोई चीज नहीं है। लेकिन वे भी प्रेम से बँधे रहते हैं। उन्हें यह उत्सुकता रहती है कि जो लोक-हितकारी ज्ञान-संग्रह किया है, उसे लोगों को देकर ही मरें। जैसे-जैसे वृद्धावस्था आती है, मृत्यु का भान सामने होने लगता है, वैसे-ही-वैसे यह इच्छा और भी बढ़ जाती है कि यह सारा संग्रह एक दफा समाज को दे दें और फिर अपने असली घर जायें, जहाँ जाने की बहुत ही आस लगी हुई है।

मुकाम पर नहीं पहुँचाती। सिर्फ कहती है कि यह भुवनेश्वर, यह कटक और यह पुरी! वह इतना ही बतला देती है। अगर आपको पुरी जाना हो, तो पुरी जाइये और न जाना हो, तो मत जाइये। भुवनेश्वर जाना हो, तो वहाँ जाइये, और न जाना हो, तो वहाँ भी मत जाइये। शास्त्रकारों की वृत्ति भी इसी तरह की होती है। "शास्त्रं ज्ञापकम्, न तु कारकम्" यानी शास्त्र सिर्फ ज्ञान करा देता है, स्वयं कुछ करता-धरता नहीं। तो, मेरी वृत्ति भी शास्त्रों जैसी ही बनी है, क्योंकि मैं बचपन से आज तक नित्य-निरन्तर शास्त्रों का सेवक रहा हूँ। इसलिए हम समझते हैं कि उसने जो वृत्ति अपने लिए अपना रखी है, वही मेरे लिए भी श्रेयस्कर है। कोई बात समाज पर लादनी नहीं चाहिए, इस पर मेरा दृढ़ विश्वास है। इसलिए ये जो विचार आपके सामने रखे, उन्हें आप अच्छी तरह समझकर ही ग्रहण करें, तो बहुत अच्छा होगा। और अगर वे आपको असार मालूम पड़ें, तो भी अच्छा है। हम आपको भक्तिभाव से प्रणाम करते हैं।

भुवनेश्वर
१५-३-'५५

धर्म-स्थानों को जेल मत बनने दीजिये : १६ :

बहुत लोगों को मालूम हुआ होगा कि आज सुबह हम जगन्नाथ के दर्शन के लिए मन्दिर तक गये थे और वहाँ से हमको वापस लौटना पड़ा। हम तो बहुत भक्ति-भाव से गये थे। हमारे साथ एक फ्रेंच बहन भी थी। अगर वह मन्दिर में नहीं जा सकती है, तो फिर हम भी नहीं जा सकते हैं, ऐसा हमको हमारा धर्म लगा। हमने तो हिन्दू-धर्म का बचपन से आज तक सतत अध्ययन किया है। ऋग्वेद आदि से लेकर रामकृष्ण परमहंस और महात्मा गांधी तक धर्म-विचार की जो परंपरा यहाँ पर चली आयी है, सबका हमने बहुत भक्ति-भावपूर्वक अध्ययन किया है। हमारा नम्र दावा है कि हिन्दू-धर्म को हम जिस तरह समझे हैं, उस रूप में उसके नित्य आचरण का हमारा नम्र प्रयत्न रहा है। आज हमको लगा कि उस फ्रेंच बहन को बाहर रखकर हम अन्दर जाते, तो हमारे लिए बड़ा अधर्म होता।

हमने वहाँ के अधिष्ठाता से पूछा कि क्या इस बहन के साथ हमको अन्दर प्रवेश मिल सकता है ? जवाब मिला कि नहीं मिल सकता। तो, भगवान् की जगह उन्हींको भक्ति-भाव से प्रणाम करके हम वापस लौटे।'

संस्कार के प्रभाव में

जिन्होंने हमको अन्दर जाने देने से इनकार किया, उनके लिए हम कौन-सा शब्द इस्तेमाल करें, यही नहीं सूझ रहा है। इतना ही कहते हैं कि उनके लिए हमारे मन में किसी प्रकार का न्यून भाव नहीं है। मैं जानता हूँ कि उनको भी दुःख हुआ होगा, परन्तु वे एक संस्कार के वश थे, इसलिए लाचार थे। उनको इसलिए हम ज्यादा दोष भी नहीं देते। इतना ही कहते हैं कि हमारे देश के लिए और हमारे धर्म के लिए यह बड़ी ही दुःखदायक घटना है। हमने कल के व्याख्यान में ही जिक्र किया था कि बाबा नानक को यहाँ पर मंदिर के अन्दर जाने का मौका नहीं मिला था और बाहर ही से उन्हें लौटना पड़ा था। लेकिन वह तो पुरानी घटना हुई। चार-साढ़े चार सौ साल पहले की बात थी। हम आशा रखते थे कि अब यह बात फिर से नहीं दुहरायी जायगी।

हिन्दू-धर्म को खतरा

हमारे लिए सोचने की बात है कि यह जो फ्रेंच बहन हमारे साथ आयी, वह कौन है ? वह अहिंसा में और मानव-प्रेम में विश्वास रखनेवाली एक बहन है और गरीबों की सेवा के लिए जो भूदान-यज्ञ का काम चल रहा है, उसके लिए उसके मन में बहुत आदर है। इसलिए वह देखने के वास्ते हमारे साथ घूम रही है। आपको मालूम है कि महाराज युधिष्ठिर के लिए जब स्वर्ग का द्वार खुल गया था, और उनके साथी को अन्दर जाने से मना किया, तो वे भी अन्दर नहीं गये। यह जो बहन हमारे साथ घूम रही है, हम समझते हैं कि परमेश्वर की भक्ति उसके मन में दूसरे किसीसे कम नहीं है। हमारे भागवत-धर्म ने तो यह दावा किया है कि जिसके हृदय में ईश्वर की भक्ति है, वह ईश्वर का प्यारा है, चाहे वह किसी भी जाति का या किसी भी धर्म का क्यों न हो। ब्राह्मण भी क्यों न हो और बहुत सारे दुनिया के गुण उसमें हों, तो भी उसमें यदि भक्ति नहीं है,

तो उससे वह एक चांडाल भी श्रेष्ठ है, जिसके हृदय में भक्ति है। भागवत-धर्म और उसकी प्रतिष्ठा उड़ीसा में सर्वत्र है। उड़िया भाषा का सर्वोत्तम ग्रंथ है, जगन्नाथदास का भागवत। जगन्नाथ-मंदिर के लिए भी—नानक की पुरानी बात छोड़ दीजिये—परन्तु, यह ख्याति रही कि यहाँ पर बड़ा उदार वैष्णव-धर्म चलता है। आप लोगों को समझना चाहिए कि इन दिनों हर कौम की और हर धर्म की कसौटी होने जा रही है। जो संप्रदाय, जो धर्म उस कसौटी पर टिकेंगे, वे ही टिकेंगे, बाकी के नहीं टिक सकते। अगर हम अपने को चहारदीवारी में बन्द कर लेंगे, तो हमारी उन्नति नहीं हो सकेगी और जिस उदारता का हिन्दू-धर्म में विस्तार हुआ है, उसकी समाप्ति हो जायगी। धर्म-विचार में उदारता होनी चाहिए। समझना चाहिए कि जो भी कोई जिज्ञासु हो, उसके सामने अपना विचार रखना और प्रेम से उससे वार्तालाप करना भक्त का लक्षण है। जैसे दूसरे धर्मवाले यहाँ तक आगे बढ़ते हैं कि अपनी बातें जबरदस्ती दूसरों पर लादते जाते हैं, वैसा तो हमको नहीं करना चाहिए। परन्तु हमारे मंदिर, हमारे ग्रंथ, सब जिज्ञासुओं के लिए खुले होने चाहिए। हमारा हृदय सबके लिए खुला होना चाहिए, मुक्त होना चाहिए। अपने धर्म-स्थानों को एक जेल के माफिक बना देना हमारे लिए बड़ा हानिकारक होगा और उनमें सज्जनों को प्रवेश कराने में हिचकिचाहट रही, तो मन्दिरों के लिए आज जो थोड़ी-बहुत श्रद्धा बची हुई है, वह भी खतम हो जायगी।

सनातनियों द्वारा ही धर्महानि

हमको समझना चाहिए कि आखिर धर्म का संदेश किसके लिए है? चन्द लोगों के लिए है या दुनिया के लिए? हम आपसे कहना चाहते हैं कि हम जब वेद का अध्ययन करना चाहते थे, तब ऋग्वेद का उत्तम संस्करण, सायण-भाष्य के साथ हमें मैक्समूलर का किया हुआ मिला। दूसरा कोई उतना अच्छा नहीं मिला। यह बात तो मैं कोई तीस-बत्तीस साल पहले की कह रहा हूँ। अब तो पूना के तिलक-विद्यापीठ ने सायण-भाष्य के साथ ऋग्वेद का अच्छा संस्करण निकाला है। परन्तु उन दिनों तो मैक्समूलर का ही सबसे उत्तम संस्करण मिलता

था। उसमें कम-से-कम गलतियाँ, उत्तम छपाई, सस्वर, शुद्ध स्वर के साथ उच्चारण था। एक जमाना था, जब वेद के अध्ययन के लिए यहाँ पर कुछ प्रतिबन्ध लगाया गया था; लेकिन उन दिनों लेखन-कला नहीं थी। छापने की कला तो थी ही नहीं। उन दिनों उच्चारण ठीक रहे, पाठ-भेद न हों और वेदों की रक्षा हो, इस दृष्टि से वैसा किया गया होगा। उस जमाने की बात अगर कोई इस जमाने में करेगा और कहेगा कि वेदाध्ययन का अधिकार केवल ब्राह्मण को ही है, दूसरों को नहीं, तो वह मूर्खता की बात होगी। वेदों का अच्छा अध्ययन जर्मनी में हुआ है; रूस में, फ्रांस में और इंग्लैंड में भी हुआ है। ऋग्वेद के ही नहीं, बल्कि सारे वेदों के सब मंत्रों की सूची और संग्रह ब्लूमफील्ड नाम के लेखक ने बहुत अच्छे ढंग से किया है। उसकी तुलना में उतना अच्छा दूसरा ग्रंथ नहीं मिलेगा। दूसरे ऐसे बीसों ग्रन्थों का हम नाम ले सकते हैं। वे सारे ग्रंथ हाथ में रखकर उनके आधार पर ऋग्वेद का अध्ययन करने में हमें मदद मिली है। अगर इन दिनों कोई पुरानी बात करता है, तो उसका मतलब यह हुआ कि हम समझते ही नहीं कि जमाना क्या है। जैसे-जैसे जमाना बदलता है, वैसे-वैसे बाह्यरूप भी बदलना पड़ता है, लेकिन हमारे सनातन-धर्मी संकुचित लोगों ने सनातन-धर्म का जितना नुकसान किया है, उतना नुक्सान शायद ही दूसरे किसीने इस धर्म का किया हो।

करीब सौ साल पहले की बात है। जबरदस्ती से सैकड़ों कश्मीरी लोग मुसलमान बनाये गये थे। यह बात तो जबरदस्ती की थी, लेकिन उन लोगों को पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने फिर से हिन्दू-धर्म में आना चाहा। उन्होंने काशी के ब्राह्मणों से पूछा, तो उन्होंने उनको वापस लेने से इनकार किया और कहा कि ऐसे भ्रष्ट लोगों को हमारे धर्म में स्थान नहीं है, हम उनको नहीं ले सकते! लेकिन नोआखाली इत्यादि में जो कांड हुआ, उसमें सैकड़ों हिन्दू जबरदस्ती से मुसलमान हो गये, तो उनको वापस लेने में काशी के पंडितों को शास्त्र में आधार मिल गया और वे उनको वापस लेने के लिए उत्सुक हो गये। यह बात सौ साल पहले इनको नहीं सूझी थी, अब सूझ गयी है। जिसको समय पर बुद्धि आती है, उसीको ज्ञानी कहते हैं। उसीसे धर्म की रक्षा होती है।

मनु का धर्म मानवमात्र के लिए

बहुत आश्चर्य की बात है कि इन दिनों हिन्दू-धर्म का शायद बहुत ही उत्तम आदर्श जिन्होंने अपने जीवन में रखा, उनको, महात्मा गांधीजी को, सनातनी लोग धर्म-विरोधी कहते हैं। हम समझते हैं कि हिन्दू-धर्म का बचाव और इज्जत जितनी गांधीजी ने की, उतनी शायद ही दूसरे किसी व्यक्ति ने पिछले एक हजार साल में की होगी। लेकिन ऐसे शख्स को सनातनी हिन्दू लोग धर्म का विरोधी मानते हैं और अपने को धर्म का रक्षक मानते हैं। यह बड़ी भयानक दशा है। इन सनातनियों को समझना चाहिए कि जिस धर्म को वे प्यार करते हैं, उस धर्म को उनके ऐसे कृत्य से बड़ी हानि पहुँचती है। जब कि हिन्दुस्तान को स्वतन्त्रता मिली है और हिन्दुस्तान की हरएक बात की तरफ दुनिया की निगाह लगी हुई है, हिन्दुस्तान से दुनिया को आशा है, तब ऐसी घटना घटती है, तो दुनिया पर उसका क्या असर होगा, इसे आप जरा सोचिये। मनु महाराज ने आशा प्रकट की थी और मैंने कल ही उनका यह श्लोक सुनाया था :

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

पृथ्वी के सब मानव इस देश के लोगों से यदि चरित्र की शिक्षा पायेंगे, तो क्या इसी ढंग से पायेंगे कि वे हमारे नजदीक आना चाहेंगे, तो भी हम उन्हें नजदीक नहीं आने देंगे? जब मनु महाराज ने 'पृथिव्यां सर्वमानवाः' कहा, तो उन्होंने अपने दिल की उदारता ही प्रकट की। मनु ने जो धर्म बतलाया था, वह मानव-धर्म कहा जाता है। वह धर्म सब मानवों के लिए है। यह ठीक है कि हम अपनी बात दूसरों पर न लादें, परन्तु दूसरे हमारे नजदीक आना चाहते हों, तो हम उन्हें आने भी न दें, यह कैसी बात है! मैं चाहता हूँ कि इस पर हमारे प्रान्त के लोग अच्छी तरह से गौर करें और भागवत-धर्म की प्रतिष्ठा किस चीज में है, इस पर विचार करें।

क्रोध नहीं, दुःख

चंद दिन पहले मैं उड़िया का एक भजन पढ़ रहा था, सालबेग का। उसमें कहा है कि मैं तो दीन जाति का यवन हूँ और मैं श्रीरंग की कृपा चाहता हूँ।

ऐसा भजन जिसमें है, उस भागवत-धर्म के लिए क्या यह शोभा देता है कि एक स्वच्छ, शुद्ध, निर्मल हृदय की बहन को मन्दिर में आने से रोक दें? उस बहन के आने से क्या वह मंदिर भ्रष्ट हो जायगा? मुझे कोई क्रोध नहीं आया, जब उसको वहाँ जाने से इनकार किया गया, परंतु मुझे दुःख हुआ, अत्यन्त दुःख हुआ। आज दिनभर वह बात मेरे मन में थी। मैं नहीं समझता कि इस तरह की संकुचितता हम अपने में रखेंगे, तो हिन्दू-धर्म कैसे बढ़ेगा या उसकी उन्नति कैसे होगी!

देश की भी हानि

आप लोग जानते हैं कि वैदिक-काल में पशु-हिंसा के यज्ञ चलते थे, परंतु भागवत-धर्म ने तो उसका निषेध किया और उसे बन्द किया। जगन्नाथदास के 'भागवत' में भी यह बात है। बुद्ध भगवान् ने तो सीधे यज्ञ-संस्था पर ही प्रहार किया था। तब तो वह बात कुछ कटु लगी थी, परंतु उसके बाद हिन्दुओं ने उनकी बात मान ली थी और विशेषकर भागवत-धर्म ने उसको स्वीकार किया। इस तरह पुरानी कल्पनाओं का सतत संशोधन करते आये हैं। आज का हिन्दू-धर्म और भागवत-धर्म प्राचीन वैदिक-धर्म में जो कुछ गलत चीजें थीं, उनमें सुधार करके बना है। वेदों में तो मुझे ऐसी कल्पना के लिए कोई आधार नहीं मिलता है। फिर भी उस जमाने में पशु-हिंसा चलती थी, यज्ञ में पशु-हिंसा की जाती थी। इस यज्ञ-संस्था पर बुद्ध भगवान् ने एक तरह से प्रहार किया। परंतु गीता ने तो उसका स्वरूप ही बदल दिया और उसे आध्यात्मिक स्वरूप दिया और आज फल से जप-यज्ञ, तप-यज्ञ, दान-यज्ञ, ज्ञान-यज्ञ आदि सब रूढ़ हो गये हैं। तो, पुरानी संकुचित कल्पना को धर्म के नाम से पकड़ रखना धर्म का लक्षण नहीं है। हिंदू-धर्म का तो सतत विकास होता आ रहा है। इतना विकासक्षम धर्म दूसरा कोई नहीं होगा। जिस धर्म में छह-छह परस्परविरोधी दर्शनों का संग्रह है, जिसने द्वैत-अद्वैत को अपने पेट में समा लिया है, जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के देवताओं की पूजा को स्थान दिया गया है और जिसमें किसी भी प्रकार के आचार का आग्रह नहीं है, उससे उदार धर्म दूसरा कौन-सा हो सकता है? हिंदू-धर्म में

एक जाति में एक प्रकार का आचार है, तो दूसरी जाति में उससे भिन्न आचार है। एक प्रदेश में एक आचार है, तो दूसरे प्रदेश में भिन्न आचार है। इतना निराग्रही, सर्वसमावेशक और व्यापक धर्म मिला है और फिर भी हम उसे संकुचित बना लेते हैं, तो इसमें हम देश का ही नुकसान करते हैं।

मैं चाहता हूँ कि इस पर आप लोग गौर करें। यहीं मैं परमेश्वर का उपकार मानता हूँ कि जिन विचारों पर मेरी श्रद्धा है, उन विचारों पर अमल करने की शक्ति वह मुझे देता है। इस तरह भगवान् मुझे निरंतर सद्विचार पर आचरण करने का बल देगा, ऐसी आशा है। मैं मानता हूँ कि आज मंदिर में जाने से इनकार करके मुझे जो एक बड़ा सौभाग्य, जो एक बड़ा लाभ मिला था, उसका मैंने त्याग किया। एक श्रद्धालु मनुष्य को आज मंदिर में प्रवेश करने से रोका गया है, यह बात मैं भगवान् के दरबार में निवेदन करना चाहता हूँ। आप सब लोगों को मेरे भक्ति-भाव से प्रणाम !

पुरी
२१-३-'५५

सच्ची धर्म-दृष्टि : १७ :

कल हमने मंदिर-प्रवेश का लाभ लेने से इनकार किया। यह घटना बहुत चिंतनीय है और उसमें जो कुछ विचार रहे हैं, उनकी तरफ मैं आपका ध्यान खींचना चाहता हूँ। मैं नहीं चाहता कि उस घटना के विषय में क्षोभयुक्त मनोवृत्ति से कुछ सोचा जाय; बल्कि शांत वृत्ति से सोचा जाय; क्योंकि जिन्होंने हमको प्रवेश देने से इनकार किया, उनके मन में भी धर्म-दृष्टि काम कर रही है और हमने जो प्रवेश करने से इनकार किया, उसमें भी धर्म-दृष्टि काम कर रही थी। यानी दोनों बाजू से धर्म दृष्टि का दावा किया जा सकता है। अब सोचना इतना ही है कि इस काल में और इस परिस्थिति में धर्म की दृष्टि क्या होनी चाहिए।

गूढ़वाद रूढ़वाद बन गया

मैं कबूल करता हूँ कि एक विशेष जमाने में यह भी हो सकता था कि उपासना के स्थान अपने-अपने लिए सीमित किये जा सकते थे। कहीं

एकान्त में ध्यान हो सकता था। जैसे, मैंने कल कहा था कि वेद-रक्षण के लिए एक जमाने में उसके पठन-पाठन पर मर्यादा लगायी थी, पर इस जमाने में उसकी जरूरत नहीं है। आज वैसा करने जाओ, तो वेद के अध्ययन पर ही प्रहार हो जायगा। यही न्याय सार्वजनिक उपासना के स्थानों के लिए भी लागू होता है। जैसे नदी का उद्गम गहन स्थान से, दुर्गम गुहा में होता है, वैसे ही धर्म का उदय, वेद की प्रेरणा, कुछ व्यक्तियों के हृदय के अन्दर से होती है। अनादिकाल से कुछ विशेष मानवों को, जिनको आर्ष-दर्शन था, धर्म-दृष्टि थी। उसके संगोपन के लिए विशेष एकान्त स्थान वे चाहते होंगे। उन्होंने उस जमाने में यही सोचा होगा कि यह धर्म-दृष्टि ऐसे ही लोगों को समझायी जाय, जो समझ सकते हैं। अन्यथा गलतफहमी होगी, उसे कुछ गलत समझेंगे, इसलिए अधर्म होगा। परिणामस्वरूप उस अति प्राचीनकाल में, जब वैदिक-धर्म का आरम्भ हुआ था, लोग सोचते होंगे कि कुछ खास मंडलों के लिए ही यह उपासना हो और वह उपासना इस तरह सीमित हो। पर जैसे नदी उस दुर्गम गुहा से, उस अज्ञात स्थान से, बाहर निकलती है, आगे बढ़ती है और मैदान में बहना शुरू करती है, तो वह सब लोगों के लिए सुगम हो जाती है, वैसे ही हमको भी समझना चाहिए कि वैदिक-धर्म की नदी उस दुर्गम स्थान से काफी आगे बढ़ चुकी है और विशेषतः वैष्णवों के जमाने में वह सब लोगों के लिए काफी सुलभ-सुगम हो चुकी है। इसलिए नदी के उद्गम-स्थान में, उसके अल्प-से पानी की पावनता के लिए जो चिन्ता करनी पड़ती है, वह चिन्ता, जहाँ नदी उद्गम से दूर बहती है और समुद्र के पास पहुँचती है, वहाँ नहीं करनी पड़ती। इसलिए बीच के जमाने में जो वाद था, हिन्दुस्तान में, वह गूढ़वाद था। वह आखिर रूढ़वाद हो गया। फिर गूढ़वाद मिट गया और एकांत ध्यान में चिन्तन, सामूहिक भजन, कीर्तन को जगह दे दी गयी। प्राचीन ग्रन्थों में भी लिखा है कि सत्ययुग में एकान्त ध्यान-चिन्तन करना धर्म है और कलियुग में सामूहिक भजन, नाम-संकीर्तन करना धर्म है।

भक्ति-मार्ग का विकास

परिणाम उसका यह हुआ कि जहाँ तक भारत का सवाल है, यहाँ या भक्ति-

मार्ग इतना व्यापक हो गया है, यहाँ तक व्यापक हो गया है कि उसमें सबका समावेश हो गया। भक्ति के जितने प्रकार हो सकते थे, उन सबके भक्ति मार्ग प्रकट हो गये। अद्वैत आया, द्वैत आया, विशिष्टाद्वैत आया, शुद्ध अद्वैत आया, केवल अद्वैत आया, द्वैताद्वैत आया, संकेत आया, पूजा आयी, मूर्ति-पूजा आयी, नाम-स्मरण आया और जप-तप भी आया। इस प्रकार जितने अंग हो सकते थे, भक्ति-मार्ग के, वे सारे-के-सारे हिंदू-धर्म में विकसित हो गये और मानवता में बिलकुल फर्क नहीं हो सकता, इस बुनियाद पर भक्ति-मार्ग का अधिष्ठान स्थिर हो गया, दृढ़ हो गया। केवल ध्यानमय जो धर्म था, वह कृष्णार्पणमय होकर फल-त्यागयुक्त सेवामय हो गया। इसलिए भगवान् ने कहा है: "ध्यानात् कर्म-फलत्यागः।" यानी ध्यान से भी सेवामय फलत्याग की भक्ति श्रेष्ठ है। लेकिन एक जमाना होता है, जब ध्यान-धारणा करनी होती है। उसके बिना धर्म का आरम्भ ही नहीं होता। उसी ध्यान-चिन्तन के परिणामस्वरूप नाम-संकीर्तनमूलक भक्ति-मार्ग और फल-त्यागयुक्त सेवा का मार्ग खुल गया था। इसलिए संभव है कि जिस जमाने में ये मंदिर बने होंगे, उस जमाने में कुछ खास उपासकों को ही उनमें स्थान मिलता होगा। यही धर्म-दृष्टि से उचित है, ऐसा वे मानते होंगे।

अपने पाँव पर कुल्हाड़ी

हमारे सामने सोचने की बात यह है कि आज जब हिन्दुस्तान का भक्ति-मार्ग इतना व्यापक हो चुका है, इतना विकसित हो चुका है कि उसमें सारे धर्म-सम्प्रदाय आ गये हैं, उस हालत में हमें अपने-अपने उपासना-स्थान सबके लिए खुले करने चाहिए या नहीं? मेरी राय है कि अगर हिन्दू-धर्म इस वक्त अपने को सीमित रखने की कोशिश करेगा, संकुचित करेगा, अपने को चन्द लोगों तक ही महदूद करेगा, तो वह खुद पर ही प्रहार करेगा और नष्ट होगा, मिट जायगा। इसलिए वैदिक-धर्म का जो रूप था, वैदिक जमाने में, उसे छन्दोबद्ध यानी ढँका हुआ कहते थे, वह अब नहीं होना चाहिए। वह अब खुला होना चाहिए। इसलिए प्राचीनकाल में जो गुप्त मन्त्र होते थे, उनके बदले में कलियुग में राम, कृष्ण, हरि जैसे नाम ही खुले मन्त्र के रूप में आ गये। उसमें नाम-

उसे छोड़ते हैं। धार्मिक पुरुष की धर्म-भावना में न सिर्फ मानव के लिए ही प्रेम होता है, असंकोच होता है, बल्कि प्राणिमात्र के लिए प्रेम होता है और असंकोच होता है। अपने-अपने खयाल से और मन के सन्तोष के लिए मनुष्य अलग-अलग उपासना करते हैं। इस तरह उपासनाएँ अलग-अलग बन जाती हैं। उन उपासनाओं के मूल में जो भक्ति है, वह सबसे बड़ी चीज है, मानवता से भी व्यापक है। लोग हमसे पूछते हैं कि क्या सर्वोदय-समाज में कोई मुसलमान नहीं रहेंगे, हिंदू नहीं रहेंगे, खिस्ती नहीं रहेंगे, तो हम जवाब देते हैं कि ये सारे-के-सारे रहेंगे और ये सब सर्वोदय के अंग हैं। इसका मतलब यह नहीं कि हिंदू, मुस्लिम या खिस्ती-धर्म के नाम पर जो गलत धारणाएँ चल पड़ीं, वे भी इसमें होंगी। वे तो इसमें नहीं रहेंगी, बल्कि उपासना की जो भिन्न-भिन्न प्रणालियाँ हैं और जो व्यापक भावना है, वह सर्वोदय में अमान्य नहीं है। लेकिन सर्वोदय में यह नहीं हो सकेगा कि एक तरह की उपासना करने का ढंग कोई दूसरे किसी उपासना के स्थान में, मंदिर में, उपासना करने के लिए जाना चाहे, तो उसे रोका जाय। चाहे वह भिन्न उपासना क्यों न करता हो, उसे रोकना नहीं चाहिए, चाहे हिन्दू का मदिर हो, चाहे मुसलमान का मदिर हो, चाहे खिस्तियों का मदिर हो, या दूसरे किसीके मदिर हों। जो उपासना के लिए एक मन्दिर में जाना चाहता है, वह उपासना के लिए दूसरे किसी भी मन्दिर में न जाय, ऐसा नहीं कह सकते। जैसी रुचि होगी, वैसे लोग जायँगे। इस तरह से भिन्न-भिन्न उपासना के मन्दिरों में लोग जायँगे और सर्वोदय-समाज में यह किसीके लिए लाजिमी नहीं होगा कि खास वह किसी फलाने मंदिर में ही जाय। एक मंदिर में जाकर प्रेम से उपासना करनेवाला दूसरे मंदिर में भी अगर जाना चाहता है, प्रेम से उस उपासना में योग देना चाहता है, प्रेम से उस उपासना को जानना चाहता है, तो उसे रोकना अत्यन्त गलत चीज है।

उपासना के बंधन नहीं

आप लोगों ने रामकृष्ण परमहंस का नाम जरूर सुना होगा और आप जानते हैं कि पिछले सौ साल में जो महान् पुरुष हिन्दू-धर्म में पैदा हुए, उनमें

के लिए परिपोषक होती हैं। जीवन में एक ही मनुष्य बाप के नाते काम करता है, भाई के नाते काम करता है, बेटे के नाते भी काम करता है। इसी तरह जिनको विविध अनुभव हैं, वे परमेश्वर को भी बाप समझकर बाप के नाते उसकी उपासना कर सकते हैं, भाई के नाते उपासना कर सकते हैं, बेटा समझकर उपासना कर सकते हैं। परमेश्वर की उपासना पिता के रूप में, माता के रूप में कर सकते हैं।

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।"

अब उससे यह नहीं कहा जा सकता कि या तो तुम परमेश्वर को पिता ही कहो या माता ही कहो या फिर बेटा ही कहो। परमेश्वर तीनों एक साथ कैसे हो सकता है—ऐसा कहें, तो जब एक सामान्य मनुष्य भी बाप, बेटा और भाई हो सकता है, तो परमेश्वर वैसा क्यों नहीं हो सकता? इस तरह से परमेश्वर की अनेक तरह से उपासना हो सकती है। इसलिए समन्वय की कल्पना को सर्वोत्तम कल्पना के तौर पर सब धर्म मान्य करते हैं। इस दृष्टि से हम जब इस घटना के विषय में सोचते हैं, तो हम समझ सकेंगे कि इससे समन्वय पर ही प्रहार होता है, और जहाँ समन्वय पर प्रहार होता है, वहाँ सब तरह की उपासनाओं पर भी प्रहार होता है।

पुरी
२३-२-'५५

धाराएँ भी, जो परस्पर-विरुद्ध दिशा में बहती हैं, वे सारी चर्चा में लीन हो सकती हैं और लीन होनी चाहिए। इसलिए अभी जो विचार मैं आपके सामने प्रकट करूँगा, उनके लिए मेरी व्यक्तिगत कितनी भी निष्ठा हो, मेरा आग्रह नहीं। विमर्श के लिए, सोचने के लिए जैसी बातें सूझती हैं, जो आभास होते हैं, वे हम आपके सामने रखेंगे। खैर, इतना तो कार्य सर्वोदय-समाज में होना ही चाहिए। पर उसके अलावा कुछ काम की बातें, जिसमें हम लगे हैं, उसके सिलसिले में भी कुछ विचार रखेंगे।

साम्यवादियों का विचार

हममें से बहुत-से लोग मानते हैं कि समाज के विकास में ऐसा एक मुकाम आ जाना चाहिए, जब कि दण्ड के आधार पर शासन चलाने की जरूरत न रहे। उस तरह का शासन, दण्डाधार-शासन न रहेगा। इस अन्तिम ध्येय को साम्यवादी भी मानते हैं। किन्तु उनका विश्वास है कि उस ध्येय की प्राप्ति के लिए इस समय अधिक-से-अधिक मजबूत केंद्रीय सत्ता होनी चाहिए और उसके आधार पर हम दूसरी सारी अन्यायी सत्ताएँ खण्डित कर सकेंगे। उसके बाद जिस प्रकार काष्ठ को खतम कर ज्वलत अग्नि खुद भी खतम हो जाता है, वैसे लोगों की तरफ से प्रकट हुई यह केन्द्रित सत्ता दूसरी वैसी ही सारी सत्ताओं को हिंसा से—अर्थात् अगर जरूरत पड़ी तो—नष्ट करेगी और फिर स्वयमेव शान्त हो जायगी। उसकी शान्ति के लिए और कुछ करना न पड़ेगा। सिर्फ यही करना पड़ेगा कि उसके खिलाफ जितनी शक्तियाँ हैं, उन सबका खातमा किया जाय। जब यह कार्य हो जायगा, तब उसके लिए अवकाश न रहेगा और वह शक्ति स्वयम् शान्त हो जायगी। यह बिलकुल थोड़े में एक विचार मैंने यहाँ रखा। उसका उन लोगों ने बहुत विस्तार किया है, उसका एक खासा अच्छा शास्त्र भी बनाया है। उसका भी चिन्तन-मनन हमें करना चाहिए।

क्या कांग्रेस अहिंसक रचना में बाधक है ?

इसके अलावा कुछ बीच के लोग हैं, जो मानते हैं कि शासन हर हालत में कुछ-न-कुछ रहेगा। शासन याने दण्डयुक्त शासन। समाज में दण्ड की आव-

संघ' बन जाय। हम सोचते हैं कि उनमें कितनी कुशल बुद्धि थी। अगर वह चीज बनती, तो देश की सबसे बड़ी संस्था 'सेवक-संस्था' होती। अब, जब कि वह हालत नहीं है, तो सोचा जाता है कि सेवा के लिए एक 'भारत-सेवक-समाज' बनाया जाय। भारत-सेवक-समाज सेवा करेगा, लेकिन जिस परिस्थिति में सबसे बड़ी ताकत सत्ताभिमुख है, चुनाव-प्रधान है, उस परिस्थिति में भारत सेवक-समाज' को बहुत ज्यादा बल नहीं मिल सकता। वह गौण ही रहेगा। सेवा करनेवाली गौण संस्थाएँ हिंसक समाज में भी होती हैं, क्योंकि चाहे समाज हिंसाश्रित हो, चाहे अहिंसाश्रित हो, जहाँ समाज का नाम लिया जाता है, वहाँ सेवा की जरूरत प्रत्यक्षतः होती है। इसलिए उस समाज में भी सेवाएँ चलती हैं, सेवा करनेवाली संस्थाएँ होती हैं। लेकिन अहिंसक समाज में सबसे बड़ी सस्था वह होनी चाहिए, जो 'सेवामय' हो। 'सेवा-प्रधान' कहने से भी मेरा समाधान नहीं हुआ, इसलिए मैंने 'जो सेवामय हो', ऐसा कहा।

लोक-सेवक-संघ

दूसरी बात, लोक-सेवक-सघ की जो कल्पना थी, उसमें सत्ता पर सत्ता चलाने की बात थी। एक सत्ता रहती, जो आज की आवश्यकता के मुताबिक राज्य-शासन करती। उसके हाथ में दंड होता और उसके हाथ में दंड देकर बाकी का सारा समाज दड-रहित बनता। पर चूँकि वह भी दंड-सत्ता हाथ मे रखनेवाली संस्था होती, इसलिए उस पर भी उससे अलिप्त रहनेवाले समाज की सत्ता रहती। याने सेवा सार्वभौम होती और सत्ता सेविका बनती, सत्ता का नियन्त्रण करने की शक्ति उस समाज में रहती। लोग उसका आशीर्वाद प्राप्त करके ही चुनाव में खड़े होते और समाज सेवा देखकर सज्जनों का चुनाव करता। इस तरह सारी बात बन-जाती। लेकिन कई कारणों से वह चीज नहीं हुई और कांग्रेस प्रधानतः 'इलेक्श-नियरिंग बॉडी' (चुनाव करनेवाली संस्था) रही। परिणाम यह हुआ, जैसा कि मैंने विनोद में कहा था, सारे समाज में भूत, भविष्य और वर्तमान, तीनों कालों का परिवर्तन 'इलेक्शन-पीरियड', 'प्रि-इलेक्शन-पीरियड' और 'पोस्ट-इलेक्शन-पीरियड' में होने लगा। याने कुल कालात्मा इन तीनों कालों में समाप्त हो गया।

हर हालत में हमारी सेवा का गौरव करेगी। इस वास्ते छोटी-छोटी सेवा-संस्थाएँ बनाना हमारे लिए कठिन नहीं था। किन्तु हम पर यह जिम्मेवारी डाली गयी कि हम लोग सेवा की संस्था न बनायें, वरन् ऐसी संस्था बनायें, जो सेवा भी करे और सेवा के जरिये राज्य-तंत्र पर सत्ता चलाने की शक्ति भी हासिल करे। सचमुच यह बड़ी भारी कठिन जिम्मेवारी हम पर डाली गयी। परमेश्वर सहायता करेगा, तो उसे भी छोटे, निकम्मे औजारों के जरिये वह सफल बनायेगा। वह उसकी मर्जी की बात है, लेकिन काम दुश्वार है।

सच्ची ताकत कहाँ ?

इस हालत में, हमारे जो मित्र इधर-उधर भिन्न-भिन्न राजनैतिक संस्थाओं में हैं, उन पर यह जिम्मेवारी आती है कि वे हम लोगों को कृपा कर थोड़ी मदद दें। वे यह मदद दें कि जहाँ बैठे हैं, वहाँ सेवा किस तरह ऊपर उठे, इस बारे में प्रयत्न करें। चाहे वे प्रजा-समाजवादी पक्ष में हों या कांग्रेस में या और भी किसी राजनैतिक संस्था में हों, वहाँ वे इस बात के लिए पूरी कोशिश करें कि चुनाव के जंजाल से भी अलग रहनेवाली संस्था खड़ी हो। एक संस्था के अन्दर अनेक ग्रूप पैदा होते हैं, तो वह राजनीति में बड़ी खतरनाक बात मानी जाती है। किन्तु मैं उन्हें यह नहीं सुझा रहा हूँ कि वे राजनैतिक क्षेत्र में काम करनेवाली अपनी-अपनी संस्थाओं के अन्दर दूसरे-तीसरे ग्रूप बनायें। ऐसी कोई सिफारिश मैं नहीं कर रहा हूँ। मैं नहीं चाहता कि इनमें से किसीकी ताकत टूटे, जिसे कि वे ताकत समझते हैं ! जब वे ही महसूस करेंगे कि जिसको हम ताकत समझते थे, वह ताकत नहीं थी, तब तो वे खुद उसका परित्याग करेंगे। उस हालत में उन्हें सच्ची ताकत हासिल होगी। लेकिन जब तक उस ताकत के बारे में उनको भास है, तब तक उनकी ताकत किसी प्रकार से टूटे, ऐसी हम इच्छा नहीं करते। किन्तु हम यही सुझाते हैं कि भिन्न-भिन्न संस्थाओं के हमारे भाई यह कोशिश करें कि जिसे वे अहिंसात्मक, रचनात्मक कार्य समझते हैं, वे उन संस्थाओं में प्रधान हों और दूसरी बातें गौण हो जायें।

चुनाव को कितना भी महत्त्व क्यों न दिया जाय, आखिर यह ऐसी चीज नहीं

हर हालत में हमारी सेवा का गौरव करेगी। इस वास्ते छोटी-छोटी सेवा-संस्थाएँ बनाना हमारे लिए कठिन नहीं था। किन्तु हम पर यह जिम्मेवारी डाली गयी कि हम लोग सेवा की संस्था न बनायें, वरन् ऐसी संस्था बनायें, जो सेवा भी करे और सेवा के जरिये राज्य-तंत्र पर सत्ता चलाने की शक्ति भी हासिल करे। सचमुच यह बड़ी भारी कठिन जिम्मेवारी हम पर डाली गयी। परमेश्वर सहायता करेगा, तो उसे भी छोटे, निकम्मे औजारों के जरिये वह सफल बनायेगा। वह उसकी मर्जी की बात है, लेकिन काम दुश्वार है।

सच्ची ताकत कहाँ ?

इस हालत में, हमारे जो मित्र इधर-उधर भिन्न-भिन्न राजनैतिक संस्थाओं में हैं, उन पर यह जिम्मेवारी आती है कि वे हम लोगों को कृपा कर थोड़ी मदद दें। वे यह मदद दें कि जहाँ बैठे हैं, वहाँ सेवा किस तरह ऊपर उठे, इस बारे में प्रयत्न करें। चाहे वे प्रजा-समाजवादी पक्ष में हों या कांग्रेस में या और भी किसी राजनैतिक संस्था में हों, वहाँ वे इस बात के लिए पूरी कोशिश करें कि चुनाव के जंजाल से भी अलग रहनेवाली संस्था खड़ी हो। एक संस्था के अन्दर अनेक ग्रुप पैदा होते हैं, तो वह राजनीति में बड़ी खतरनाक बात मानी जाती है। किन्तु मैं उन्हें यह नहीं सुझा रहा हूँ कि वे राजनैतिक क्षेत्र में काम करनेवाली अपनी-अपनी संस्थाओं के अन्दर दूसरे-तीसरे ग्रुप बनायें। ऐसी कोई सिफारिश मैं नहीं कर रहा हूँ। मैं नहीं चाहता कि इनमें से किसीकी ताकत टूटे, जिसे कि वे ताकत समझते हैं! जब वे ही महसूस करेंगे कि जिसको हम ताकत समझते थे, वह ताकत नहीं थी, तब तो वे खुद उसका परित्याग करेंगे। उस हालत में उन्हें सच्ची ताकत हासिल होगी। लेकिन जब तक उस ताकत के बारे में उनको भास है, तब तक उनकी ताकत किसी प्रकार से टूटे, ऐसी हम इच्छा नहीं करते। किन्तु हम यही सुझाते हैं कि भिन्न-भिन्न संस्थाओं के हमारे भाई यह कोशिश करें कि जिसे वे अहिंसात्मक, रचनात्मक कार्य समझते हैं, वे उन संस्थाओं में प्रधान हों और दूसरी बातें गौण हो जायें।

चुनाव को कितना भी महत्त्व क्यों न दिया जाय, आखिर वह ऐसी चीज नहीं

कि उससे समाज के उत्थान में हम कुछ मदद पहुँचा सकें। वह "डेमॉक्रेसी" में खड़ा किया हुआ एक यन्त्र है, एक 'फॉर्मल-डेमॉक्रेसी' (औपचारिक लोकसत्ता) आयी है। वह माँग करती है कि राज्य-कार्य में हर मनुष्य का हिस्सा होना चाहिए। इस लिए हरएक की राय पूछनी चाहिए और मतों की गिनती करनी चाहिए। यह तो हर कोई जानता है कि ऐसी कोई समानता परमेश्वर ने पैदा नहीं की है, जिसके आधार पर एक मनुष्य के लिए जितना एक वोट है, उतना ही वह दूसरे मनुष्य के लिए भी हो, इस बात का हम समर्थन कर सकें। लेकिन यह स्पष्ट बात है कि पण्डित नेहरू को एक वोट है, तो उनके चपरासी को भी एक ही वोट है। इसमें क्या अक्ल है, हम नहीं जानते। मुझे वह शख्स मालूम नहीं, जो यह मुझे समझाये। परन्तु जब मैं इसका अपने मन में समर्थन करता हूँ, तब मुझे बड़ा ही आनंद होता है। वह समर्थन यह है कि उसमें मेरे वेदांत का प्रचार होता है। इसमें आत्मा की समानता मानी गयी है। बुद्धि अलग-अलग है, कम-बेशी है। शरीर-शक्ति कम-बेशी है, और भी शक्तियाँ हरएक की अलग-अलग होती हैं। फिर भी हम हरएक को एक-एक वोट देते हैं। इसका इसी विचार से समर्थन होगा कि इसे माननेवाले लोग वेदांत को मानते हैं। यह बहुत अच्छी बात है। इसी आधार पर हम भी उसका समर्थन करते हैं। हमें बहुत अच्छा लगता है कि एक पत्थर हमें मिल गया, बड़ा अच्छा आधार मिल गया, जिस पर हम साम्ययोगी समाज की स्थापना कर सकते हैं।

मूल्य-परिवर्तन प्रमुख और चुनाव गौण

किन्तु सोचने की बात है कि जहाँ तक व्यवहार का सवाल है, मतों की गिनती कर हम एक राज्य चलाते हैं, तो उसका बहुत ज्यादा महत्त्व नहीं। उसका ऐसा महत्त्व नहीं, जिससे समाज-परिवर्तन हो जाय। समाज में आज लोग क्या चाहते हैं, इसे जान लेने से हमें आगे के परिवर्तन की दिशा सोचने में थोड़ी मदद मिल सकती है। किन्तु उतने से भी समाज के परिवर्तन की प्रक्रिया में कोई मदद पहुँचती हो, सो बात नहीं। इसलिए व्यावहारिक क्षेत्र में चुनाव को कितना भी महत्त्व प्राप्त हो, तो भी जहाँ तक मूल्य-परिवर्तन का सवाल है—और मूल्य-

और उसमें कुछ-न-कुछ जब भी करते हैं, कुछ बोलते भी हैं ! इसलिए जो कुछ किया जायगा, उसमें उसका थोड़ा स्वाद आ ही जायगा और धीरे-धीरे वह बात बनेगी। मुझे लगता है कि अहिंसा की यह व्याख्या अहिंसा के लिए बड़ी खतरनाक और हिंसा के लिए बहुत उपयोगी है। बुद्ध भगवान् ने यह बात हमें स्पष्ट समझायी। उन्होंने कहा : "मन्दं पुण्यं कुर्वतः पापे हि रमते मनः।" अगर हम पुण्य-आचरण आलसी होकर आहिस्ता-आहिस्ता करते हैं, तो पाप शीघ्र, त्वरित गति से बढ़ता है।

अहिंसा में तीव्र संवेग जरूरी

अगर अहिंसा के माने 'कम से-कम वेग से समाज को बहुत ज्यादा तकलीफ दिये बगैर आगे बढ़ते जाना' किया जाय, तो वह अर्थ अहिंसा के हित में नहीं, हिंसा के हित में है। उससे हिंसा बहुत जोरों से बढ़ेगी। जहाँ आप शराबबंदी को कहेंगे : "गो स्लो", वहाँ शराबखोरी जोर से बढ़ेगी। दुर्जनता जोरदार होती है। इसलिए कृपा कर अहिंसा के लिए "गो स्लो" वाली बात लागू मत कीजिये। उसे हिंसा के लिए लागू कीजिये। वहाँ "गो स्लो" बहुत अच्छा है, पर अहिंसा में तीव्र संवेग होना चाहिए। शास्त्र-वाक्य है : "तीव्र संवेगानाम् आसन्नः।" अगर आप अच्छाई को जल्दी से जल्दी, नजदीक-से नजदीक लाना चाहते हैं, तो उसमें तीव्र संवेग होना चाहिए। अगर अहिंसा का अर्थ इतना मृदु, नरम, निर्वीर्य किया जाय, तो उससे विरोधी शक्तियाँ, हिंसक शक्तियाँ हमारे न चाहते बढ़ेंगी, इस बात का भान सारे गांधीजी के अनुयायियों को हो, यह हमारी भगवान् से प्रार्थना है।

राजाजी का सुझाव

राजाजी ने दो-तीन बार एक महान् विचार सारी दुनिया के सामने रखा, जिसे रखने के लिए वे ही समर्थ थे, क्योंकि वे तत्त्वज्ञानी हैं और तत्त्वज्ञानी होते हुए भी राज्य-कार्य-कुशल हैं। जिस प्रकार से तत्त्वज्ञान और राज्य-कार्य-कुशलता, दोनों का संयोग होता है और इसके अलावा जो शब्द-शक्ति के भी ज्ञाता हैं— शब्द का उपयोग किस प्रकार करना चाहिए, इस विषय में भी जो प्रवीण हैं—

ऐसी त्रिविध शक्तियाँ जहाँ एकत्र होती हैं, वही शख्स ऐसा कहने के लिए अधिकारी है। उन्होंने कहा कि 'यूनिलिटरल ऍक्शन' याने एकपक्षीय सज्जनता प्रकट होनी चाहिए। सामनेवाले से यह शर्त कर कि, तू अगर इतना सज्जन बनेगा, तो मैं इतना सज्जन होऊँगा; कोई सज्जन बनता है, तो इस तरह सज्जनता नहीं बढ सकती। सज्जनता तो स्वयमेव बढ़ती है, अपना ही विचार करके। इसीलिए उन्होंने अमेरिका को यह रास्ता सुझाया।

अब अमेरिका के लिए बड़ी मुश्किल हो गयी। अमेरिका की कुल जनता विद्वान् है, क्योंकि हिन्दुस्तान में जितना कागज खपता है, उससे १६० गुना कागज प्रतिव्यक्ति वहाँ खपता है! तो, जहाँ कुल जनता ही विद्वान् है, वहाँ के विद्वानों ने मिलिटरी-कार्य में प्रवीण एक मनुष्य के हाथ मे सारी सत्ता सौंप दी है और कहा है कि फारमोसा के बारे में सब कुछ करने का पूरा अधिकार हमने आपके हाथ मे सौंप दिया है। आपको सर्वाधिकारी बना दिया है। अगर जरूरत हो, तो आपके हाथ मे जो ब्रह्मास्त्र और पाशुपतास्त्र हैं, उनका भी उपयोग आप कर ही सकते हैं। इस तरह सारे विद्वानों का जिस पर इतना विश्वास है, वह शख्स अगर राजाजी की बात माने, तो लोग कहेंगे कि "फिर हम इलेक्शन मे राजाजी को ही क्यों न चुनें ?" बेचारे के लिए बड़ी मुसीबत की बात है। वह क्या करे ? उसको मेण्डेट है, सारी जनता का कि वह उस अक्ल को चलाये, जिसका उन्हें परिचय है और जिसे देख करके ही उसे चुना गया है। अगर वह अक्ल जेब में रख-कर राजाजी की अक्ल कबूल करे, तो उस प्रजा का कितना विश्वासघात होगा ! वह कहेगी कि "अरे, क्या तुझे यह समझकर चुना था कि तू अपना सारा दिमाग राजाजी को अर्पण कर देगा ? तुझे हमने इसीलिए चुना कि तू गये युद्ध में बहा-दुर साबित हुआ और तूने हमे बचाया। तुझे अपना मददगार समझकर हमने सारी दंड-शक्ति तेरे हाथ में सौंपी और तू भलामानुस ऐसे तत्त्वज्ञानी की बातें सुनता है !"

सेना हटाने की शक्ति देश में कैसे आये ?

लेकिन हम अपने मन मे सोचते हैं कि क्या हम दूसरे देशों को इस तरह की सलाह देने के लायक हैं ? मैंने अभी कहा कि राजाजी में त्रिविध शक्ति एकत्र

है। यह हमारे लिए चिन्ता का विषय है, क्योंकि हमने यह नया मन्त्र सीखा और हम इसे दुनिया के लिए तारक-मन्त्र मानते हैं। हम यह भी कहते हैं कि मानव के इतिहासभर में अभी तक जो अनुभव आया, उसके परिणामस्वरूप सामूहिक सत्याग्रह का यह एक मन्त्र मिला। अब इसमें अहिंसा बलवती होगी। लेकिन इन दिनों तो सत्याग्रह शब्द से डर लगने लगा है। लोग यहाँ तक कहते हैं कि "डेमॉक्रेसी" में सत्याग्रह के लिए स्थान नहीं, लोकसत्ता में सत्याग्रह के लिए स्थान नहीं है! पर वास्तव में सत्याग्रह के लिए तो उस सत्ता में स्थान न होगा, जिसमें हर निर्णय "यूनानिमस" या एक राय से ही हो। सबकी सम्मति से निर्णय हो, ऐसी जहाँ समाज-रचना होगी, वहाँ स्वतंत्र सामूहिक सत्याग्रह की जरूरत न होगी। उस समाज में पुत्र के खिलाफ माँ का सत्याग्रह और माँ के खिलाफ पुत्र का सत्याग्रह हो सकता है। एक पड़ोसी के खिलाफ दूसरे पड़ोसी का सत्याग्रह होगा। यहाँ 'खिलाफ' का अर्थ हिंसा के अर्थ में 'खिलाफ' नहीं; बरन वह उसका मददगार होगा। उसके शोधन के लिए प्रेमपूर्वक और त्याग से जो किया जायगा, उसी अर्थ को प्रकट करने के लिए अब भी खिलाफ शब्द का इस्तेमाल किया जाता है। सारांश, पड़ोसी पर विशेष प्रकार से प्यार प्रकट करने के लिए व्यक्तिगत सत्याग्रह पड़ोसी के साथ होगा। किंतु जहाँ समूह का हर फैसला सबकी सम्मति से होगा, उस समाज में सामूहिक सत्याग्रह के लिए गुंजाइश नहीं रहेगी, यह बात समझ में आती है। इसीलिए हम बार-बार कहते हैं कि यह "डेमॉक्रेसी" कुछ दोषमय है। इसमें अहिंसा का माद्दा कुछ ही हद तक आता है, ज्यादा नहीं। इसलिए अपने सारे फैसले सर्व-सम्मति से करने की तैयारी करनी चाहिए।

पर इस विषय में हमारे साथी भी हमसे कहते हैं कि भाई, यह कैसी अव्यावहारिक बात बताते हो? इससे व्यवहार कैसे चलेगा? इस तरह यह वस्तु कुछ नयी-सी है, इस वास्ते इसमें काफी सोचना पड़ेगा। अपना जीवन और दिमाग ऐसा बनाना पड़ेगा, जिससे सर्व सम्मति से काम होते हुए भी वह अग्रसर हो। समाज इसी तरह सोचने लगे। कार्य-हानि न होते हुए सबके साथ कैसे काम किया जाय, यह समाज सीखे, यह सारा करना पड़ेगा। उसमें कुछ मुसीबतें जरूर हैं। लेकिन चूँकि इसमें मुसीबतें हैं, इसलिए

अगर उस पर न सोचेंगे, तो हम समझते हैं, यह नया विचार, नया मत कि "डेमॉक्रेसी में सत्याग्रह के लिए स्थान नहीं", अहिंसा के लिए खतरे का है। इस बारे में हमें निर्णय करना चाहिए।

गांधीजी के जमाने का सत्याग्रह

यह जो सत्याग्रह के लिए भय पैदा होता है, उसका एक कारण यह भी है, जो मैं अभी कहूँगा और वह भी अहिंसा के लिए एक खतरा है। वह यह कि सत्याग्रह की एक अभावात्मक (निगेटिव) व्याख्या मनुष्यों के मन में स्थिर हो गयी है। सत्याग्रह याने अड़गा लगाने का एक प्रकार, दबाव लाने का एक प्रकार, जो बहुत ज्यादा बेजा न कहा जाय। इसका अभी लोगों के मन में इतना ही अर्थ है और इसी कारण कुछ लोगों को इसका आकर्षण भी बहुत ज्यादा है। जैसे सत्याग्रह शब्द का एक डर हम देखते हैं, वैसे ही एक आकर्षण भी। लोग हमसे कहते हैं कि बाबा कब तक जमीन माँगता फिरेगा? आखिर कभी वैष्णवास्त्र भी निकालेगा या नहीं? मान लिया कि ब्रह्मास्त्र, पाशुपतास्त्र आदि हिंसा के हैं। लेकिन वैष्णव का अस्त्र, जो विष्णु का है, वह तो अहिंसा का रामबाण है। तो, बाबा वह भी निकालेंगे या नहीं? लोग ऐसा हमसे बार-बार पूछते हैं। तब उन्हें समझाना पड़ता है कि यह जो चल रहा है, इसमें सत्याग्रह का ही एक रूप प्रकट होता है। हमारे लिए यह सोचने की एक बात है, जिससे हमें अपने कर्तव्य-कार्य की तरफ जाने के लिए बहुत सुभीता होगा। इसलिए इस पर हम जरा सोचते हैं कि गांधीजी के जमाने में किये गये सत्याग्रह को यदि सत्याग्रह का आदर्श समझकर चलें, तो हम गलती करेंगे। उनका एक जमाना था, उनकी एक परिस्थिति थी। उस परिस्थिति में कार्य ही "निगेटिव" (निषेधात्मक) करना था। फिर भी उस कार्य के साथ-साथ उन्होंने सारी रचनात्मक और विधायक प्रवृत्तियाँ जोड़ दीं। यह उनकी प्रतिभा थी, जो उनको यहती थी कि एक निषेध (अभावात्मक) कार्य करते हुए भी अगर हम विधायक वृत्ति न रखें, तो जो वह अभावात्मक (निगेटिव) कार्य सम्पन्न होगा, वहाँ और कई खतरे पैदा होंगे।

लोग उनसे बार-बार पूछते कि चरखा क्यों चलायें, यह हमें जरा समझा दो

दीजिये। अंग्रेजों को यहाँ से भगाना है, तो उसके साथ चरखे का सम्बन्ध कहाँ से आने लगा, समझ में नहीं आता। फिर भी लोग यह समझकर कि गांधीजी के नेतृत्व के साथ स्वराज्य का सम्बन्ध है और इस वास्ते इसे कबूल करो, उसे कबूल करते थे। उन्हें जवाब मिलता था : 'जनता में जाग्रति हुए बगैर, जनता में स्वराज्य की भावना पैदा हुए बगैर काम कैसे चलेगा ? अंग्रेजों पर इसका परिणाम कैसे होगा ? क्या ऐसे ही, केवल हमारे शब्दों से ? इस वास्ते हमें रचनात्मक कार्य से अपने विचार फैलाकर जन-सम्पर्क बढ़ाना चाहिए। इसके कारण जन-सम्पर्क के लिए हमें एक अच्छा-सा मौका मिलता है। उन्हें थोड़ी राहत, मदद भी मिलती है। हमारी उनके साथ सहानुभूति है, इसका दर्शन उन्हें मिलता है और उनकी भी सहानुभूति हमें मिलती है। इस तरह हमारे राजनैतिक कार्य के पीछे एक नैतिक बल खड़ा होता है।' इस तरह उन्हें लोगों को समझाना पड़ता था।

विधायक सत्याग्रह

किन्तु वह जमाना ऐसा था कि उसमें लोगों को अभावात्मक कार्य करना था। इसलिए जो सत्याग्रह उस जमाने में हुए, वे सत्याग्रह के अन्तिम आदर्श थे, ऐसा हमें नहीं समझना चाहिए। हमें यह समझना होगा कि जहाँ लोक-सत्ता आ गयी, वहाँ अगर हम सत्याग्रह का अस्तित्व मानते हैं, तो उसका स्वरूप भी कुछ भिन्न होगा। यह नहीं कि "डेमॉक्रेसी" या लोक-सत्ता में सत्याग्रह के लिए अवकाश ही नहीं ! ऐसा मानना तो बिल्कुल ही गलत विचार है। पर यह भी विचार गलत है कि उस जमाने में जो निगेटिव (अभावात्मक) प्रकार के सत्याग्रह किये गये, उनके लिए डेमॉक्रेसी में बहुत ज्यादा "स्कोप" (गुंजाइश) है और उनका परिणाम लोक-सत्ता में बहुत ज्यादा प्रभावशाली होगा। लोक-सत्ता में जिस सत्याग्रह का प्रभाव पड़ेगा, वह अधिक प्रभावशाली होना चाहिए, अर्थात् अधिक विधायक होना चाहिए। इस दृष्टि से भी हमें अपने आंदोलन की तरफ देखना चाहिए कि भूदान-यज्ञ का कार्य हम जिस तरीके से कर रहे हैं, वह अहिंसा का ही एक तरीका है। परंतु अहिंसा में वही एक तरीका है, सो बात नहीं। दूसरे भी तरीके हैं। इससे भी बलवान् दूसरे तरीके

हमें मिल सकते हैं और उनका हमें इस्तेमाल कर सकते हैं। अगर इस तरीके का हमने पूरा उपयोग कर लिया और इसका नतीजा पूरा देख लिया हो, तो हमें सोचने का मौका मिलेगा।

भूदान में पूरी शक्ति लगायें

आज भूमिदान माँगने, लोगों को समझाने, गरीबों से जमीन लेने, सतत घूमने आदि का हमारा जो सत्याग्रह चल रहा है, वह सारा एक विशाल सत्याग्रह है, रचनात्मक सत्याग्रह है। परन्तु इससे आगे सत्याग्रह का इससे और भी कोई बलवान् स्वरूप प्राप्त हो सकता है या नहीं, इसका संशोधन करने का मौका मिलेगा, अगर इस काम में हम पूर्ण शक्ति लगायें और थोड़े समय में इसका नतीजा क्या आ सकता है, यह देखें। अगर हम इसे न आजमायेंगे, इसमें पूरी ताकत न लगायेंगे, और १९५७ का साल निकल जाय, तो आगे का कदम क्या उठाया जाय, इसका संशोधन करने के लिए हम पात्र ही नहीं रहेंगे। अपात्र साबित होंगे। उस हालत में उसका अर्थ होगा, हमने जो सारा कार्य आरंभ किया, उसे आगे बढ़ाने की शक्यता कम रहेगी। इसलिए हम सब पर यह जिम्मेवारी आयी है कि इस थोड़े समय में अभी अख्तियार किये जानेवाले इस तरीके में पूरी ताकत लगाकर उससे क्या कार्य बनता है, इसका अंदाजा लिया जाय।

मेरा व्यक्तिगत विश्वास है कि यह बहुत ही समर्थ तरीका है। इसमें हम अगर शक्ति लगाते हैं, तो हमारा कार्य निःसंशय, निश्चित मुद्दत में समाप्त हो सकता है। यह मैंने बिहार में देखा और यहाँ उड़ीसा में भी देख रहा हूँ। आश्चर्य की बात है कि यह मैंने बंगाल में भी देखा। लोग कहते थे और आज भी कुछ लोग कहते हैं कि बंगाल में भूदान के लिए गुंजाइश ही नहीं है। वहाँ भूदान की जरूरत ही नहीं है। वहाँ २० एकड़ के एक 'सीलिंग' का कानून हो चुका। उसके बाद इसकी जरूरत ही मिट गयी है। फिर बाबा क्यों नाहक घूमता है ? ऐसा भी सोचनेवाले कुछ लोग वहाँ जरूर हैं और चूँकि वे सत्ता के केन्द्रों में हैं, इसलिए उनके पक्ष में कुछ व्यावहारिक बल है। लेकिन जहाँ तक आम जनता और कार्य-

कर्ताओं का सवाल है, हमने देखा कि वे सारे इसके लिए तैयार हैं और अगर गाँव-गाँव जाकर लोगों को समझानेवाले मिल जायँ, तो हमारा दावा है कि वहाँ भी बिहार का सा भूदान का पूरा चित्र हमारी आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो सकता है। मान लीजिये कि पूरी शक्ति लगाने पर भी वह कार्य न हुआ, तो हम इस लायक और ऐसे समर्थ बनेंगे कि इससे आगे का कदम क्या उठाया जाय, इसका विचार कर सकेंगे। वह विचार हमें सूझेगा। लेकिन अगर हमने पूरी ताकत न लगायी और इस कारण यदि वह कार्य सम्पन्न न हुआ, तो हम यह विचार न कर सकेंगे। विचार हमें न सूझेगा और न हम विचार करने के पात्र ही रहेंगे। या तो यह कार्य पूरी ताकत लगा करके १९५७ के पहले समाप्त होना चाहिए या फिर पूरी ताकत लगाकर १९५७ के पहले अपूर्ण ही साबित होना चाहिए। इन दो में से एक वस्तु होनी ही चाहिए। लेकिन पूर्ण शक्ति न लगाते हुए १९५७ तक अगर हम कार्य करते रहें, तो हमारे हाथ में कोई निर्णायक शक्ति नहीं रहेगी। इसलिए सब भाइयों को आज यह सोचने का मौका आया है कि इस वक्त हमें अपनी बिखरी हुई ताकतें इस काम में लगानी चाहिए या नहीं ?

कुछ लोगों के मन में विचार आता है, और वह भी एक चिंतनीय विचार है, कि आखिर हम यहाँ आये किसलिए ? हम इसीलिए आये कि, जैसा हमने आरम्भ में ही कहा, विरोधी विचार-धाराएँ होने पर भी बहस करें, चर्चा करें। कुरान में कहा है कि भक्तों का यह लक्षण है कि वे आपस आपस में सलाह-मशविरा करते हैं। तो, सलाह-मशविरे के लिए ही हम इकट्ठे हुए हैं। इस वास्ते विचार करने के लिए दूसरा भी पक्ष सामने रखना चाहिए। वह कहता है कि "स्वराज्य के बाद हम ऐसे एकांगी बनेंगे, तो न चलेगा। अगर हम स्वराज्य के पहले एकांगी न बनते, तो काम नहीं चलता; क्योंकि उस समय हमारे सामने एक ही "फ्रण्ट" (मोर्चा) रहना चाहिए था और वह यह कि परकीय सत्ता को यहाँ से हटाना। यही एक वस्तु सामने रहनी चाहिए थी। इसलिए स्वराज्य के पहले सारी शक्ति एकांगी याने एकाग्र बनाना जरूरी था। लेकिन अब, जब कि स्वराज्य हाथ में आया है, उसे चलाना और समाज का सब प्रकार से भला सोचना है, तो सर्वांग विचार होना चाहिए। अगर हम किसी एक अंग में सारी ताकत लगायें,

योजना है, वैसे शहरों को दूध सप्लाय करने की भी यह एक सुव्यवस्थित, वैज्ञानिक, यंत्र-युगानुकूल योजना है। अगर हम इसका विरोध करते हैं, तो फिर हमसे पूछा जायगा कि आप तो ग्रामोद्योगी लोग हैं! हमें ऐसी योजना बता दीजिये कि गाय की कत्ल किये बगैर कलकत्ते को दूध कैसे सप्लाय किया जाय।

अभी एकाग्रता ही जरूरी

लेकिन क्या यह भी कोई योजना है ? यह तो बिल्कुल अचिंतन है, चिंतन ही नहीं है। इस विषय मे चली आयी बात ही चल रही है। लेकिन हमारे सामने लोग ऐसी बात रखते हैं। हमने ऐसे भोले-भाले लोग हैं—जिनको गो-सेवा का थोड़ा ज्ञान भी है—जिन्हें लगता है कि हाँ भाई, अगर यह दिखाने की जिम्मेवारी हम पर आती है; अगर हम दिखायें, तो अच्छा। एक भाई ने कहा कि हमने वर्धा मे थोड़ा दिखा दिया है। पर वर्धा में नहीं, दिल्ली में दिखाना पड़ेगा! हर बात हमें दिल्ली में दिखानी पड़ेगी। इस तरह अगर हम सोचने लगें कि स्वराज्य के ये सब विविध कार्य सोचने की जिम्मेवारी हम पर है, तो इसका मतलब होता है कि हम सर्व-सामान्य सेवा करें। परंतु जिस प्रण से हमने यह कार्य उठाया है, अहिंसा को हम सर्वोपरि बनायेंगे और अहिंसा का राज्य होगा—यह जो हमारी प्रतिज्ञा है, उसके काबिल वह काम न रहेगा। इसलिए हम चिंतन मे व्यापक अवश्य रहें, फिर भी इस समय एक कार्य में एकाग्र होने की जरूरत है। कम-से-कम दो साल के लिए; १९५७ के अंत तक समझ लीजिये।

मालिक के पास जायँ या नौकरों के ?

इस काम में अधिक-से-अधिक ताकत लगाने की जरूरत है, ऐसा हमें लगता है। इस पर भी आप लोगों को सोचना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कि अब पार्लमेंट में, असेम्बली में हमारे लोग हैं। हम कुछ अच्छी बात वहाँ रख सकते हैं और अपनी आवाज सरकार में पहुँचाते है। यद्यपि वे यह भी कहते हैं कि वहाँ हमारी आवाज कुछ ज्यादा कर नहीं पाती। वहाँ कुछ अल्पमत मे हैं, तो कुछ बहुमत में हैं। जो बहुमत में हैं, वे चाबुक के नीचे हैं, इसे अंग्रेजी मे "ह्विप" कहते हैं। और जो अल्पमत मे हैं, वे तो अल्प ही हैं। उनका क्या चलेगा ?

उनके वास्ते चाबुक की भी जरूरत नहीं। उनके लिए चना भी नहीं है, सिर्फ तबेले में ही है। फिर भी दोनों प्रकार के लोग पार्लमेंट में जाकर बोलते तो है ही। किन्तु क्या सरकार इतनी बहरी बन गयी है कि बाहर सभा में कोई बात बोलेगा, तो वह नहीं सुनेगी और पार्लमेंट में जाकर गिरफ्तार होकर सुनेगी? क्या वहाँ बोलेंगे, तभी आवाज सुनेंगे, नहीं तो न सुनेंगे? क्या आप यह समझते हैं कि हम एक काम करते चले जायँ, जन-समूह में पैठें, जनता की ताकत बनती जाय और उस हालत में हम प्रार्थना-सभा या और कहीं व्याख्यान दें, तो उसका जो असर होगा, उससे ज्यादा असर पी० एस० पी० या कांग्रेस में दाखिल होकर पार्लमेंट में जाकर एक व्याख्यान देने से होगा? यह सोचने की जरूरत है कि अपना मत-प्रदर्शन करने के लिए समुचित स्थान कौनसा है? इन नौकरों के पास जाकर हम अपनी कहानी क्या रोयें? उनके मालिकों के पास ही क्यों न पहुँचें? हिन्दुस्तान में आज मालिक है जनता! तो सीधे हम मालिकों के पास ही जायँ और अपनी बात रखें, तो उसका सीधा असर नौकर पर होगा और वह काम कर देगा।

हम वहाँ नौकरों के पास जाते हैं, तो वे कहते हैं कि 'आप कहते तो हैं, लेकिन लोकमत क्या है?' अगर उन्हें हम यह समझाने जायँ कि भाई, खादी के पक्ष में मिलों को बंद करो, तो पूछते हैं, 'लोकमत क्या है? लोकमत अगर वैसा हो, तो हम कर सकते हैं, पर इसके लिए लोकमत अनुकूल नहीं है।' इस तरह हर बात में वे लोकमत की दुहाई देंगे और हमारा आपका विचार अच्छा है, यह भी साथ-साथ कहते जायँगे। अगर वे कहीं हमारे विचार को गलत कहते, तो और भला होता, जरा चर्चा भी चलती। पर जब कहते हैं कि आपका विचार अच्छा है, तो बात खतम हो गयी। जहाँ हमारे विचार को अच्छा बता दिया, वहाँ हमारा मुँह तो बंद हो गया और उनका तो हाथ चलता नहीं। क्योंकि वे कहते हैं कि हमारा हाथ तो ऐसे यंत्र में फँसा है और उस यंत्र को चलाने के लिए तो जनता का हमें मेण्डेट (आदेश) है! तो वहाँ पर हमारी जबान कुंठित हो है। इस वास्ते हमें यही लगता है कि हम लोकमत तैयार करने में ही लग जायँ। हमारी जबान, हमारी बुद्धि, हमारी शक्ति, जो हमारे हाथ की है, सारी, सीधे लोगों के पास पहुँचकर उन्हींको जाग्रत करने में लगानी चाहिए। इसलिए इस वक्त

हमारी माँग है कि इधर-उधर बिखरे हुए हमारे भाई अगर कोई ऐसी कुंजी की जगह हो, जहाँ उन्हें उम्मीद हो कि वहाँ रह करके वे इस काम को बढ़ावा दे सकते हैं, तो भले ही रहें। किंतु जो दूसरे हैं, जिनका हिसाब केवल एक, दो, तीन, चार की गिनती में है, उससे ज्यादा है नहीं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि आप सबकी बुद्धि और शक्ति वहाँ काम न आयेगी। अब अगर इधर देहात में आयेंगे, तो आपका खूब जयजयकार होगा, स्वागत होगा, सम्मान होगा और फूल-मालाएँ भी आपको ज्यादा मिलेंगी। ताकत बढ़ेगी। लोगों का बहुत उत्साह बढ़ेगा। लोग राह देखते हैं कि आप लोग यहाँ आवेंगे, तो कितना अच्छा होगा और वे प्यार से स्वागत करेंगे।

सात्त्विक लोग चुनाव में नहीं पड़ते

कुछ लोगों ने एक नया तरीका निकाला है, वह भी सोचने लायक है। कहते हैं कि सात्त्विक लोग आज के इलेक्शनों में उतना पसंद नहीं करते। अब जब कि सात्त्विक लोग इलेक्शन में भाग लेना पसंद नहीं करते, वह अंदाज लग गया, तो उस पर से सोचने की स्फूर्ति होनी चाहिए कि इसके तरीके को हम कैसे बदलें, जिससे सात्त्विक लोगों को इसमें भाग लेने की प्रेरणा हो। किंतु इस तरह वे नहीं सोचते। वे समझ तो गये हैं कि सात्त्विक लोगों को इलेक्शन में पड़ने की रुचि नहीं होती, पर उसका तरीका बदल नहीं सकते। क्योंकि पश्चिम से वह एक तरीका आया है और जब तक उसके बदले में दूसरा तरीका नहीं सूझता, तब तक वह चालू रहेगा। हाँ, उन्होंने एक बात सोची है। वे मुझे तो नहीं पूछते, लेकिन हमारे साथियों से पूछते हैं कि क्या आप कांग्रेस महासमिति में आना पसंद करेंगे ? यानी हम आपको वह तकलीफ नहीं देते, जो सात्त्विकों को सहन नहीं होती। इलेक्शन में आकर, लोगों के सामने खड़े होकर, चुन आने की तकलीफ से हम आपको बचाना चाहते हैं। लेकिन आप अगर ऑल इंडिया कांग्रेस-कमेटी में दाखिल होना पसंद करें, तो हमारी इच्छा है कि आप वहाँ आइये और अपने सलाह-मशविरे का लाभ हमें दीजियेगा। फिर जब हम पूछते हैं कि 'हमें कांग्रेस-मैन तो बनना नहीं पड़ेगा ? आयेंगे और सलाह देंगे', तो वे कहते हैं, नहीं, कांग्रेस-मैन तो होना पड़ेगा; दस रुपया दक्षिणा भी देनी पड़ेगी !

यह मोह-चक्र

ये हमारे मित्र ही हैं, जो इस तरह से करते हैं। पर हम उन्हें समझाते हैं कि इसमें आप क्या भलाई देखते हैं ? अगर इसमें भलाई हो, तो हम कबूल करने को राजी हैं। इधर तो यह हालत होती है कि ये लोग हमेशा डरते ही रहते हैं। उनका प्रतिपक्षी जब दुर्बल होता है, तब भी डरते हैं और वह बलवान् होता है, तब तो वे डरते ही हैं। कहते तो हैं कि लोकशाही के लिए एक अच्छा-सा विरोधी पक्ष भी होना चाहिए। पर वह पक्ष कमजोर हो जाय, तो डरते हैं और बलवान् हो जाय, तो भी डरते हैं। इस "डेमॉक्रेसी" ने हमारा दिमाग इतना कमजोर बना दिया है कि वह कुछ सोच ही नहीं सकता, फेर में पड़ गया है। अगर आपको यह डर महसूस होता है, तो विरोधी पक्ष के लोग अपना दिमाग बदले बिना ही आपके पास आ जायँ, तो क्या वह आपके या समाज के लिए अनुकूल है, इसे जरा आप सोचें। हम समझते हैं कि यह एक ऐसा तरीका है, जिससे सात्त्विक लोग निःसत्त्व बनेंगे। सात्त्विक लोगों में यह हिम्मत होनी चाहिए कि सत्त्वगुण का प्रभाव हम ऐसा बढ़ायेंगे कि इलेक्शन पर उसका असर होगा और वह दूसरा ही रूप लेगा। या तो उनमें यह हिम्मत होनी चाहिए कि हम इस इलेक्शन को खतम ही कर देंगे और हमें उसमें जाने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी या फिर जो-जो चुनकर आयेंगे, उन पर हमारा असर रहेगा। इन दो में से एक की भी हिम्मत न हो और कोई हमें कृपा करके कहे कि आप ऑल इण्डिया कांग्रेस-कमेटी में आइये, हम आपको लेने के लिए राजी हैं; और हम भी जाना चाहें, तो हम समझते हैं, हम कुछ मोह-चक्र में हैं।

कोई भी पक्ष कमजोर न बने

यह बिलकुल खुले विचार आज हम आपके सामने रखना चाहते हैं। इसके साथ यह भी कहना चाहते हैं कि हमारे विचार के लिए हम बिलकुल आग्रह नहीं रखते। पी० एस० पी० में हमारे मित्र हैं, कांग्रेस और रचनात्मक संस्थाओं में भी हमारे मित्र हैं। हमारी हालत इसलिए मुश्किल हो जाती है कि जो हमारी दुश्मनी करना चाहते हैं, वे भी हमारे मित्र हैं ! कुल दुनिया ही मित्रों से भरी है। इस वास्ते

हमारा मामला और कठिन हो जाता है। किन्तु वह आसान भी होता है, इसलिए कि हम खुले दिल से विचार रखते हैं और हमें आग्रह तो है नहीं। इसलिए चर्चा के वास्ते एक मसाला मिल जाता है। आप इस पर भी चर्चा कीजिये कि हमारी स्थिति क्या होनी चाहिए ? हमने आरंभ में ही कहा है कि किसी भी राजनैतिक पक्ष का, जो कि लोकशाही में विश्वास मानता हो, हिंदुस्तान में जब तक अपना विचार कायम है, तब तक वह कमजोर बने, इसमें देश का भला नहीं है। किन्तु अगर कांग्रेसवाले परिवर्तित हो जायें, उनके विचार उन्हें गलत मालूम पड़ें और इसी कारण उनका पक्ष टूट जाय, तो उसमें देश का नुकसान नहीं है। अगर पी० एस० पी० के लोग अपने विचार को गलत समझें और उसी कारण उनका पक्ष टूट जाय, तो उसमें भी देश का नुकसान नहीं है। लेकिन ये दोनों पक्ष या डेमॉक्रेसी माननेवाले और भी कोई पक्ष अपने विचार मानते रहें और कमजोर पड़ें, इसमें देश का हित है, ऐसा हम नहीं समझते। वे बलवान् बने रहें, इसीमें उनका हित है, ऐसा हमारा मानना है। तो, किसीको इस अर्थ में हम कमजोर नहीं बनाना चाहते।

विनोबा के कांग्रेसी बनने में किसीका भला नहीं

लेकिन हम यह पूछना चाहते हैं कि हम कमजोर पड़ें, इसमें भी क्या किसीका हित है ? मान लीजिये कि कल विनोबा राजी हो जाय और कहे कि ठीक है, मैं कांग्रेस-मैन बनता हूँ। कांग्रेस-मैन बनने में बहुत ज्यादा खोने का तो कुछ नहीं है। उसमें इतना ही सवाल आता है कि अपना जो कुछ विश्वास है, 'उसे एक हद तक वहाँ अवकाश है, एक हद तक नहीं। जिस हद तक नहीं है, उसकी उपेक्षा कर, 'है उतना ही ठीक' समझकर मनुष्य वहाँ जा सकता है।' हम जानते हैं कि कांग्रेस में भी सज्जनों की संगति मिल सकती है। जैसा कि शंकररावजी ने कहा, यहाँ एक सत्संग है, वैसे वहाँ भी बहुत सज्जन लोग हैं और वे वहाँ इकट्ठे होते हैं, तो वहाँ भी सत्संगति का लाभ मिल सकता है। कांग्रेस में, प्रजा-समाजवादियों में बहुत-से ऐसे सज्जन हैं। उनमें कुछ अंश ऐसा है, जो हमें मंजूर है और कुछ ऐसा भी है, जो हमें मंजूर नहीं। जो अंश हमें नामंजूर है, उसकी

उपेक्षा कर और जितना मंजूर है, उसी तरफ ध्यान देकर व्यावहारिक बुद्धि से मान लीजिये, हम कांग्रेस-मैन बन जायँ, तो इसमें कांग्रेस का भला है क्या, यह सोचने की बात है। हम समझते हैं कि इसमें कांग्रेस का भला न होगा। कांग्रेस की बात अलग रखिये, इसमें देश का भी भला नहीं, किसीका भी भला नहीं, ऐसा हम समझते हैं। भिन्न-भिन्न विचार के लोग अपने-अपने विचार में कमजोर पड़ें, इसमें किसीका भला नहीं, यह समझ लेना चाहिए। यह मुख्य वस्तु ध्यान में रख करके हम सोचें।

तो, हमारे जो लोग भिन्न-भिन्न पक्षों में बँटे और भिन्न-भिन्न स्थानों में हैं, उन्हें समझना चाहिए कि अब मौका आया है, जब कि हमें इस काम में योग देना चाहिए। क्योंकि उधर रहते हुए अगर ऐसी सेवा होती है, जिससे इस काम को खूब बढ़ावा मिलता है, तब तो उस स्थान में भले ही वे रहें। तब उनके विश्वास में वहाँ बाधा नहीं आती। परन्तु उन्हें अगर यह महसूस हो कि वहाँ जो सेवा आज होती है, जो इतनी प्रतिष्ठित नहीं है, जितनी इसमें आने से होगी, तो हमारी सबके सामने माँग है कि इसमें आप आ जाइये और हमें जरा मदद दीजिये। सब मिलकर जोर लगायेंगे और सन् '५७ तक पूरा प्रयत्न करके देखेंगे।

सूतांजलि की माँग

मुझे जो कहना था, वह कह दिया। एक ही बात अब जोड़ूँगा और वह एक छोटी-सी चीज है। हर साल बार-बार हम उसे दुहराते हैं। इस साल भी उसे दुहराना चाहते हैं। गांधीजी ने मीराबाई का एक भजन कहा था, "काचे तांतणे रे मने हरिए रे बांधी जेम ताणे तेम रहिये रे।" एक कच्चा धागा है, उस कच्चे धागे में मुझे बाँधा है और वह इतना मजबूत है कि उसके बल से भगवान् मुझे खींचता है, उस पर मैं खिंच जाती हूँ, ऐसा मीराबाई कहती हैं। गांधीजी ने कहा था कि देश के सामने एक ऐसी उपासना चाहिए कि देश के लिए बच्चा-बच्चा कहे कि हम कुछ तो करते हैं। छोटा बच्चा भी कहे कि देश के वास्ते मैंने कुछ किया और फिर भोजन किया, ऐसी कोई राष्ट्रीय उपासना चाहिए। धार्मिक, सांप्रदायिक उपासनाएँ तो होती हैं, जो भेद पैदा करती हैं। पर सारे राष्ट्र में अभेद

पैदा करनेवाली एक उपासना होनी चाहिए। इसका विचार कर उन्होंने कातने की उपासना हमें बतायी। वह इतनी आसान चीज है कि किशोरलालभाई जैसा मनुष्य भी, जो रोज सुबह समझता था कि शाम तक शायद मर जाऊँगा और ऐसी हालत में जिसके बीसों-पचीसों साल बीते, कुछ-न-कुछ पैदावार करता गया, उत्पादन करता गया। मेरा ख्याल है कि अपने कपड़े के लिए वे काफी सूत कातते होंगे। तो, ऐसे कमजोर, बीमार मनुष्य भी उत्पादक बने, ऐसा एक सुन्दर औजार उन्होंने हमारे सामने रखा और कहा कि यही राष्ट्रीय उपासना चले।

हमने भी गांधीजी की स्मृति में—यह एक निमित्त है—६४० तार की एक गुंडी, एक लच्छी हरएक से माँगी। अब इसका प्रचार आप सब लोग क्यों न करें, जरा इस पर सोचिये। पार्लमेंट के इतने मेम्बर हैं, वे हमें एक-एक गुंडी क्यों नहीं देते ? अगर यह बात है कि वे इसे मानते ही नहीं, शरीर-परिश्रम का तिरस्कार ही करते हैं, इस विचार को गलत समझते हैं, तो फिर वे न दें। किन्तु अगर इस विचार को वे गलत नहीं समझते, तो कुल मेम्बरों से क्यों न हमें एक-एक लच्छी मिले ? और सारे देश में हम ऐसा वातावरण क्यों न फैला दें ? छोटी-सी बात है यह, पर बहुत शक्तिशाली, ऐसा हमें लगता है। इसलिए हमारी प्रार्थना है कि आप सब लोग इस बात को फैलायें। भिन्न-भिन्न पक्षों में जितने हमारे लोग हैं, सब अपने-अपने पक्षवालों को समझायें कि वे इस बात को क्यों नहीं उठाते ? इसमें क्या गलती या दोष है ? अगर सारे पक्षवाले एक-एक गुण्डी गांधीजी की स्मृति में सबको दिया करें, तो देश में एक भावना पैदा होगी, जिससे बड़ा लाभ मिलेगा।

तुकाराम का एक वचन है। परमेश्वर को संबोधित करके वह कहता है, "तेरे नाम की महिमा तू नहीं जानता, हम जानते हैं।" वैसे ही साहित्यिकों की महिमा साहित्यिक नहीं जानते। जो अपने लिए अभिमान रखनेवाले साहित्यिक होते हैं, वे साहित्य का भी अभिमान तो रखते होंगे, परंतु उसकी महिमा नहीं जानते। वे यदि साहित्य की महिमा जानते होते, तो अभिमान न रखते। साहित्य की महिमा विशाल है। मुझे साहित्य की महिमा का भान इसलिए है कि मैं साहित्यिक नहीं हूँ। साहित्यिक न होनेभर से उसकी महिमा का भान होता है, ऐसी बात नहीं। एक अवसर होता है। किसीको हासिल होता है, किसीको नहीं हासिल होता। मुझे वह अवसर हासिल हुआ—अनेक भाषाओं के साहित्य का आस्वादन करने का। हरएक भाषा का जो विशेष साहित्य है, वही मेरे पढ़ने में आया है। उसका असर भी मुझ पर बहुत हुआ है। इसलिए बेनीपुरीजी ने बिहार में जो बात कही—जहाँ मैं जाऊँ, वहाँ के साहित्यिकों को बुलाने की—वह मुझे सहज ही हृदयग्राह्य हुई।

साहित्य यानी अहिंसा

मैं अपने मन में जब साहित्य की व्याख्या करने जाता हूँ और व्याख्या करने का मुझे शौक भी है, तब उसकी व्याख्या करता हूँ: "साहित्य यानी अहिंसा।" अब यह सुनकर लोग कहेंगे कि यह तो सनकी है, हर जगह अहिंसा लाता है। परन्तु साहित्यकारों ने भी उसकी व्याख्या की है कि सर्वोत्तम साहित्य 'सूचक' होता है। "सूचक साहित्य" को सर्वोत्तम क्यों माना जाता है? इसलिए कि वह सुननेवालों पर आक्रमण नहीं करता। किसी पर अगर उपदेश का प्रहार होने लगे, तो यद्यपि वह उपदेश हितकर हो, फिर भी उसका स्पर्श शीतल नहीं होता। बचपन में हम ईसप की नीति-कथाएँ पढ़ते थे, तो उनका तात्पर्य नीचे लिखा हुआ होता

था। तात्पर्य यानी न पढ़ने का अंश, ऐसा हम समझते थे। कथा का तात्पर्य अगर चन्द शब्दों में लिखा जा सका, तो मैं समझूँगा कि कथा लिखनेवाले में कोई कला नहीं है। अभी बेनीपुरीजी ने कहा कि 'भूदान-यज्ञ शब्द किसके साहित्य में कितनी दफा आया, इस पर से लोग हिसाब लगाते हैं कि यह साहित्य भूदान-यज्ञ का सहायक है या नहीं ?' इसके साहित्य में पचास बार भूदान शब्द आया, उसके साहित्य में पाँच सौ बार आया, ऐसी सूची बनाते हैं और गिनती करते हैं।

साहित्य-बोध का अर्थ

उत्तम कृति का लक्षण यही है कि जैसे रामचन्द्र को देखने पर अनेक लोगों ने अनेक कल्पनाएँ अपनी-अपनी भावना के अनुसार कीं, वैसे ही जिस बोध से अनेकविध तात्पर्य निकलते हैं, वही साहित्य-बोध है। कानून की किताब में इससे बिल्कुल उल्टी बात होती है। एक वाक्य में से एक ही अर्थ निकलना चाहिए, दूसरा नहीं निकलना चाहिए। अगर एक वाक्य से दो अर्थ निकले, तो वकीलों की कमबख्ती आ जाती है। पर साहित्य की प्रकृति इससे बिल्कुल उल्टी होती है। गीता उत्तम साहित्य है, रामायण उत्तम साहित्य है; क्योंकि उनके तात्पर्य के विषय में मतभेद है। जिस साहित्य के तात्पर्य के विषय में मतभेद न हो और तात्पर्य निश्चित कहा जा सके, उसमें साहित्य-शक्ति कम प्रकट होती है।

प्रसिद्ध ऋषि-वाक्य है : 'परोक्षप्रियाः इव हि देवाः, प्रत्यक्षद्विषः।' देव परोक्ष-प्रिय होते हैं। उन्हें परोक्षवाणी पसन्द आती है, प्रत्यक्षवाणी पसन्द नहीं आती। इसका मर्म भी यही है कि प्रत्यक्ष उपदेश में कुछ चुभने का माद्दा होता है। वाल्मीकि की रामायण जब हम पढ़ते हैं, तो उसमें बहुत ज्यादा उपदेश के वचन नहीं आते; कथा-गंगा बहती जाती है, मनुष्य उसके साथ-साथ बहता जाता है। अनेक मनुष्यों को अनेकविध तात्पर्य हासिल होते हैं और एक ही मनुष्य को समयानुसार अनेकविध तात्पर्य हासिल होते हैं। साहित्य की विशेषता इस विविधता में है। इसलिए जब हम साहित्यिकों से कुछ अपेक्षा रखते हैं, तो इसका मतलब यह नहीं कि वे अपनी विशेषताओं को छोड़कर हमारा काम करें। उनकी विशेषता यही है कि साहित्य से विविध बोध मिलते हैं।

वाल्मीकि की प्रेरणा

ईश्वर के प्रेम के बारे मे भक्तजन कहते है कि वह प्रेम अहेतुक होता है, उसमें हेतु नहीं होता। प्रेम करना ईश्वर का स्वभाव है। वैसे ही साहित्य मे भी कोई हेतु नहीं होता। साहित्य एक स्वयंभू वस्तु है। लेकिन हेतु रखने से जो नहीं सध सकता, वह साहित्य मे बिना हेतु रखकर सधता है, यह साहित्य की खूबी है। गीता भी मुझे इसीलिए प्यारी है कि वह हेतु न रखना सिखाती है। वह एक ऐसा ग्रन्थ है, जो यहाँ तक कहने का साहस करता है कि निष्फल कार्य करो। निष्फल कार्य की प्रेरणा देनेवाला ऐसा दूसरा ग्रंथ दुनिया मे मैंने नहीं देखा। साथ-ही-साथ वह (गीता) जानती है कि जिसने फल की आशा छोड़ी, उसे अनंत फल हासिल होता है। वाल्मीकि-रामायण के आरंभ की ऐसी ही कहानी है। 'शोकः श्लोकत्वमागतः। यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः'—क्रौंच-मिथुन का वियोग वाल्मीकि को सहन नहीं हुआ, शोक हुआ और उसकी वाणी से सहज ही श्लोक निकल पड़ा। उसे मालूम भी नहीं था कि उसका शोक श्लोकाकार बना। बाद में नारद ने आकर कहा कि 'तेरे मुँह मे यह श्लोक निकला है। इसी अनुष्टुप् छंद में रामायण गाओ।' फिर सारी रामायण अनुष्टुप् छंद मे गायी गयी; सहानुभूति की प्रेरणा मे काव्य पैदा हुआ और शोक का श्लोक बना।

शम और श्रम का संयोग

मैंने साहित्य की जो व्याख्या की, उसमें भी यही विशेषता है। साहित्य मे ऐसी शक्ति है कि उससे श्रम का शम बन जाता है। बिना श्रम के कोई भी महत्त्व की चीज नहीं बनती, लेकिन साहित्य में श्रम को शम का रूप आता है। दूसरी चीजों मे मनुष्य को आराम की भी आवश्यकता होती है। वहाँ श्रम और आराम परस्पर-विरोधी होते है। मनुष्य श्रम से थकता है, तो उसके बाद आराम लेता है और आराम से थकता है—आराम की भी थकान होती है—तो उसके बाद फिर श्रम करने लगता है। लेकिन साहित्य की यह खूबी है कि उसमें श्रम के साथ-साथ शम चलता है। चौबीसों घंटे काम और चौबीसों घंटे आराम, यह है [illegible] की खूबी। साहित्य का कोई बोझ नहीं होता चित्त पर।

साहित्य की सर्वोत्तम संज्ञा

साहित्य की सर्वोत्तम संज्ञा, उसका सर्वोत्तम संकेत मुझे आकाश में दीखता है। आकाश-दर्शन को किसीको कभी थकान नहीं होती। खुला आसमान निरंतर आपकी आँख के सामने होता है, फिर भी आँख थक गयी, ऐसा कभी मालूम नहीं होता। आकाश के समान व्यापक, अविरोधी और गति देनेवाला होता है साहित्य। फिर भी ठोस भरा हुआ। यह भी आकश का ही वर्णन है। ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ आकाश न हो। जहाँ कोई ठोस वस्तु नहीं है, वहाँ भी आकाश है और जहाँ ठोस वस्तु है, वहाँ भी आकाश है। ठोस वस्तु नापने का वही मापक है। ट्रेन में जब हम बैठने जाते हैं, तो भीतर के पैसेंजर कहते हैं, यहाँ जगह नहीं है। इसका मतलब यह होता है कि यहाँ जगह तो है, परंतु वह व्याप्त है। आकाश ऐसी व्यापक वस्तु है। जहाँ कोई चीज नहीं है, वहाँ भी वह है और जहाँ कोई चीज है, वहाँ भी वह है। साहित्य का स्वरूप भी आकाश के जैसा ही व्यापक है। इसलिए आकाश ही साहित्य की सर्वोत्तम संज्ञा है।

साहित्य-सेवन की थकान नहीं आनी चाहिए। हम सुन्दर-मधुर संगीत सुनते हैं, तो 'अब बस !' नहीं कहते। जहाँ 'अब बस' आ गया, वहाँ समझना चाहिए कि वह चीज मनुष्य को थकान देनेवाली है। साहित्य के लिए भी जहाँ 'अब बस' आ गया, वहाँ समझना चाहिए कि साहित्य की शक्ति कम है, वह पूरी प्रकट नहीं हुई है।

बहुत-से लोगों को खुशबू बहुत अच्छी मालूम होती है और बदबू तकलीफ देती है। परंतु मुझे खुशबू की भी तकलीफ होती है। कोई बू ही अगर न रहे, तो चित्त प्रसन्न रहता है। यह बात बहुतों को विचित्र-सी लगेगी; परन्तु जिस बगीचे में खूब सारे सुगन्धी पुष्प होते हैं, वहाँ पर कुछ क्लोरोफार्म जैसा इफेक्ट, असर होता है, चिन्तन अस्पष्ट हो जाता है, मन्द पड़ जाता है। ब्रेन को, दिमाग को थकान आती है। खुशबू के परमाणु नाक के अन्दर चले जाते हैं। उस जगह जो पर्दा होता है, वह ब्रेन के साथ जुड़ा हुआ होता है। वहाँ पर वे बैठ जाते हैं, तो उनके स्पर्श से चिन्तन में एक प्रकार की मन्दता आ

स्वल्पाक्षर साहित्यिक

उत्तम साहित्यिक शब्द-स्वल्पाक्षर होते हैं। बहुत पानी डालकर फैलाये हुए नहीं होते। स्वल्पाक्षर होते हैं, याने थोड़े में अधिक सूचकता होती है और उनमें अनाक्रमणशीलता होती है, जिससे सहज ही बोध मिले। व्यक्ति बोध लेना चाहे, तो ले सकता है और न लेना चाहे, तो नहीं भी ले सकता है। हर वक्त बोध लेना पड़े तो मुश्किल होगी, इसलिए जब बोध लेना चाहे, तभी ले सकता है। समयानुकूल बोध मिले और बोध न भी मिले, तो भी जो प्रिय हो, वही अच्छा साहित्य है।

कवि की व्याख्या

एक दफा मैं बहुत बीमार था। कभी-कभी रामजी का नाम लेता था, कभी माँ का। अब मेरी माँ तो उस समय जिन्दा नहीं थी। मैं मन में सोचने लगा कि उस माँ का मुझे क्या उपयोग है, जो जिन्दा नहीं है और मुझे कितनी भी तकलीफ क्यों न हो, उसे मिटाने के लिए नहीं आ सकती। फिर भी मैंने उस शब्द का उपयोग किया। माँ के मरने पर भी 'माँ' शब्द के उच्चारण से उसके पुत्र को बीमारी में प्रसन्नता होती है और उस शब्द से ही उसे अपना अभीष्ट प्राप्त हो जाता है। यह ऐसा शब्द है, जिसमें काव्य की सीमा होती है।

ऐसे शब्द हमारे देश में, हमारी भाषाओं में बहुत हैं। इसलिए यहाँ लोग अनिच्छा से भी कवि बनते हैं। वे शब्द ही ऐसे होते हैं, जो अनेकविध प्रेरणा देते हैं। इसलिए मनुष्य चाहे या न चाहे, वह कवि बन जाता है। मेरा खयाल है कि भारतीय भाषाओं में जितनी काव्य-शक्ति है, उसकी तुलना में दुनिया की दूसरी भाषाओं में कम है। हाँ, अरबी और लैटिन में है। संस्कृत में यह सामर्थ्य बहुत ज्यादा है, क्योंकि वह भाषा काफी प्राचीनकाल में निर्माण हुई है। इसलिए मनुष्य आज जिस तरह स्पष्ट रूप में सोचता है, वैसा उस समय नहीं सोचता था, अस्पष्ट रूप में सोचता था। जहाँ मनुष्य अस्पष्ट रूप में सोचता है, वहाँ बहुत ज्यादा सोचता है। जहाँ स्पष्ट सोचता है, वहाँ विशिष्टता आ जाती है और व्यापकता कम हो जाती है, जैसे स्वप्न में स्पष्टता नहीं होती। परंतु स्वप्न में जो विविधता

होती है, वह दुनिया में जो विविधता है, उससे भी ज्यादा होती है। सृष्टि में जो है, वह सब स्वप्न में है और सृष्टि में जो नहीं है, वह भी स्वप्न में है। स्वप्न के पेट में जाग्रति होती है। कवि की सारी सृष्टि स्वप्नमय होती है। उसका चिंतन सूक्ष्म, अव्यक्त और अस्पष्ट होता है।

व्यावहारिक भाषा में कवि याने मूर्ख। कुरान में भी मुहम्मद पैगम्बर कई दफा बोले हैं, 'मैं कवि थोड़ा ही हूँ!' मेरी समझ में नहीं आता था कि उन्होंने ऐसा क्यों कहा होगा। फिर एक जगह उनका एक वचन मिला कि 'मैं कवि थोड़ा ही हूँ, जो बोले एक और करे एक!' कहा जाता है कि कुरान में बहुत काव्य है। अरबी साहित्य में उसे साहित्य की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक माना जाता है। यह कोई केवल काल्पनिक गौरव की बात नहीं है। कुरान धार्मिक पुस्तक है, इसलिए ऐसा कहा होगा, सो बात नहीं। आधुनिक अरबी साहित्य को कुरान से सारी स्फूर्ति मिलती है। इतना होने पर भी उन्होंने कहा कि 'मैं कवि थोड़ा ही हूँ, जो बोले एक और करे एक!' इसका एक मतलब यह कि मैं जो बोलूँगा, वह करूँगा; इसलिए मैं कवि नहीं हूँ। इसे उपालंभ मानने के बजाय हमने अधिक सुन्दर अर्थ निकाला है। उसका अर्थ यह कि 'आप लोगों के सामने मैं एक स्पष्ट चिंतन रखनेवाला हूँ, जिससे कि आपको हिदायत मिले।'

कवि का चिंतन तो हमेशा अस्पष्ट होता है। उसके काव्य की गहराई को वह खुद नहीं जानता। उस पर परस्पर-विरोधी भाष्य किया जा सकता है। अगर किसी कवि ने अपनी कविता पर कोई भाष्य लिखा, तो मैं उससे बिल्कुल विरुद्ध भाष्य लिख सकता हूँ और संभव है कि लोग मेरा भाष्य कबूल करें और शायद वह खुद भी कबूल करे! कवि को जो सूझता है, वह उसके स्पष्ट चिंतन के बाहर की चीज है। कोई चीज उसे प्राप्त होती है। वह कुछ बनाता नहीं, कुछ रचना नहीं करता। सहज ही उसको चीज मिल जाती है, उसकी आँखें मिल जाती हैं। कवि को क्रांतदर्शी कहा है: "कविः क्रांतदर्शी।" कवि दूर की देखता है, ऐसा कुछ लोग उसका अर्थ लगाते हैं। हाँ, वह भी हो सकता है। परंतु उसका एक अर्थ यह भी है कि कवि बहुत ही अलग देखता है। जो वस्तु है, उसे तो हर कोई देखता है, पशु भी देखता है। 'पशु' का

मतलब यही है कि जो देखता है, वह पशु है। 'पश्यति इति पशुः', जो देखता है, बिना देखे जिसे भरोसा नहीं होता है, चिंतन से कोई बात नहीं मानता है, कहता है, सबूत दिखाओ। ऐसे सबूत से ही माननेवाले पशु होते है। वह पशुत्व है। कवि में पशुत्व नहीं होता। इसलिए उसकी वाणी में विविध दर्शन होता है।

अभी बेनीपुरीजी ने बताया कि हम भूदान-यज्ञ में मदद करना चाहते हैं। कोई साहित्यिक वास्तव में मदद करेगा, तो मालूम ही नहीं होगा। अगर फलाने उपन्यास में विनोबा को मदद की गयी है, ऐसा मालूम हो गया, तो वह फेल्युअर है, असफल है। जिसमें पता ही न लगे, वही उत्तम मदद है। जैसे ईश्वर की स्थिति है। वह मदद देता है, तो उसका भान ही नहीं होता। वह बिना हाथ के देगा, बिना आँख के देखेगा, बिना कान के सुनेगा, बिना लेखनी के लिखेगा। सर्वोत्तम कवि वह हो सकता है, जिसने कुछ भी न लिखा हो! जिसने कुछ रद्दी लिखा हो, वह कवि ही नहीं है। महाकवि वह हो सकता है, जिसके हृदय में इतना काव्य भर गया है कि वह प्रकट ही नहीं कर सकता।

'साहित्य' प्रकाशित नहीं होता है

इसका अर्थ यह नहीं कि जिसने कुछ भी नहीं लिखा, वह कवि होता है। एक महाकवि ऐसा हो सकता है, जिसकी काव्यशक्ति बहुत गहरी होने के कारण प्रकाश में नहीं आ सकती, वाणी में और प्रकाशन में नहीं आ सकती। जब हम इस दृष्टि से देखते हैं, तो लगता है कि साहित्य का एक लक्षण यह है कि साहित्य प्रकाशित नहीं हो सकता। आजकल तो हर कोई साहित्य को प्रकाशित करने की बात सोचता है, परंतु यह प्रकाशन की बात नहीं है। साहित्य हमेशा अप्रकाशित होता है।

सहचिंतन कीजिये

इन दिनों तो साहित्यिकों को इनाम भी दिया जाता है। हमको भी इनाम मिला है। हमको याने हमारे प्रकाशक को! इन दिनों किसके सिर पर इनाम आकर गिरेगा, कुछ भरोसा नहीं। इसलिए जब कभी हम साहित्यिकों की मदद के लिए अपील करते हैं, उनके पास पहुँचते हैं, तो हम इतना ही चाहते हैं कि

आप हमारे साथ सहचिंतन कीजिये। हम जैसा चिंतन करते हैं, उसमें आप शरीक हो जाइये, यही हमारी माँग है। मानव के लिए यह बात सहज है, उसका यह स्वभाव है।

हम आम खाते हैं, तो पास बैठे हुए मनुष्य को दिये बगैर नहीं खा सकते। इतना ही नहीं, पड़ोसी को बुलाकर खिलाते हैं। जो दूसरे को बिना बुलाये खायेगा, वह रसिक नहीं है। जो अपने रस में दूसरे को शरीक करता है, वही 'रसिक' है। इसलिए जब हम साहित्यिकों को बुलाते हैं, तो हम कहते हैं कि हम जो रस लेते हैं, वह हम अकेले ही लेते जायँ, यह अच्छा नहीं। आप रसिक हैं, इसलिए आप भी शरीक हो जाइये। शरीक होने पर आप चाहे कान लिखिये या न लिखिये, हमें बहुत मदद होगी।

मेरी तो मान्यता है कि जिन्होंने उत्तम काव्य लिखे, वे उतने उत्तम कवि नहीं थे, जितने कि वे हैं, जिन्होंने कुछ नहीं लिखा। जो महापुरुष दुनिया को मालूम हैं, वे उतने बड़े नहीं हैं। उनसे भी बड़े वे महापुरुष हैं, जो दुनिया को मालूम नहीं हैं। "अव्यक्तलिंगाः अव्यक्ताचाराः।" ज्ञानी का आचार अव्यक्त होता है, वह प्रकट नहीं होता। मालूम ही नहीं होता कि वह ज्ञानी है। आप हमारे अनुभव में शरीक हो जाइये, इतनी ही हमारी माँग है। शरीक हो जाने पर उसका प्रकाशन हो या न हो, शब्दों में हो या कृति में हो, एक प्रकार के शब्द में हो या दूसरे प्रकार के शब्द में हो, एक प्रकार की कृति में हो या दूसरे प्रकार की कृति में हो, इतने सारे प्रकार के प्रकाशन हों या अप्रकाशन भी हों, तो उन सबसे हमें मदद मिलेगी, अप्रकाशन से ज्यादा मदद मिलेगी। हम इतना ही चाहते हैं कि आप हमारे साथ, हमारे अनुभव में समभोगी, रसभोगी हो जाइये। फिर वह शब्द में या कृति में प्रकट न हो सका, तो हमें सबसे ज्यादा मदद मिलेगी। वह चीज आपके संकल्प में रहेगी और आप हमारे अत्यन्त निकट रहेंगे।

आवाहन का भार नहीं

इसलिए जब हम साहित्यिकों से आवाहन करते हैं, तो साहित्यिकों पर हमारे आवाहन का कोई भार नहीं है। अगर किसीको महसूस हुआ कि विनोबा ने हम

पर बड़ी भारी जिम्मेवारी डाली है, तो वह क्या साहित्य लिखेगा ! साहित्यिक बोझ नहीं उठा सकता और हम किसी पर बोझ नहीं डालेंगे। हम इतना ही कह रहे हैं कि हमारे साथ शरीक होने में, उस रस की अनुभूति में आनन्द है। हम चाहते हैं कि आपको भी यह आनन्द प्राप्त हो ! इसीका नाम है, साहित्यिकों का आवाहन और साहित्यिकों की मदद।

बलरामपुर में बंगाल के साहित्यिक इकट्ठे हुए थे। कभी-कभी मेरी समाधि लग जाती है। उस समय ऐसी योजना की गयी थी कि हमारे सामने दीपक रखे गये थे—पाँच, सात, नौ, इस तरह से। मैं उनकी ओर देख रहा था। मैं मन में सोच रहा था कि पाँच दीपक हैं, तो पंचप्राण हो गये। सात हैं, तो सप्तछिद्र। नौ हैं, तो नवद्वार। ग्यारह हैं, तो एकादश इन्द्रियाँ। इस तरह मैं कल्पना कर रहा था, तो कल्पना-तरंग में मेरी समाधि लग गयी। उस दिन के हमारे भाषण का साहित्यिकों पर बहुत असर पड़ा, वे तन्मय हो गये, ऐसा हमने सुना। उन्होंने कहा कि आपके इस आन्दोलन से हमें नवजीवन मिला है। बंगाल के साहित्य की देशभर में प्रतिष्ठा है, परन्तु बीच में कुछ मन्दता आ गयी थी। अब फिर से जोर आयेगा। हमने सुना कि ताराशंकर बन्द्योपाध्याय इस विषय पर एक उपन्यास भी लिख रहे हैं। लेकिन हम उसकी ताक में नहीं हैं। हम किसीसे कुछ आशा नहीं रखते। एक अव्यक्त असर हो जाता है।

साहित्य वीणा की तरह है

साहित्य के लिए हमारी इतनी सूक्ष्म भावना है। साहित्य एक वीणा की तरह है। कुछ लोग समझते हैं कि वीणा बजानेवाला जोर से बजाये, तभी श्रोताओं पर असर होता है। परन्तु जो उत्तम कलाविद् होते हैं, वे बिलकुल बारीक आवाज से बजाते हैं, जैसे हृदय-वीणा पर बजा रहे हों। एक दफा मैं ऐसा ही वीणा-वादन सुन रहा था। धीमी-शान्त आवाज, जैसे ॐकार की ध्वनि सुनाई दे रही थी। जिनमें रस-ग्रहण नहीं था, वे कहते थे कि यह कुछ बजा भी रहा है या नहीं ! हमें तो कुछ सुनाई नहीं दे रहा है। परन्तु मुझे जरा संगीत का ज्ञान है, इसलिए मुझे आनन्द आ रहा था। कुछ लोग तो समझते हैं कि बजाने

पसीना-पसीना हो जाय, तभी उसने अच्छा बजाया ! लेकिन वह तो इस तरह बजा रहा था कि जरा थोड़ी-सी तार छेड़ी, फिर शान्त रहा। फिर एक तार छेड़ी।

हृदय-सम्मिलन की माँग

एक दफा एक गुरु के पास एक शिष्य पहुँचा। शिष्य ने कहा, "आत्मा क्या है, हम जानना चाहते हैं", तो गुरु शांत रहे। शिष्य ने दुबारा पूछा, फिर भी गुरु शान्त ही रहे। इस तरह तीन बार पूछा गया और तीनों बार गुरु शान्त ही रहे, तो चौथी बार शिष्य ने कहा, "हमने तीन-तीन बार पूछा और आप उत्तर नहीं देते हैं !" तो गुरु ने कहा, "हमने तीन-तीन दफा उत्तर दिया और ऐसे उत्तम तरीके से दिया कि इससे बेहतर तरीका हो नहीं सकता, तो भी तू नहीं समझा। जो न बोलने से भी नहीं समझता, वह बोलने से कैसे समझेगा ?" उसी तरह साहित्यिक से भी हम कहेंगे कि "अरे कमबख्त ! न लिखने पर भी तू नहीं समझ सकता है, तो लिखने पर कैसे समझेगा ?" इसलिए हमने जो साहित्यिकों से मदद माँगी है, वह केवल सहानुभूति माँगी है, हृदय की सहानुभूति माँगी है। इसलिए उसका बोझ या भार नहीं महसूस होना चाहिए। फिर इनाम-विनाम देने की जिम्मेवारी हम पर मत डालना। हम यही चाहते हैं कि सहज भाव से हृदय के साथ हृदय जोड़ दिया जाय।

पुरी
२१-३-'५५

हर दानपत्र विश्व-शांति के लिए वोट

हमारा यह मानव-समाज जब से अस्तित्व में है—कोई नहीं जानता कि कब से है—तब से उसमें प्रेम के साथ झगड़े भी चलते ही रहे हैं। उस कदीम जमाने में, जो मानव-समाज का आरंभ-काल माना जाता है, स्वैर हिंसाएँ चलती रहीं और उनका निपटारा या प्रतिशोध या वैसी ही स्वैर हिंसाओं से किया जाता था। उससे समाज की हालत कुछ बिगड़ती गयी, तो कुछ सुधरती गयी। आखिर समाज को यह एक युक्ति सूझी कि स्वैर हिंसा के बदले व्यवस्थित हिंसा की जाय, तो वह रुक जायगी। परिणामस्वरूप, जिसे हम दंड-शक्ति और शासन भी कहते हैं, उसका आरंभ हुआ। व्यवस्थित हिंसा अर्थात् दंड-शक्ति पहले-पहले कारगर साबित हुई। उसने स्वैर हिंसा को रोका। चंद दिनों तक वह सीमित अवस्था में रही और लाभदायी साबित हुई। इसलिए मानव ने उसे धर्म का अंश समझा। संस्कृत में, स्मृति में हमें ऐसा भी वाक्य मिलता है कि "दंडं धर्मं विदुर्बुधः"—बुधजनों ने दंड को धर्म समझा, अर्थात् उस जमाने के बुध-जनों ने। परंतु यह दंड-शक्ति, जिसमें व्यवस्थित और आरम्भ में सीमित हिंसा थी, फिर सीमित नहीं रह पायी। आहिस्ता-आहिस्ता उसकी सीमा विस्तृत होती चली गयी, फैलती गयी, चौड़ी होती गयी। फिर भी वह व्यवस्थित तो रही ही। अगर व्यवस्थित नहीं रहती, तो शासन न कर पाती और न दंड-शक्ति ही कहलाती। होते-होते आज उसने अतिहिंसा का रूप ले लिया है। आज व्यवस्थित और सीमित हिंसा या दंड-शक्ति का रूपांतर अतिहिंसा में हुआ है। तो, आज मानव भयभीत है। शायद इस समय सारा मानव-समाज जितना भयभीत है, उतना मानवीय इतिहास में वह कभी नहीं रहा होगा, ऐसा कहने में किसी तरह से कल्पना-गौरव नहीं होगा। क्योंकि जहाँ तक हम जानते हैं, इतने व्यापक प्रमाण में मानव कहीं फैला ही नहीं था। दुनिया में इतनी व्यापक शक्तियाँ शायद

उसे हासिल नहीं हुई थीं। अतः अगर मानव की आज की भयभीत अवस्था की बराबरी में प्राकृतिक कारणों से कहीं भय पैदा हुआ हो, तो अलग बात है।

मानव-मानस का यंत्र पीछे नहीं आ सकता

बड़े-बड़े भूकम्प, प्रलय आदि हुए, पर मानव को मानव की हिंसा से आज जो अतिभय प्राप्त हुआ है, वैसा इसके पहले कभी हुआ होगा, ऐसा नहीं दीखता। भयभीत मानव अब कुछ विचार करने लगा है। वह सोचने लगा है कि यह अतिहिंसा की जो अतिरिक्तता है, वह तोड़ी जाय और फिर से सीमित-व्यवस्थित हिंसा कायम की जाय। यद्यपि सारे वैज्ञानिक नहीं, तो भी कुछ वैज्ञानिक जहाँ यह कहने लगे हैं कि इस आणविक शक्ति को रोका जाय और राजाजी जैसे महर्षि यह उद्‌गार प्रकट कर रहे हैं कि उसे रोकना चाहिए, वहीं मानव भी स्पष्टतः यही चाहता है कि इस हिंसा की अतिरिक्तता नष्ट की जाय। जैसे बीच के जमाने में वह दंड-शक्ति के रूप में सीमित और व्यवस्थित रही, वैसी ही रह जाय। किन्तु प्रगति का कदम देखते हुए इस बात को जरा सोचने पर मानसशास्त्रज्ञ महसूस करेंगे कि इस प्रगति का चक्र कभी पीछे नहीं आ सकता, वह आगे ही जा सकता है। स्वैर हिंसा दंड-शक्ति में परिणत हुई, सीमित, व्यवस्थित हिंसा उत्तरोत्तर विस्तृत ही होती गयी और अब वह अतिहिंसा के रूप में प्रकट हुई है, तो उसे इसके आगे ही जाना है, इसके पीछे वह नहीं आ सकती। यंत्र में ऐसी शक्ति नहीं है। सामूहिक मानव-मानस-यंत्र ऐसा नहीं है कि उसे कोई एक मानव रोक सके और पीछे ले जा सके; क्योंकि वह सामूहिक मानव के मानस का यंत्र बन गया है। वह जिस गति से आगे बढ़ा है, उसी गति से उसे और आगे बढ़ना है। अब या तो उसे अपना रूप अहिंसा में विसर्जित करना है या उससे भी विकराल रूप धारण कर मनुष्य-समाज की समाप्ति कर कृतकार्य होना है। इन दो में से कोई एक तो उसे करना ही है, यह समझना जरूरी है।

रायफल क्लबवाली भयकारी निर्भयता

अतः भयभीत मानव का यह प्रयत्न कि केवल उसका अतिरेक रोका जाय संभव नहीं है। अगर यह बात ध्यान में आये, तो इसके आगे दो ही परिस्थिति

हो सकती हैं। एक में मानव का पूर्ण विनाश होगा और दूसरे में मानव को पूर्ण विकास का मौका मिलेगा। अगर अहिंसा आती है, तो हमें जरा बल महसूस करना चाहिए। जिनका मानवता में विश्वास है, उन्हें भी अपने में जरा ताकत महसूस करनी चाहिए।

अभी टंडनजी ने रायफल-क्लब के बारे में कहा था। उसका कुछ बचाव उन्होंने कर लिया था। उसमें भी काफी सार है, रहस्य है। जब आदमी निर्वीर्य बन जाता है, तब वह थोड़ा-सा साहस करने ही लगता है। पर अगर उस हिम्मत को बारीकी से सोचें, तो वह भय का ही रूप है। उसमें की निर्भयता वीर्यवान् या उत्तम निर्भयता नहीं होती। वह डरनेवाली निर्भयता है। उसमें कुछ साहस या हिम्मत होती है, इस तरह उसका कुछ बचाव अभी तक किया गया और आगे भी किया जा सकता है। अगर यह बात मान लें, तो भी ऐसी छोटी-छोटी हिंसाएँ अब अपना रोब जमा सकेंगी, यह संभव नहीं। अगर समाज पर किसीकी सत्ता चलेगी, तो उसका पूर्ण संहार करनेवाली अतिहिंसा की ही चलेगी या फिर वह विसर्जित ही होकर अहिंसा में परिणत होगी।

मध्ययुगीन कल्पना से आगे बढ़ें

इसलिए हमें अब यह पुरानी कल्पना छोड़ देनी चाहिए। मध्ययुगीन जमाने में लोगों ने जिन गुणों का सम्मान किया, उन्हींमें सीमित रहने के बजाय अब जरा हिम्मत कर अपने में थोड़ा बल महसूस करना चाहिए, और इस अतिहिंसा को समाप्त करके पूर्ण अहिंसा की तैयारी करनी चाहिए। दूसरी भाषा में इसका मतलब होता है, *'दण्ड-मुक्त, शासन-मुक्त समाज'* की जो बात हम करते हैं, उसके लिए कमर कसनी चाहिए। उसके लिए बुद्धि तैयार रखनी चाहिए और हृदय में प्राण भरना चाहिए।

काल-चक्र अहिंसा की ही ओर

मेरी यह निष्ठा आज की नहीं है, काफी अनुभव से मुझमें वह स्थिर हुई है। वर्षों से मैं यह मानता हूँ। परन्तु मुझे लगता था कि दण्ड-मुक्त समाज और शासन-मुक्त समाज बनाने में काफी समय लगेगा। लेकिन जब से अतिहिंसा का

यह स्वरूप प्रकट हो गया है, तब से मुझमें बड़ा भारी उत्साह आया और उम्मीद हो गयी कि दण्ड-मुक्त समाज अब जल्दी लाया जा सकेगा। अगर यह उम्मीद मैं आपको समझा सकूँ और उसका स्पर्श आपके हृदय को हो जाय, तो हम सबका रूपान्तर परिशुद्ध, परिनिष्ठ, आत्ममय मानवता में हो जायगा। इसीलिए जब कभी ऐटम और हाइड्रोजन बम की बात चलती है, तो मुझे लगता है कि यह एक ईश्वरीय प्रेरणा ही हो रही है। सारी समाज-रचना अब मेरे हाथ में आनेवाली है। वह जोरों के साथ हमारी तरफ आ रही है। वह पुकारकर कहती है कि अहिंसा देवी, तू आ जा और इस शक्ति को बचा ले। अतः हमारे लिए सोचने की बात है कि हमारा काम इसके आगे हमारे लिए आसान है या कठिन! पर यह काम हमारे लिए आसान ही है। यह ध्यान में आना चाहिए कि कालचक्र ही हमें आसान बनाता जा रहा है। इसी दृष्टि से हिम्मत कर हमें आगे की सारी योजना करनी चाहिए। अब शासन-मुक्त समाज के लिए ही तैयारी हो रही है।

१६५७ में शासन-मुक्त समाज क्यों नहीं ?

मुझे कभी-कभी ऐसा लगता है कि हममें से कुछ लोग इस उलझन में पड़े हैं कि इन दो सालों के अन्दर पाँच करोड़ एकड़ भूमि प्राप्त होगी या नहीं और इस समस्या के सुझाव का दर्शन होगा या नहीं ? पर मुझे यह उलझन छू भी नहीं रही है। मुझे तो लगता है कि १६५७ मे सारी दुनिया में शासन-मुक्त समाज की स्थापना ही क्यों न हो ? यह केवल एक कल्पना नहीं है। अगर हम ठीक हिम्मत बाँधें, जरा इस दृष्टि से सोचें और गहराई में जायँ, तो ज्ञात होगा कि आखिर हम मानवता को मिटाना तो नहीं चाहते ? मानव कितना ही मूर्ख बना हो, आखिर वह इतना मूर्ख तो नहीं बनेगा कि स्वजाति का ही नाश करने के लिए प्रवृत्त हो ? हम कोई ईश्वर की इच्छा नहीं जानते, परन्तु जो दीख रहा है, वह जो सारा तमाशा है—उस पर से ऐसा नहीं दीखता कि मानव की समाप्ति की कोई योजना हो रही है। ईश्वर अभी प्रलय नहीं चाहता, मानव के हाथ से मानव का नाश नहीं चाहता, यह इसी पर से मालूम होता है कि ऐसी प्रेरणा हमें हो रही है। अगर ऐसा नहीं होता, तो भगवान् हम सबको बेवकूफ बनाता और आप और हम

यहाँ दण्ड-मुक्त समाज, शासन-मुक्त समाज-रचना की बात ही न कर सकते। भगवान् को जब प्रलय करना था, तो यादवों को क्या सूझा? एक-एक ने शराब पीकर हाथ में लठ्ठ लिया और एक-दूसरे को मारने लगे। आखिर भगवान् ने कहा कि चलो भाई, मैं भी तुम लोगों से अलग क्यों रहूँ? इसलिए प्रहार कर दिया और चले गये। कहते हैं, वहाँ सबका संहार हो गया।

ईश्वर प्रलय नहीं चाहता

अगर भगवान् दरअसल न चाहता होता, तो दण्ड-मुक्त, शासन-मुक्त समाज बनाने की प्रेरणा मुझे क्यों होती? हम सब यहाँ इकट्ठा क्यों होते? इसके लिए हम एकत्र हो ही नहीं सकते थे। कोई अगर यह अहंकार रखे कि ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध हम एक काम करने जा रहे हैं, कम्बख्त ईश्वर तो प्रलय चाहता हुआ दीखता है। लेकिन हमने तय किया है कि हम प्रलय न होने देंगे—इस तरह हम ईश्वर की मर्जी के खिलाफ कुछ करने जा रहे हैं, तो वह असम्भव है, इसलिए यह निश्चित ही समझ लेना चाहिए कि जब हम-आपको ऐसी प्रेरणा हो रही है, तो ईश्वर इस समय प्रलय नहीं चाहता। और अगर वह प्रलय नहीं चाहता, तब तो यह भी स्पष्ट है कि इसे शीघ्र-से-शीघ्र हिंसा से मुक्त करना चाहता होगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि हमें यहाँ श्रद्धा रखनी चाहिए कि सतयुग बहुत नज्दीक आ रहा है। पर सतयुग कब आता है, जब कि कलियुग का परिपूर्ण अतिरेक होता है, उसका घड़ा भर जाता है। तो, हमें समझना चाहिए कि जब इतनी अति-हिंसा समाज में फैल गयी और समाज भयभीत बन गया, तो इसके आगे शीघ्र ही सतयुग आ रहा है।

मानव को सर्वत्र समान प्रेरणाएँ

तो, आज हमें यह कल का दर्शन हो रहा है। चार साल में हमें इतनी जमीन प्राप्त हुई, तो आगे दो साल में और कितनी जमीन प्राप्त होगी, आदि गणित कर सोचना ठीक नहीं। हमें सोचना चाहिए कि सारी दुनिया में एक बड़ी भारी प्रेरणा काम कर रही है और उसके लिए हम निमित्त हो गये हैं। वह प्रेरणा हमसे कुछ कराना चाहती है, यह समझ लेना चाहिए। इतिहासभर में

देखा गया है कि कुल मानव का इतिहास दैवी प्रेरणाओं से प्रेरित है। आप देखेंगे कि एक जमाना था, एक युग था, जिसमें इधर बुद्ध भगवान् थे, तो उधर कन्फ्यूशस, और कुछ दिन के अन्तर से जरथुस्ट्र। थोड़े दिन के बाद ईसा आ गये। तो उन पाँच सौ साल के अन्दर आपको पैगम्बर ही पैगम्बर एक साथ दिखेंगे। फिर समाज मे एक ऐसी अवधि आयी, इतिहास में एक ऐसा समय आया, जिसमें आप अनेक सन्तों को देखते हैं। जब इधर वैष्णव आये, तो अन्यत्र और साधु-सन्त हुए। इस प्रकार उस समय हम सब तरफ सन्तों को देखते हैं। फिर जिधर देखो, उधर हर देश मे आजादी की बात चली। आज कुल देशों मे यही प्रेरणा हो रही है कि मानव समाज में साम्ययोग की स्थापना होनी चाहिए, किसी-न-किसी स्वरूप की समता स्थापित होनी चाहिए, आजादी चाहिए।

भौतिक बनाम चैतन्य 'परमाणु'

इसका मतलब यह है कि प्रेरणाएँ हुआ करती हैं और उनसे मानव-समाज प्रेरित और प्रवृत्त होता है। तो, आज की इस प्रेरणा को अभी तक की प्रेरणाओं का विकसित स्वरूप समझकर यह महसूस होना चाहिए कि ईश्वर हमें अपना औजार बना रहा है। अगर हमें यह भास हो जाय, तो फिर हम कम ताकतवाले नहीं रहेंगे। आज ऐटम ने यह सिद्ध कर दिया है कि अणु मे ऐसी शक्ति है कि वह संहार कर सकती है। तब फिर हमें यह समझना चाहिए कि एक साधारण भौतिक परमाणु में अगर इतनी शक्ति है, तो चैतन्य परमाणु में, ज्ञान परमाणु मे कितनी शक्ति होगी?

भारत दैवी प्रेरणा का निमित्त

इसलिए मैं यह चाहता हूँ कि हम भूदान-यज्ञ की तरफ सीमित दृष्टि से न देखें। अगर हम ऐसी दृष्टि से देखेंगे, तो गोता खायेंगे। लेकिन व्यापक दृष्टि से देखेंगे, तो ज्ञात होगा कि सारी दुनिया मे यह एक बड़ा भारी खेल हो रहा है, उसका मध्यबिन्दु फिर से भारत बनने जा रहा है और इसीलिए हमें यह प्रेरणा मिली है। आप देखते हैं कि उधर पंडित नेहरू कोशिश कर रहे हैं कि सारी

दुनिया में शांति स्थापित हो। शांति के विचारों को बढ़ावा मिले, यह प्रेरणा उन्हें हो रही है और वे जिस पद्धति से काम कर रहे हैं, उसमे वे अपनी पराकाष्ठा भी कर रहे हैं। यह प्रेरणा भी हिन्दुस्तान में से निकल रही है और आप देखते हैं कि भूदान-यज्ञ की प्रेरणा भी यहीं प्रकट हुई है। आपने यह भी देखा कि आजादी का जो एक तरोका आया, वह भी हिन्दुस्तान में आया। इस तरह कुल बातें देखते हुए यह आभास होता है कि दुनिया में एक प्रेरणा काम कर रही है और उसके लिए फिर से भारत को निमित्त बनना है। अगर हम यह विशाल भावना खयाल में रखेंगे, तो फिर अपनी फौज कैसे बढ़ायेंगे ? फिर उसका कुछ उपयोग है या नहीं, पाकिस्तान के खिलाफ हम टिकेंगे या नहीं, रायफल-क्लब का क्या होगा—आदि बातें बिलकुल क्षुद्र हो जाती है। इनका विचार करने की जरूरत ही नहीं मालूम होती।

दुनिया को दो साल का आह्वान

इसलिए हम अब इस दृष्टि से इस पर सोचें कि आज एक प्रस्ताव हुआ है और जो माँग की गयी है कि दो साल तक अपने बहुत सारे अच्छे-अच्छे कामों को भी छोड़ करके लोग इसमे जोर लगायें, उसका क्या महत्त्व है ? शंकररावजी ने कहा कि दो साल तक जोर लगाने का अर्थ यदि यह हो कि आज की तारीख से उस तारीख तक ही जोर लगाया और फिर हम ढीले पड़ जायँ, तो यह ठीक नहीं। यह सावधानी की सूचना उन्होंने हमें दी। लेकिन प्रस्ताव में दो साल की जो बात बतायी गयी है, वह प्रस्ताव बनानेवालों ने कुछ ज्यादा सोच-विचार कर कही हो, ऐसा नहीं है। उन्होंने यह स्थूल विचार ही किया कि १९५७ तक हमने काम करने का सकल्प किया था, उसके अब दो साल बाकी हैं, तो इसके लिए उतना ही समय दिया जाय। लेकिन यह समझें कि हम दो साल के लिए सब लोगों का जो यह आह्वान करते हैं, वह सिर्फ हिन्दुस्तान के लोगों के लिए नहीं, यह हम अपने सर्वोदय-प्रेमी लोगों तक ही सीमित होकर नहीं बोल रहे हैं। यद्यपि हमारा उन पर अधिकार है, इस वास्ते उन्हींका विशेष आह्वान कर रहे हैं, फिर भी हमारा यह आह्वान सारी दुनिया को है कि अगले दो साल जोर लगाइये और १९५७ तक दंड-मुक्त समाज स्थापित कीजिये।

विश्व-शांति के लिए वोट

आज हम यहाँ से जायेंगे। वल्लभस्वामी ने कहा कि कुछ लोग पैदल आते हैं और वापस जाते हैं ट्रेन से। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो आये भी पैदल और जायेंगे भी पैदल। पर अगर कम-से-कम एक ही दफा पैदल जाने की योजना हो, तो जाते समय पैदल जायँ। आखिर यह बात उसने क्यों कही, मैं भी सोच रहा था। क्या उसे सूझा? इसीलिए कि इस वक्त हमें एक ऐसा संदेश मिल रहा है कि उसका फौरन प्रचार करने की जरूरत है। अगर हम यहाँ से पैदल निकल पड़ते हैं, तो यह संदेश हर जगह सुनाते जायेंगे। कहेंगे कि 'भाइयो, देखो, दो साल के अंदर मानव का उद्धार होनेवाला है'। जहाँ भी इस तरह का उत्थान हुआ है, वहाँ मानव ने अति तीव्रता से मान लिया है कि मुक्ति मेरे नजदीक है। जब मानव में ऐसी तीव्रता आयी, तभी धर्म का उत्थान और बहुत भारी कार्य हुए, इसे हम सब जानते हैं। इसलिए हमें न सिर्फ यही महसूस करना चाहिए कि दो साल के अन्दर यहाँ के मानव ऐसा प्रयत्न कर कुछ जमीन हासिल करेंगे, बल्कि दो साल में हमें ऐसी कोशिश करनी है कि दुनिया सब शस्त्रों को निकम्मा समझकर एक नया समाज बनाने के लिए प्रेरित हो। इस युग में यह कोई असम्भव बात मानने की जरूरत नहीं। जब कि एक-एक वर्ष की कीमत आज पुराने सौ-सौ, दो-दो सौ वर्ष के बराबर हो गयी है, तब जरा भी ऐसा समझने की जरूरत नहीं कि दो साल के अन्दर यह बात असम्भव है। ऐसी ही आशा रखकर एक प्रेरणा से प्रेरित हो हम यहाँ से चले जायँ। और जहाँ भी भूमि माँगने के लिए पहुँचें, तो उन्हें समझायें कि भाई, आप जो दानपत्र देंगे, वह विश्व-शांति के लिए है। आप विश्व-शान्ति चाहते हैं या या नहीं? यदि चाहते हैं, तो यहाँ की भूमि-समस्या हल करने के लिए भूमिदान और सम्पत्तिदान की योजना में अपना हिस्सा दीजिये। आप जो यह छठा हिस्सा देंगे, वह विश्व शान्ति के लिए वोट ही माना जायगा।

बिना श्रद्धा के सब तरीके व्यर्थ

ऐसी ही भावना रखकर हम यह काम करें और देखें कि इसमें कौन-सी शक्ति पड़ी है? कुछ हिसाबी भाइयों ने कहा, जिस तरीके से हमने यह

काम चलाया, उससे शायद यह मामला १९५७ तक निपटता नहीं दीखता। अतएव हम कोई दूसरे तरीके ढूँढ़ें। पर हम कहते हैं कि तरीकों की यहाँ कोई कीमत नहीं है। तरीका कोई कीमत ही नहीं रखता। यहाँ कीमत इसी बात की है कि हम कितनी श्रद्धा से भावित हैं? यदि हममें श्रद्धा-भावना की न्यूनता है, तो इससे बेहतर तरीके हम ढूँढ़ते चले जायँ, तो भी समझ लीजिये कि भूमि-समस्या हल न होगी। वह समस्या हल होगी, तो उसके साथ साथ मानव का यह निश्चय भी रहेगा कि हमें शासन मुक्त, दण्ड-मुक्त होना है। ऐसा निश्चय होने पर ही उस निश्चय के साथ यह समस्या भी अहिंसा से सुलझेगी।

हमारे दोषों के फलस्वरूप पूरी ताकत नहीं

हमसे लोग पूछते हैं कि क्या आपका ऐसा विश्वास है? आज ही श्री पाटिल साहब ने भी पूछा था कि क्या आपको इस पर विश्वास है कि हर कोई मनुष्य अपना छठा हिस्सा दे ही देगा? पर क्या यह सही सवाल माना जायगा? ऐसा सवाल इसलिए उठता है कि हमारा दर्शन सीमित है। यदि हम व्यापक दर्शन करें और भावना से भावित होकर लोगों के पास पहुँचें, तो आप देखेंगे कि यह महज हिन्दुस्तान की भूमि-समस्या हल करने की छोटी-सी बात नहीं है, जिससे यहाँ के थोड़े भूमिहीनों को थोड़ी-सी मदद मिल जाय और थोड़ी शांति स्थापित हो, 'लैंड हंगर' या जमीन की भूख जरा शांत हो जाय। इससे हिन्दुस्तान की नैतिक शक्ति ऐसी बनेगी कि उसके परिणामस्वरूप सारी दुनिया में शान्ति स्थापित होगी। यह बात ध्यान में आने के बाद हमारा यह तरीका, अगर अभी तक कारगर नहीं हुआ हो, तो फिर हमें संशोधन करना होगा। हमें समझना चाहिए कि इसमें अगर त्रुटियाँ होंगी, तो कुछ दोष हमसे होते होंगे। वाणी, मन और कृति के दोष होते होंगे, इसी वास्ते इसमें पूरी ताकत नहीं आयी।

सत्याग्रह तीव्र-से-तीव्रतम नहीं, सूक्ष्म-से-सूक्ष्मतम

जब हम सत्याग्रह के बारे में सोचते हैं, तो करीब-करीब ऐसे ढंग से सोचते हैं कि जैसे मानव ने छोटी हिंसा से बड़ी हिंसा में और बड़ी हिंसा से अतिहिंसा में कदम रखा, वैसे ही पहले तो हम एक सौम्य-सा सत्याग्रह करेंगे। आज हमारी

यह जो पद-यात्रा चल रही है, वह भी एक सत्याग्रह है, ऐसा हम कहते हैं। लोगों ने भी इसे मान लिया और वे कहते है कि हाँ, यह भी एक सौम्य सत्याग्रह है, पर अगर इससे काम नहीं बना, तो और तीव्र सत्याग्रह करेंगे। यदि उससे भी नहीं बना, तो उससे और भी तीव्र सत्याग्रह होगा। इस तरह से हम इसकी तीव्रता बढ़ाते जायँगे। किंतु यथार्थ में हमारा चिन्तन इससे बिलकुल उल्टा होना चाहिए। हमने जो सौम्य सत्याग्रह शुरू किया है, अगर उससे काम बनता नहीं दीखता, तो उससे कोई सौम्यतर सत्याग्रह ढूँढ़ेंगे, ताकि उसकी ताक़त बढ़े। अगर उतने से भी काम न निभा, तो कोई और सौम्यतम सत्याग्रह निकालेंगे, जिससे उसकी ताक़त और बढ़े। आपको मालूम है कि होमियोपैथी में विद्या सिखायी जाती है कि औषधि कम मात्रा मे हो और उसे घोंटा जाय, बार-बार भावित किया जाय। भावना से जो भावित होता है, वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म होता हुआ अधिकाधिक परिणामकारी होता है। हिंसा-शास्त्र मे तो सोचा जाता है कि सौम्य शस्त्र से काम न चला, तो उससे तीव्र शस्त्र लेने से ताक़त बढ़ेगी और वह यशस्वी होगा। किन्तु यहाँ इससे बिलकुल उल्टी प्रक्रिया होनी चाहिए। ध्यान में आना चाहिए कि अगर यह काम इस तरह कामयाब नहीं हो रहा है, तो इसका मतलब यह है कि हमारी सौम्यता मे कुछ न्यूनता है, इस वास्ते हमें सौम्यता और बढ़ानी चाहिए।

सुरसा और हनुमान की मिसाल

यही सत्याग्रह का स्वरूप है। अभी तक आजादी के लिए जो सत्याग्रह हुए, उनमें दबाव डालकर अंग्रेजी सत्ता को यहाँ से हटाना, इतना ही एक निगेटिव कार्य था। उस वक्त हिन्दुस्तान निःशस्त्र होकर निराश हो गया था। वह या तो भ्रान्त होकर इधर-उधर छोटे-बड़े खून करने लगा था—खैर हिंसा में जुट जाना चाहता था या निराश होकर बैठना चाहता था। उसी हालत में अहिंसा का यह विचार आया और लोगों ने उसे उतनी ही मात्रा में ग्रहण किया, जितनी मात्रा में वे ग्रहण कर सकते थे। इस तरह उन दिनों सत्याग्रह की जो एक प्रक्रिया चली, उसे परिपूर्ण न मानना चाहिए। वह विशिष्ट परिस्थिति की उपाधि से युक्त परि-

स्थिति की एक प्रक्रिया हुई। किन्तु स्वराज्य-प्राप्ति के बाद डेमोक्रेसी की आज की हालत देखते हुए और सारी दुनिया में काम करनेवाली शक्तियों का सूक्ष्म दर्शन पाकर हमें सत्याग्रह की मात्रा उत्तरोत्तर सौम्य करनी होगी। सौम्य, सौम्यतर और सौम्यतम, इस तरह से अगर सत्याग्रह बढ़ता गया, तब तो वह अधिकाधिक कारगर और अधिकाधिक शक्तिशाली होगा।

तुलसी-रामायण में सुरसा राक्षसी की कथा है। **"सुरसा नाम अहिन की माता।"** वह हनुमान के सामने खड़ी हो गयी। उसने अपना मुँह फैलाया और एक योजन का किया, तो हनुमान दो योजन के बन गये। जब उसने दो योजन का मुँह बनाया, तो हनुमान चार योजन के हो गये। जब हनुमान चार योजन के बन गये, तो सुरसा आठ योजन की बन गयी। आखिर जब वह आठ योजन की बनी, तब हनुमान सोलह योजन के बन गये और जब हनुमान सोलह योजन के बन गये, तब सुरसा **"बत्तीस भयऊ"**। अब हनुमान ने देखा कि इसके आगे गुणन-क्रिया करते रहने में सार नहीं। बत्तीस का चौसठ होगा, चौसठ का एक सौ अट्ठाईस। इसका कोई अंत नहीं है। यह 'न्यू क्लीयर वेपन' तक पहुँच जायगा। तो, फिर **"अति लघु रूप धरेउ हनुमाना"**। फिर हनुमान ने अति लघु रूप धारण किया और उसके मुँह के अंदर चला गया तथा नासारंध्र से बाहर निकल गया। मामला खतम हो गया।

पाँव न टूटे, तब तक चलते रहो

हमें समझना चाहिए कि जब विशाल सुरसा इतना भयानक रूप धारण कर, ऐटम और हाइड्रोजन बम का रूप लेकर, मुँह फैलाकर हमारे सामने खड़ी है, तो हम बिलकुल अति लघु रूप धारण कर उसके अंदर चले जायँ और नासिका-रन्ध्र से पार हो जायँ। हमें यही प्रेरणा होती है। गुजरात के एक भाई ने कहा है कि अब वहाँ काम बहुत मन्द पड़ गया। मैंने कहा, नहीं, मन्द नहीं पड़ा! तुम बाहर से देखते हो। पर जरा अन्दर से देखो कि अपनी छाती में जो चीज है, क्या वह मन्द पड़ी है? अपनी नाड़ी मन्द पड़ी है क्या? अगर छाती पर हाथ रखते हैं, तो अनुत्साह नहीं दीख पड़ता। विनोबा को तो उत्साह ही

पड़ता है। इधर विनोबा चल रहा था, तो उधर पेट के अन्दर जरा जोर से दर्द शुरू हो गया। मैंने कहा, वाह रे वाह! उसकी ज्यादा लम्बी कहानी मैं यहाँ नहीं सुनाऊँगा, पर पेट सुबह से शाम तक सतत ही दुखता रहा। पहले तो रात को नींद आती थी, पर इन दिनों दर्द से रात में वह अक्सर टूट जाती थी। पर मन ने कहा, पेट दुखता है, तो इसमें पैरों का क्या अपराध है? पाँव चल सकते है, इसलिए यात्रा जारी रखी। आखिर लोगों ने बहुत आग्रह किया, तो तीन दिन पालकी में बैठा। कुल मिलाकर सात-आठ मील पालकी में बैठा, फिर भी रोज पाँच-छह मील तो चलता ही था। आखिर वह पेट बेचारा तो शान्त हो गया। यह विचार का चमत्कार हुआ, एक छोटी-सी परीक्षा हुई। लेकिन हमें यही लगा कि पाँव तो परमेश्वर ने नहीं तोड़े और जब पाँव नहीं तोड़े, तो इसमें उसका सन्देश स्पष्ट है कि "चलते रहो। जब फिर यात्रा बन्द करने का मुझे सूझेगा, तब तेरे पाँव तोड़ डालूँगा।" यह उसका संकेत समझ गया, तो मेरा उत्साह बढ़ा। मैं पूछता हूँ कि इधर आपको कितनी जमीन मिली? कोई कहते हैं कि गतवर्ष से कोई तीन-चार लाख एकड़ कम मिली। पर यह कोई बात नहीं है। इस पर सोचो ही मत। यहाँ से अपने हृदय में तीव्र भावना लेकर जाओ, यही आपसे मुझे कहना है।

ये नम्र बोल विश्वहितार्थ

आज सर्व-सेवा-संघ ने आप कार्यकर्ताओं के सामने जो प्रस्ताव रखा है, तो वह आदेश नहीं दे रहा है। आप सबको आज्ञा करने की उसमें शक्ति नहीं है। अगर वह कुछ कर सकता है, तो प्रार्थना कर सकता है और वह प्रार्थना भी असर्व के लिए नहीं, सर्व के लिए ही कर सकता है। इस वास्ते आज का प्रस्ताव अति नम्र है। वह ऐसा उद्धत नहीं है कि अपने चन्द लोगों को ही आदेश दे, जैसे कि कोई उद्धत मालिक अपने नौकरों को हुक्म देता है और उससे अपने मुताबिक काम करवाता है। सर्व-सेवा-संघ ऐसा उद्धत नहीं बन सकता। तो, इस प्रस्ताव में सारी दुनिया से प्रार्थना की गयी है कि दो साल जोर लगाओ और इस अरसे में अपना समाज शासन-मुक्त करने की कोशिश करो। जब हम समाज को शासन-मुक्त करेंगे, तभी अहिंसा में प्रवेश होगा। नहीं तो, अगर हम यह

प्रार्थना

हमारे कई भाई कई अच्छे-अच्छे कामों में लगे हैं। अब हम उनसे जरा प्यार की बात कहना चाहते हैं। हमारा एक दावा है। वह हम आपके सामने पेश करते हैं। दावा यह है कि जितनी निष्ठा से रचनात्मक कार्य हमने किया, उससे अधिक निष्ठा से कर नहीं सकते थे। उससे ज्यादा निष्ठा हमारे पास उपलब्ध ही नहीं। हमने छोटे-छोटे असंख्य रचनात्मक कार्य तीस-बत्तीस साल तक बड़ी निष्ठा से किये हैं। हमारी आत्मा कह रही है कि अगर इस समय गांधीजी होते, तो वे ही छोटी-छोटी सेवाएँ चलातीं। उनमें जो तृप्ति थी, वह छोटी नहीं थी। हमें उनमें विशाल तृप्ति महसूस होती थी। आज तो हम लोगों के सामने हाथ जोड़ते हैं, लेकिन उन दिनों ऐसे मस्त थे कि यदि कोई हमारे सामने भी आये, तो परवाह नहीं करते थे। लोग कहते थे, यह कैसा उद्धत मनुष्य है कि देखता भी नहीं। लेकिन वही हम आज आपके सामने बैठकर प्रार्थना कर रहे हैं कि वे जो छोटे-छोटे काम हमने चलाये हैं, वे दो-एक साल के लिए जरा छोड़ दें। इससे उन कामों का नुकसान नहीं होगा। हमारा नुकसान नहीं होगा तथा देश और दुनिया का भी नुकसान नहीं होगा। क्योंकि आगे हमें इतना काम उपलब्ध होगा कि संभव है कि उन सबको करने के लिए हम पर्याप्त समर्थ भी साबित न होंगे। इस वास्ते थोड़ी देर के लिए उन्हें छोड़ियेगा, ऐसी हमारी प्रार्थना उन भाइयों के लिए है। रचनात्मक कामों में बहुत श्रद्धा रखनेवालों को हम विश्वास दिलाना चाहते हैं कि इस आन्दोलन में आप यदि उन कामों को छोड़ देंगे, कतई छोड़ देंगे, तो भी कोई नुकसान न होगा। न उन कामों का और न हम सबका ही कोई नुकसान होगा।

पुरी
२७-२-'५५

उत्कल : पुरी-सम्मेलन के बाद

[१ अप्रैल '५५ से ३० सितम्बर '५५ तक]

भारतीय समाजशास्त्र में दान-प्रक्रिया का स्थान : २२ :

एक भाई ने सवाल उठाया है कि पश्चिम और हिन्दुस्तान के समाजशास्त्रों में पश्चिम से क्या फर्क है ? अवश्य ही पश्चिमवालों ने विज्ञान को बहुत आगे बढ़ाया है। उस क्षेत्र में हमें उनसे बहुत कुछ सीखना है। फिर भी वहाँ अभी समाजशास्त्र बना ही नहीं, उसका आरम्भ ही हुआ है। हमने यहाँ जो भूदान चलाया है, वह यहीं के समाजशास्त्र का एक अंग है। यहाँ का समाजशास्त्र काफी विकसित है। इसका यह मतलब नहीं कि आगे प्रगति की कोई गुंजाइश ही नहीं है। अभी काफी प्रगति करनी है, फिर भी यहाँ के समाजशास्त्र के कुछ बुनियादी सिद्धान्त हैं।

समाज-सन्तुलन के लिए नित्य-दान

पहला बुनियादी सिद्धांत यह है कि मनुष्य को समाज के लिए खुद की शक्ति का एक हिस्सा सतत देते रहना चाहिए। अपने पास सम्पत्ति हो, तो वह अपने लिए नहीं, समाज के लिए है, यह समझकर उसका एक हिस्सा समाज को अर्पण कर देना चाहिए। अपने पास जमीन हो, तो उसकी मालकियत समाज की समझकर, जब कभी माँग हो, उसका एक हिस्सा समाज को देना चाहिए। अपने पास की श्रम-शक्ति और बुद्धि-शक्ति भी समाज के काम में सतत लगाते रहना चाहिए; क्योंकि वह समाज के लिए ही है। नित्य-दान की इस कल्पना में समाज का सतुलन रखने की जो बात है, वह अभी पाश्चात्यों के समाजशास्त्र में नहीं आयी है। वहाँ जो दान चलता है, उसे 'चैरिटी' कहते हैं। लेकिन एक तो वह धर्म-कार्य में दिया जाता है—जैसे चर्च आदि के लिए और दूसरे बीमार, दुःखी आदि के सेवार्थ। याने एक धर्म-संस्थाओं के लिए दिया जाता है, तो दूसरा दया से प्रेरित होकर। ये दोनों प्रकार के दान हिन्दू-धर्म में हैं और अन्य धर्मों में भी। दान के परिणाम-स्वरूप स्वर्गफल की इच्छा या ईश्वर की कृपा की आशा की जाती है। दोनों दान अच्छे हैं।

नये मूल्यों की प्रतिष्ठापना के लिए

लेकिन हमारे यहाँ एक तीसरा भी दान है और वह समाजशास्त्र का अंग है। मन्दिर, मस्जिद, मठ आदि के लिए जो दान दिया जाता है, उसमें परलोक में फल पाने की पारलौकिक प्रेरणा होती है, और जो दया के कारण दिया जाता है, उसमें चित्त-शुद्धि की आशा रहती है। किन्तु, हमने जो भूदान और सम्पत्तिदान-यज्ञ शुरू किये हैं, वे तो समाज-परिवर्तन के लिए हैं। समाज-रचना बदलने और समाज का सन्तुलन रखने के लिए हैं। दोनों में भूमि और सम्पत्ति की मालकियत मिटाने का खयाल है। अगर कोई पारलौकिक कामना की जाय, तो उसका इस यज्ञ के साथ कोई मेल नहीं खाता—यद्यपि परलोक में भी इसका फल मिलेगा ही। इसके अलावा इसमें जो भूमि और सपत्ति का बँटवारा होगा, उससे चित्त-शुद्धि भी हो सकती है। साराश, पारलौकिक कल्याण और चित्त-शुद्धि का साधन होते हुए भी इसका मुख्य उद्देश्य है: समाज का संतुलन रखना, समाज में समत्व लाना और साम्ययोग की स्थापना करना। समाज में नये मूल्यों की प्रतिष्ठापना करना और व्यक्ति का जीवन समाज के लिए समर्पण करना। जिसका परलोक पर विश्वास न हो, वह भी इस यज्ञ में हिस्सा ले सकता है। जिसको चित्त-शुद्धि के दूसरे साधन उपलब्ध हों, उसे भी इसमें योग देना चाहिए।

भूदान का पूरा और अधूरा यश

गीता ने यज्ञ, दान और तप की जो कल्पना की, वह इस तरह के समाज-संतुलन और साम्ययोग की स्थापना के लिए ही थी। तो, इस यज्ञ के मूल में रहनेवाली यह कल्पना भारतीय समाजशास्त्र की एक मूलभूत कल्पना है। धर्मशास्त्र में पारलौकिक कल्याण की, तो भक्ति-मार्ग में चित्त-शुद्धि की कल्पना की जाती है, परन्तु इसमें समाजशास्त्र की कल्पना है। यह बात बहुतों के ध्यान में नहीं आती। इसी लिए यह उनकी समझ में नहीं आता कि भूदान-यज्ञ से क्या होगा। हमारे समाजवादी भाई आक्षेप उठाते हैं कि समाज बदलने और जमीन का मसला हल करने की यह बात इतनी बड़ी है कि कानून से ही हो सकती है। अतः कानून बनाने के लिए सरकार पर दबाव लाना चाहिए। यज्ञ, दान और तप के द्वारा व्यक्ति व

शक्तियाँ समाज को समर्पित कराकर समाज में स्थिर मूल्य कायम करने की बात वे लोग नहीं समझ पाते। हम उन्हें समझाते हैं कि भाई, सरकार पर दबाव लाने की बात करते हो, तो इस यज्ञ के परिणामस्वरूप वह भी आ जायगा। अगर इस यज्ञ को पूर्ण यश मिला—यह यज्ञ परिपूर्ण सिद्ध हुआ—और आप सब योग देंगे, तो पूर्ण यश जरूर मिलेगा—तो फिर कानून की जरूरत ही न रहेगी। लोक-शक्ति से ही जमीन बँटेगी और समस्या हल हो जायगी। लेकिन अगर इसे पूरा यश नहीं मिला, तो भी उतना कार्य तो जरूर हो जायगा, जितना ये साम्यवादी और समाजवादी भाई चाहते हैं। याने सरकार पर दबाव आयेगा और परिणामस्वरूप सरकार को कानून में परिवर्तन करना होगा, गरीबों के हित में कानून बनाना होगा। अगर ऐसा हुआ, तो ये लोग समझेंगे कि भूदान-यज्ञ को पूरा यश मिला। तो, उनमें और हममें इतना ही फर्क है कि हम जिसे अधूरा यश कहते हैं, उसे ये पूरा यश कहते हैं और जिसे हम पूरा यश कहते हैं, उस पर इनका विश्वास ही नहीं। इसके अलावा हमारा उनके साथ कोई खास विरोध है, ऐसा हम नहीं मानते।

गरीब दान क्यों दें ?

कल एक कम्युनिस्ट भाई हमसे मिलने आये। उन्होंने हमसे बातचीत की और आखिर हमारी बात समझ ली। उनके और हमारे बीच तय हुआ कि हम एक साथ काम कर सकते हैं। उन्होंने कहा : आप जो विश्व-शांति की बात करते हैं, वह हमें मंजूर है। हमने कहा : ठीक! इस बारे में हम दोनों का मतैक्य हो गया। फिर उन्होंने कहा : हम चाहते हैं कि न केवल जमीन की, बल्कि कारखानों की भी मालकियत मिटे। हमने कहा : ठीक! यह भी हमें मंजूर! इसमें भी हम दोनों एकमत हो गये। फिर उन्होंने कहा : हम नहीं मानते कि इस यज्ञ के जरिये सारा मसला हल होगा, इसके लिए तो सरकार पर दबाव आना चाहिए। हमने कहा : ठीक है, अगर इसमें पूरा यश नहीं आया, तो भी सरकार पर दबाव आयेगा ही। इसलिए इस विषय में भी आपमें और हममें मतभेद होने का कोई कारण नहीं। सरकार पर दबाव लाने के जो भी प्रकार

हो सकते हैं, उनमें यह भी एक हो सकता है। भूदान-यज्ञ के जैसा जोरदार आन्दोलन चलने पर उससे जो वातावरण पैदा होगा, उसका प्रभाव सरकार पर भी पड़ेगा ही। उन्होंने कहा : यह बात ठीक है; परन्तु आप गरीबों से दान क्यों लेते हैं ? इस विषय में आपका और हमारा मतभेद है।

किन्तु बात यह है कि समाज के हर अंग को समाज के लिए कुछ-न-कुछ अर्पण करना ही चाहिए। जो दान को केवल दया का साधन मानते हैं, वे यह समझ ही नहीं सकते कि गरीबों से दान क्यों लिया जाता है ? वे तो मानते हैं कि दान श्रीमानों से ही लेना चाहिए। लेकिन जो लोग यज्ञ, दान और तप को समाज-शास्त्र का एक अंग समझते हैं, उनके ध्यान में यह बात आ जायगी कि इसमें गरीब और श्रीमान्, दोनों को कुछ करना चाहिए। दोनों समाज के अंग हैं, अवयव हैं, इसलिए दोनों को इसमें योग देना चाहिए। हाँ, यह ठीक है कि जिनके पास ज्यादा जमीन है, उनसे हम बहुत ज्यादा माँगेंगे और जिनके पास थोड़ी है, वे जो कुछ थोड़ा-सा दें, उसीसे हम संतुष्ट हो जायँगे। जिनके पास कुछ भी जमीन नहीं, वे श्रमदान देंगे। इस तरह हरएक को कुछ-न-कुछ देना होगा। जमीन, सम्पत्ति, श्रमशक्ति, बुद्धि, सब कुछ समाज का है, अपना नहीं। उसे समाज की सेवा में समर्पित करने से जो इनकार करेगा, वह समाज का अंग नहीं बन सकता। और, चूँकि गरीब लोग समाज के अंग हैं, इसलिए उन्हें समाज की सेवा में अपना कुछ-न-कुछ हिस्सा अर्पण करना ही चाहिए।

ग्राम-मन्दिर की नींव पर विश्व-कल्याण-मन्दिर

हमने कई बार कहा है कि यह हमारा भक्ति-मार्ग चल रहा है, लेकिन मुख्यतः यह समाज-शास्त्र का काम चल रहा है और भक्ति-मार्ग उसके साथ जुड़ गया है। भक्ति-शास्त्र कोई स्वतंत्र वस्तु है, ऐसा हम नहीं मानते। हम तो यही मानते हैं कि समाज-शास्त्र और मनुष्य-जीवन के साथ उसे जोड़ देना चाहिए। इसलिए भूतदया-परायण लोगों से भी हम कहते हैं कि आइये, इसमें हिस्सा दीजिये। जब लोग समझ जायँगे कि हमारा मुख्य विचार समाजशास्त्रीय है, तब उन्हें इस यज्ञ के लिए बड़ी ही स्फूर्ति, बड़ी ही प्रेरणा मिलेगी, जैसे कि हमें मिली

है। हम रोज घूमते हैं, जगह-जगह पर लोगों को समझाते हैं। हमें विश्वास है कि इससे यह बात बनेगी, क्योंकि हम जानते हैं कि 'भारतीय समाजशास्त्र' में मुख्य बात सारे गाँव का एक परिवार बनाना और सारे विश्व का एक कुटुम्ब बनाना है। यह काम हमें करना है। हम सारे गाँव का एक परिवार बनायेंगे, वह हमारी बुनियाद होगी और सारे विश्व का एक कुटुम्ब बनायेंगे; वह शिखर होगा। इस तरह विश्व-कल्याण का मन्दिर बनेगा। मन्दिर बनाने का आरम्भ होता है, तो बुनियाद से ही होता है, शिखर से नहीं। इसलिए गाँव की कुल जमीन और संपत्ति गाँव की होनी चाहिए। बुनियाद बनाने का यह काम हमें करना है और उसका आरम्भ छठा हिस्सा संपत्ति-दान तथा भूदान से होता है।

कम्युनिस्ट भूदानवाले बनेंगे

इस तरह अगर कम्युनिस्ट लोग भारतीय परिस्थिति और भारतीय संस्कृति का कुछ विचार करें, तो उनके ध्यान मे आ जायगा कि भारतवर्ष मे यह बहुत ही कारगर तरीका है। लेकिन इसके लिए जरूरी है कि अहिंसा पर बुनियादी विश्वास हो। आज अहिंसा के बारे में बहुत ज्यादा मतभेद की गुंजाइश नहीं। जब ऐटम बम और हाइड्रोजन बम बन गये, तब अहिंसा पर विश्वास रखे बगैर चारा ही नहीं। इसीलिए कम्युनिस्ट भाई भी आजकल विश्वशांति की बात करते हैं। कारण, हिंसा का विचार इनके आगे टिक नहीं सकता, ऐसी परिस्थिति निर्माण हुई है। वैसे कम्युनिस्ट लोग गरीबों के लिए प्रेम भी रखते हैं। अब अगर उन्हें अहिंसा की और विश्वशांति की बात समझ मे आ जाय, तो हम देखते हैं कि निकट भविष्य मे सब कम्युनिस्ट भूदानवाले बन जायेंगे। इसलिए हमारा जो मिशन है, उसके बारे मे हमे बहुत निष्ठा और विश्वास है।

बेगुनिया
५-४-'५५

मैंने देखा कि नयी तालीम से जो अपेक्षाएँ की जाती हैं, वे पूरी नहीं हो रही हैं। इसलिए शिक्षक और विद्यार्थियों में भी कुछ असन्तोष-सा है। आवड़ी में कांग्रेस ने नयी तालीम के बारे में प्रस्ताव किया। पण्डित नेहरू ने खुद उसे रखा। 'दस साल के बाद नयी तालीम ही सरकारी तालीम होगी', यह उसमें कहा गया है। इसलिए आज नयी तालीम के जो स्कूल चलते हैं, वे नमूने के होने चाहिए। तब उनसे जो अपेक्षा की जाती है, वह पूर्ण होगी और हिन्दुस्तान-भर में उनका अनुकरण होगा। नहीं तो कहेंगे कुछ, और चलेगा कुछ! आज के 'बेसिक बायस्ट स्कूल' इस तरह चलते हैं कि उन्हें नरसिंहावतार ही कहना होगा—न पूरा मानव, न पूरा पशु। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि हम लोग कुछ नमूने के विद्यालय चलायें। लेकिन इसके मानी क्या है, इस बारे में चित्त में सफाई होनी चाहिए।

दूषित कल्पनाएँ

बहुत-से लोग समझते हैं कि लड़कों को थोड़ा-सा उद्योग दिया, कुछ चरखा काता, तो नयी तालीम हो गयी। कुछ लोग समझते हैं कि ज्ञान की तरफ ज्यादा ध्यान नहीं दिया, तो नयी तालीम हो गयी और कुछ लोग समझते हैं कि ज्ञान का काम के साथ जोड़ बैठा दिया, तो नयी तालीम हो गयी। फिर वह जोड़ सहज रूप से बैठता है या नहीं, इस तरफ ध्यान देने की भी जरूरत नहीं। किन्तु ये तीनों कल्पनाएँ दूषित हैं।

उद्योग में प्रवीणता

नयी तालीम के विद्यार्थियों को कुछ थोड़ा-सा उद्योग देने से काम न चलेगा। नयी तालीम के लड़के तो उद्योग में इतने प्रवीण होंगे कि जैसे मछली पानी में तैरती है, वैसे ही काम करेंगे। हमारे लड़कों में यह हिम्मत आनी चाहिए कि

हम चार घण्टे उद्योग कर अपने पेट के लिए। कमा लेंगे नमूने के तौर पर थोड़ा-सा कातना-बुनना जान लिया, इतने भर से काम न चलेगा। कुछ लोग कह सकते हैं कि हमें उद्योग में प्रवीण होने की क्या जरूरत ? हम तो स्कूल में पढ़ानेवाले हैं। माँ छोटे बच्चों को सिखाती है कि खाना कैसे खाया जाता है। जब वे सीख जाते हैं, तो यह नहीं कहा जाता कि जब वे खाने की कला सीख गये, तो फिर उन्हें खाने की क्या जरूरत ? खाने का ज्ञान हुआ, इतने से काम पूरा नहीं होता, मनुष्य को हर रोज खाना मिलना ही चाहिए। साराश, जिस तरह मनुष्य के लिए खाना नित्य की चीज है, उसी तरह नयी तालीम के शिक्षकों को और लड़कों को भी नित्य चार घण्टे शरीर-परिश्रम करना चाहिए। उन्हें उद्योग में इतना प्रवीण होना चाहिए कि गाँव के बढ़ई, किसान आदि उनके पास सीखने आयें। औजारों में सुधार करने की कला भी उन्हें हासिल होनी चाहिए। उन्हें खेती का आचार्य बनना चाहिए। आज ग्रामोद्योग टूट गये हैं, इसलिए नयी तालीम के जरिये ग्रामोद्योगों को फिर से खड़ा करना है।

ज्ञान या तो सोलह आने या शून्य

नयी तालीम में पुस्तकों का महत्त्व नहीं है, इसलिए ज्ञान की उपेक्षा नहीं की जाती। अक्सर माना जाता है कि इसमें तो जितना सहज ज्ञान मिलेगा, उतना ही बस है। लेकिन यह खयाल गलत है। नयी तालीम में जीवन की सभी बुनियादी चीजों का पूरा ज्ञान होना चाहिए। लम्बा-चौड़ा इतिहास और निकम्मे राजाओं की नामावली याद रखने की कोई जरूरत नहीं है। उससे तो विद्यार्थियों के सिर पर नाहक बोझ लदता है। लेकिन जीवन के जो बुनियादी विचार हैं, जिनसे हमारा जीवन विकसित होता है, उनका ज्ञान जरूरी है। तत्त्वज्ञान, धर्म-विचार, नीति-विचार, इन सबकी जानकारी आवश्यक है। हमारे समाज की और दूसरे समाज की विशेषताएँ क्या हैं, इसका भी ज्ञान होना चाहिए। विज्ञान के मूलभूत विचार लड़कों को मालूम होने चाहिए। उन्हें आरोग्यशास्त्र, आहारशास्त्र, स्वच्छता, रसोईशास्त्र आदि का उत्तम ज्ञान होना चाहिए। इस तरह नयी तालीम में ज्ञान की कोई कमी न होनी चाहिए। भाषा का भी उत्तम ज्ञान होना चाहिए।

अपने विचार ठीक ढंग से प्रकाशित करने की कला मालूम होनी चाहिए। अक्षर सुन्दर होने चाहिए, साहित्य का ज्ञान होना चाहिए। इस तरह हमारी तालीम में ज्ञान की कमी नहीं होगी, लेकिन निकम्मा ज्ञान न होगा।

आजकल की युनिवर्सिटियों में विद्यार्थियों के सिर पर नाहक निकम्मे ज्ञान का बोझ डाला जाता है और कहते हैं कि ३३ प्रतिशत नम्बर मिले, तो पास होंगे। इसका मतलब है कि ६७ प्रतिशत भूलने की गुंजाइश रखी गयी है। वास्तविक ज्ञान में तो १०० प्रतिशत याद रहना चाहिए। जो रसोइया ८० प्रतिशत अच्छी रोटी बना सकता है, उसे कौन नौकरी देगा? ज्ञान में कच्चापन न होना चाहिए। ज्ञान या तो है या नहीं है, सोलह आना है या नहीं है। क्या यह हो सकता है कि कोई मनुष्य ८० प्रतिशत जिन्दा है और २० प्रतिशत मरा? अगर वह जिन्दा है, तो पूरा जिन्दा है और मरा है, तो पूरा मरा। फी-सदीवाली बात ज्ञान में नहीं चलती। ज्ञान तो पूरा और निश्चित होना चाहिए, संशययुक्त नहीं। लेकिन हमारे विश्वविद्यालयवालों ने ६७ प्रतिशत भूलने की गुंजाइश रखी है, क्योंकि वे भी जानते हैं कि निकम्मा ज्ञान सिखाया जाता है। नयी तालीम में इस तरह भूलने की गुंजाइश न होगी। जितना भी सिखाया जायगा, उतना सब याद रखने लायक होगा और विद्यार्थी सब याद रखेगा, क्योंकि वह ज्ञान जीवन में काम आयेगा। वास्तव में जो विद्या होती है, उसे मनुष्य भूलता नहीं और जिसे भूलता है, वह विद्या नहीं है। इस तरह नयी तालीम में हम ऐसी विद्या सिखायेंगे, जो भूली नहीं जायगी। नयी तालीम पाकर तो महाज्ञानी लोग निकलने चाहिए।

ज्ञान और उद्योग का समवाय

अब ज्ञान और काम का जोड़ बैठाने की बात लीजिये। हमने तो 'समवाय' शब्द बनाया है। जैसे मिट्टी और घड़ा। ये दोनों एक-दूसरे में इतने ओतप्रोत हैं कि उनका अलगाव ही नहीं बताया जा सकता और न अद्वैत ही। इस तरह जहाँ द्वैत और अद्वैत का निर्णय नहीं होता, उस सम्बन्ध को 'समवाय' कहते हैं। जिस शिक्षा-पद्धति में ज्ञान और उद्योग का समवाय होगा और हम बता न सकेंगे कि

इस समय ज्ञान चल रहा है या उद्योग, वही हमारी पद्धति होगी। ज्ञान और कर्म में फर्क नहीं किया जायगा। ज्ञान की प्रक्रिया चलती है, तो कर्म की भी प्रक्रिया चलेगी और कर्म की प्रक्रिया चलती है, तो ज्ञान की भी प्रक्रिया चलेगी। कर्म और ज्ञान एक-दूसरे से इतने ओतप्रोत होंगे कि किसी भी तरह का जोड़ बैठाने का काम न किया जायगा। बाहर से ज्ञान लेने की बात नहीं रहेगी। उद्योग के जरिये ही ज्ञान का विकास किया जायगा और ज्ञान के जरिये ही उद्योग का। यही हमारी पद्धति है। ज्ञान और कर्म की सिलाई कर जो पद्धति बनायी जायगी, वह हमारी नहीं होगी। हमारी पद्धति में तो ज्ञान और कर्म एक-दूसरे में ओतप्रोत रहेंगे।

नयी समाज-रचना ही लक्ष्य

नयी तालीम के बारे में जो गलतफहमियाँ हैं, उनके बारे में मैंने अभी कहा। अब एक महत्त्व की बात कहूँगा। नयी तालीम आज की समाज-रचना कायम रखकर नहीं दी जा सकती। आज की समाज-रचना के साथ नयी तालीम का पूरा विरोध है। अगर कोई कहे कि नयी तालीम तो तालीम का एक प्रकार है, उद्योग के जरिये तालीम देने की एक पद्धति है, तो ऐसा कहना गलत है। नयी तालीम तो नये समाज का ही निर्माण करेगी। आज की समाज-रचना में ही नयी तालीम को बैठाया जाय और शिक्षकों को तनख्वाह में कम-बेशी रहे, डिग्री के अनुसार तनख्वाह दी जाय, यह सब उसमें नहीं चलेगा। अगर नयी तालीम में ही शिक्षकों की तनख्वाह में फर्क रहा, तो 'स्टेट' में कैसे बदल होगा? आज तो 'स्टेट' का जो सारा यन्त्र बना है, उसमें योग्यता के अनुसार तनख्वाह दी जाती है, दर्जे बने हुए हैं। नयी तालीम इसे खतम कर देगी। अगर नयी तालीम का उसके साथ विरोध नहीं आता और नयी तालीम उसे नहीं तोड़ती, तो वह नयी तालीम ही नहीं। नयी तालीम में शरीर-परिश्रम और मानसिक परिश्रम की नैतिक और आर्थिक योग्यता समान मानी जायगी। इसका मतलब है कि आज की कुल आर्थिक रचना ही हमें बदलनी है और उसे बदलने के लिए ही नयी तालीम है।

राजसुनाखला (पुरी)
१७-४-'५५

सात अनमोल रत्न : २४ :

[यात्रा के बीच विनोबाजी ने चर्चा के सिलसिले में संक्षिप्त, किन्तु अर्थ-पूर्ण सात अनमोल उपदेश-रत्न प्रकट किये। ये सातों उपदेश भूदान यज्ञ की पूरी पार्श्वभूमि पर व्यापक प्रकाश डालते हैं।]

खिलाकर खाइये

उड़ीसा के जिन गाँवों में अपना सर्वस्वदान दे दिया गया है, वहाँ के गाँववालों ने अभी तक हमें देखा तक नहीं और न उन्हें देखने की जरूरत ही है। क्रांति तो तब होती है, जब कुल समाज देने को खड़ा होता है। हम जमीन माँगते हैं और जमीन पर पैदल चलते हैं, लेकिन हमारी श्रद्धा हवा पर ज्यादा है। यह हवा फैल जायगी, तो देखते-देखते काम पूरा हो जायगा। उसमें कोई गणित या हिसाब की बात न रहेगी। हिंदुस्तान का बच्चा-बच्चा जानता है कि हर मनुष्य में एक ही आत्मा विराजमान है। वह समझ लेगा कि जब सबमें एक ही आत्मा है, तो आत्मा के सिवा दूसरी कोई सत्ता नहीं हो सकती। सारी चिंता, सारे क्लेश, झगड़े, झंझट इसीलिए हैं कि हमने अपने सिर पर मालकियत उठा ली है। अगर हम उसे नीचे पटक दें, तो बड़े प्रेम से परमेश्वर की संतान बनेंगे और उसका दिया हुआ चारा खायेंगे, जैसे कि पक्षी खाते हैं।

इसके लिए कार्यकर्ताओं को जरा आत्मदर्शन की तरफ ध्यान देना चाहिए। इतना बुनियादी जीवन-परिवर्तन का कार्य केवल बाहरी विचार से नहीं हो सकता। हमें यही समझना और समझाना होगा कि एक ही आत्मा सारे मानव-समाज में व्यापक है, इसलिए सबको खिलाकर ही खा सकते हैं, पिलाकर ही पी सकते हैं, सबको सुखी बनाकर ही सुखी बन सकते हैं। दूसरों के सुख से ही हम सुखी हो सकते हैं, दूसरों के दुःख से दुःखी हो सकते हैं। दूसरों को दुःखी रखकर हम कभी सुखी नहीं हो सकते।

नैतिक और भौतिक उन्नति साथ-साथ !

अक्सर पूछा जाता है कि क्या नैतिक और भौतिक उन्नति साथ-साथ हो सकती है ? वास्तव में दोनों में कोई विरोध नहीं, बल्कि दोनों मिलकर एक ही चीज बनती है। दूसरे की मदद करना बहुत बड़ा धर्म-कार्य है, उससे चित्त-शुद्धि होती है। यह बात देश को भी लागू होती है। अगर हिन्दुस्तान दूसरे देशों को लूटकर अपने देश को संपन्न बनाने की बात सोचे, तो भौतिक उन्नति के साथ ही आध्यात्मिक पतन भी होगा। और जहाँ आध्यात्मिक पतन होगा, वहाँ भौतिक उन्नति भी ज्यादा दिन टिक न सकेगी। फिर देशों के बीच लड़ाइयाँ शुरू हो जायँगी और साथ-साथ भौतिक अवनति भी। इसके विपरीत भू-दान-यज्ञ के जरिये लोगों में सद्भावना निर्माण होगी, याने आध्यात्मिक उन्नति होगी। जब गरीबों में जमीन बँटेगी, तो वे उसमें से खूब फसल पैदा करेंगे याने भौतिक उन्नति होगी। मनुष्य अपने सांसारिक कर्म परमेश्वर को अर्पण करता जाय, तो भौतिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति भी होती है। यही भक्ति-मार्ग की खूबी है।

आत्मा व्यापक और निर्भय

आज के अखबार में इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री चर्चिल साहब के बारे में एक खबर थी। उन्होंने पार्लमेंट के सदस्यों के सामने एक सन्दूक रखकर कहा कि 'जिस देश के हाथ में इस पेटीभर 'प्लूटोनियम' आयेगा, वही देश सारी दुनिया पर शासन करेगा।' किन्तु हमें दो व्रत लेने होंगे, पहला यह कि अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को समाज में लीन करना और दूसरा यह समझना कि हम देह नहीं, आत्मा हैं। इसलिए कोई इस देह को तकलीफ दे, तो भी हम उसके वश न होंगे। भूदान-यज्ञ इन्हीं दो सिद्धान्तों पर खड़ा है—आत्मा व्यापक और निर्भय है। अगर हम इतना करेंगे, तो फिर चाहे किसी देश के हाथ में सन्दूकभर 'प्लूटोनियम' आ जाय, तो भी डरने का कोई कारण नहीं।

पंछियों का भी हक है

भूमि ईश्वर की देन है। उस पर मनुष्य का ही नहीं, पशु-पक्षियों का भी

अधिकार है। भारत का गरीब किसान भी इसे मानता है। एक बार एक गरीब विधवा बहन मुझे अपना दुःख सुनाने आयी। उसका इकलौता बेटा मर गया था। उसके पास एक खेत था, जिसमें वह खुद मेहनत कर फसल पैदा करती थी। लेकिन वह खेत की रक्षा नहीं कर पाती थी। चिड़ियाँ आकर सब खा जाती थीं। अपना दुःख सुनाते हुए उसने चिड़ियों की बात कही। कहते-कहते बोल उठी : 'चिड़ियों को भी तो भगवान् ने ही पैदा किया है। उनका भी खाने का अधिकार है।'

एक बार मैं सुबह घूमने जा रहा था। एक किसान पंछियों से खेत की रक्षा करता मचान पर बैठा था। सूर्योदय की बेला थी। मैंने देखा कि वह हाथ-पर-हाथ धरे बैठा था और चिड़ियाँ फसल खा रही थीं। जब मैंने उससे पूछा कि 'तू इन्हें उड़ाता क्यों नहीं?' तो वह फौरन बोला : 'अभी सूरज उग रहा है। यह राम-प्रहर है। अभी थोड़ी देर इन्हें खा लेने दीजिये। फिर उड़ाऊँगा।' हिन्दुस्तान की सभ्यता कितनी गहरी है, उसका दर्शन गरीब किसान के इस जवाब से होता है।

तीन बल

हमारे आन्दोलन के पीछे तीन बल हैं। पहला बल है, सत्य। यह सच है कि जमीन की मालकियत नहीं हो सकती, जमीन सबके लिए है। इसलिए जो काश्त करना चाहते हैं, उन्हें जमीन मिलनी चाहिए। यह केवल मानवीय सत्य नहीं, बल्कि ईश्वरीय सत्य है। ईश्वर ने जो सम्पत्ति दी है, उस पर उसके सब पुत्रों का समान अधिकार है। हमारा दूसरा बल है, भूमिहीन किसानों की तपस्या, जो रात-दिन खेतों में खटते रहते हैं, फिर भी जिन्हें मेहनत का पूरा फल नहीं मिलता। तपस्या कभी निष्फल नहीं जाती। तीसरा बल है, भूमिवानों के, श्रीमानों के, भारतवासियों के हृदय का प्रेम और उदारता। हमें विश्वास है कि वे हमारी माँग को पहचानेंगे। भले ही आज वे एक प्रवाह में बह रहे हों, फिर भी उनका हृदय अन्दर से बिगड़ा नहीं है। भारत में तो दान की एक महान् परंपरा ही रही है।

'मानपुर' का आस्ट्रेलिया पर आक्रमण

सर्वोदय-विचार की यही खूबी है कि वह जिसे जँच जाय, वह अकेला भी उस पर अमल कर सकता है। एक शख्स भी अन्याय का प्रतिकार करने के लिए सारी दुनिया के खिलाफ खड़ा हो सकता है। यही सत्याग्रह का तत्त्व है, जिसका उदय इस देश मे हुआ है। इन दिनों जब शस्त्र छोड़ने की बात चलती है, तो हर राष्ट्र यही कहता है कि सामनेवाला शस्त्र छोड़ेगा, तभी मैं छोड़ूँगा। इस तरह इधर शस्त्र बढ़ते जा रहे हैं और उधर शाति की बातें चलती हैं। यह दुष्ट चक्र (Vicious Circle) तभी टूट सकता है, जब कोई एक व्यक्ति, गाँव या समाज हिम्मत कर आगे बढ़े।

दुनिया का हर मनुष्य हर देश का नागरिक है, यह भारत का विचार है। भूदान का यह विचार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे फैलेगा, जिसका नेतृत्व यहाँ के गाँव करेंगे। इसीलिए मैं कहता हूँ 'मानपुर' (उड़ीसा का पहला ग्रामदान) का आक्रमण आस्ट्रेलिया पर होनेवाला है।

मथुरा में पैसा है, तो कंस भी

हम चाहते हैं कि हर गाँव गोकुल बने, गाँववाले सारे गाँव का एक परिवार मानकर प्रेम से, मिल-जुलकर रहें। गाँव की जमीन सबकी बन जाय, सब भाई-भाई बनकर काम करें और बाँटकर खायें। गाँव के सब बच्चों को खूब दूध, दही, मक्खन खाने को मिले, जैसे गोकुल के ग्वालबालों को मिलता था। आज गाँववाले खुद दूध, मक्खन आदि पैदा करते हैं, पर बच्चों को खिलाते नहीं और न खुद ही खाते हैं। वे उन्हें शहरों में जाकर बेच आते हैं। हम चाहते हैं कि दूध, मक्खन पहले अपने बच्चों को खिलाया जाय और बचा हुआ बेचा जाय। लेकिन आज आपको (गाँववालों को) दूध, मक्खन बेचना पड़ता है; क्योंकि आप कपड़े जैसी अपनी जरूरत की चीजें खुद नहीं बनाते। कपास पैदा करते हैं, परंतु उसे बेच देते और शहरवालों का बनाया मिल का कपड़ा खरीदते हैं। तिल्ली पैदा करते हैं, पर उसे बेचकर बाहर का तेल खरीदते हैं। गन्ना पैदा करते हैं, पर उसे बेचकर चीनी खरीदते हैं। होना तो यह चाहिए कि कपड़ा, तेल, गुड़

[अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी की बैठक में विनोबाजी का भाषण]

आप सब लोगों के दर्शन से मुझे अपार आनन्द हो रहा है। हिन्दुस्तान की जनता में बहुत कुछ बुद्धियुक्त भावनाएँ है, तो कुछ ऐसी भी हैं, जिनका बचाव बुद्धि से नहीं हो सकता, जिन्हें हम 'मूढ़-भावना' कह सकते हैं। ऐसी मूढ़-भावनाओं में एक भावना है, दर्शन-लालसा। हिन्दुस्तान की जनता दर्शन से तृप्त होती है। जनता की यह मूढ़-भावना मुझमें भी है। मुझे मित्रों के दर्शन से बहुत आनन्द होता है। खासकर किसी सज्जन के दर्शन होते हैं, तो मन में अत्यन्त तृप्ति महसूस होती है। कोई बहुत दिनों का प्यासा हो और पानी मिल जाय, तो उसे जैसे तृप्ति का आनन्द होता है, वैसे ही मुझे दर्शन से तृप्ति का आनन्द होता है। इसीलिए जब यह योजना हुई कि इस ब्रह्मपुर में आप लोगों के सामने कुछ बातचीत करने का मौका मुझे मिलेगा, तो मेरे मन में सबसे अधिक खुशी यही रही कि अब मित्रों से मिलने का सुअवसर आयेगा, दर्शन का मौका मिलेगा।

मैत्री की बातें

यह मेरा पहला ही प्रसंग है, जब कि इस महान् संस्था के बीच में बैठकर कुछ बातें करने का मौका मुझे मिला। यह एक भाग्य ही है, जो सहज प्राप्त हुआ है। इसलिए जो थोड़ी-सी बातें आप लोगों के सामने कहूँगा, वह मैत्री की भावना से कहूँगा। दुनिया में भिन्न-भिन्न पक्ष होते हैं। पंथ, जाति, भाषा आदि के भी भेद होते हैं, लेकिन मेरे मन में ऐसे किसी भेद की कोई कीमत नहीं। मैं मानव को मानव के नाते ही पहचानता हूँ। इसलिए आज आपसे मेरी जो बात होगी, वह मैत्री की होगी। इसी दृष्टि से आप उस पर चिन्तन करें।

दुनिया की बीमारी का मूल-शोधन आवश्यक

आप जानते हैं कि इस समय दुनिया की दशा डाँवाँडोल है। मैं तो इसे एक बीमार की हालत की उपमा देता हूँ, जिसका रोज 'टेम्परेचर' लिया जाता

आदि चीजें गाँव में ही बनें। आज आप कपड़ा बनाते नहीं, इसलिए कपड़ा खरीदने के लिए पैसा चाहिए। पैसा कहाँ से आये ? लाचार हो पैसे के लिए दूध, मक्खन बेचना पड़ता है। अगर आप अपना कपड़ा खुद बना लेंगे, तो आपको मक्खन बेचना न पड़ेगा।

आज हर किसान पैसे के पीछे पड़कर अपनी अच्छी-से अच्छी चीजें बेचता है। मथुरा मे यही झगड़ा नित्य होता था। कृष्ण भगवान् यशोदा मैया से कहते कि 'मक्खन सब बच्चों को खाने के लिए है', तो यशोदा मैया उन्हें समझातीं : 'बेटा ! मक्खन खाने की चीज नहीं, बेचने की चीज है। मथुरा जाकर मक्खन बेचूँगी, तो पैसा मिलेगा।' इस पर कृष्ण भगवान् माँ से कहते : 'मथुरा में पैसा है, तो कंस भी है। क्या तू कंस को पसंद करती है ? अगर पैसा चाहिए, तो कंस को भी मानना पड़ेगा। हम भी गाँववालों को यही समझाते हैं कि पैसे की माया में मत पड़ो। खूब दूध, घी, फल, तरकारियाँ पैदा करो। बच्चों को खिलाओ, खुद खाओ और फिर बचा हुआ बेचो। आज तो आप शहरों में दूध, मक्खन बेचने जाते हो, तो शहरवाले चाहे जितने कम दाम में आपसे उन्हें खरीद लेते है, क्योंकि चार छह मील चलकर शहर के बाजार मे जाने पर आप बिना बेचे तो वापस नहीं आ सकते। लेकिन गाँव का परिवार बनाओगे, गाँव में उद्योग खड़े करोगे, मिल-जुलकर रहोगे, तो फिर शहरवाले खुद होकर आपके पास दूध, घी माँगने आयेंगे। फिर आप उनसे कहेंगे कि 'चाहे जितने पैसे दोगे, तो भी आपको मक्खन नहीं देंगे, वह तो हमारे बच्चों के खाने के लिए है।' फिर वे बहुत आग्रह करेंगे, तो भी आप उनसे कहेंगे कि 'सिर्फ बचा हुआ आधा सेर मक्खन मिल सकता है और वह भी दस रुपये सेर के दाम से।' इस तरह हमारा विचार समझकर उस पर अमल करोगे, तो आपकी ताकत बढ़ेगी और आप सुखी होंगे।

[अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी की बैठक में विनोबाजी का भाषण]

आप सब लोगों के दर्शन से मुझे अपार आनन्द हो रहा है। हिन्दुस्तान की जनता में बहुत कुछ बुद्धियुक्त भावनाएँ है, तो कुछ ऐसी भी हैं, जिनका बचाव बुद्धि से नहीं हो सकता, जिन्हें हम 'मूढ़-भावना' कह सकते हैं। ऐसी मूढ़-भावनाओं में एक भावना है, दर्शन-लालसा। हिन्दुस्तान की जनता दर्शन से तृप्त होती है। जनता की यह मूढ़-भावना मुझमें भी है। मुझे मित्रों के दर्शन से बहुत आनन्द होता है। खासकर किसी सज्जन के दर्शन होते हैं, तो मन में अत्यन्त तृप्ति महसूस होती है। कोई बहुत दिनों का प्यासा हो और पानी मिल जाय, तो उसे जैसे तृप्ति का आनन्द होता है, वैसे ही मुझे दर्शन से तृप्ति का आनन्द होता है। इसीलिए जब यह योजना हुई कि इस ब्रह्मपुर में आप लोगों के सामने कुछ बातचीत करने का मौका मुझे मिलेगा, तो मेरे मन में सबसे अधिक खुशी यही रही कि अब मित्रों से मिलने का सुअवसर आयेगा, दर्शन का मौका मिलेगा।

मैत्री की बातें

यह मेरा पहला ही प्रसंग है, जब कि इस महान् संस्था के बीच में बैठकर कुछ बातें करने का मौका मुझे मिला। यह एक भाग्य ही है, जो सहज प्राप्त हुआ है। इसलिए जो थोड़ी-सी बातें आप लोगों के सामने कहूँगा, वह मैत्री की भावना से कहूँगा। दुनिया में भिन्न-भिन्न पक्ष होते हैं। पंथ, जाति, भाषा आदि के भी भेद होते हैं, लेकिन मेरे मन में ऐसे किसी भेद की कोई कीमत नहीं। मैं मानव को मानव के नाते ही पहचानता हूँ। इसलिए आज आपसे मेरी जो बात होगी, वह मैत्री की होगी। इसी दृष्टि से आप उस पर चिन्तन करें।

दुनिया की बीमारी का मूल-शोधन आवश्यक

आप जानते हैं कि इस समय दुनिया की दशा डावाँडोल है। मैं तो उसे एक बीमार की हालत की उपमा देता हूँ, जिसका रोज 'टेम्परेचर' लिया जाता

और जिसकी हालत के विषय में शंकाकुल मन से पत्रक निकाले जाते हों। किसी दिन अच्छा पत्रक निकला, तो चिन्ता कुछ कम हो जाती है और किसी दिन खराब निकला, तो चिन्ता बढ़ती है—ऐसी हालत आज दुनिया की है। दुनिया के महापुरुषों को इस बात की बड़ी चिन्ता है कि यहाँ (दुनिया में) अशान्ति की ज्वाला प्रकट न हो। इसलिए उनकी कोशिशें हो रही हैं और उन्हें कुछ यश भी मिल रहा है, यह खुशी की बात है। किन्तु इस रोगी का जो रोग है, वह एक बुनियादी या मूलभूत रोग है। ऊपर-ऊपर की दवा से चाहे रोगी को थोड़ी देर के लिए कुछ सांत्वना, कुछ राहत मिले, पर उस रोग से तब तक मुक्ति नहीं मिल सकती, जब तक इस मूल रोग के परिहार का उपाय न ढूँढ़ा जाय।

अहिंसा निर्भयता का पर्याय

दुनिया में बहुत ताकतें बढ़ रही हैं। विज्ञान के युग ने न केवल मनुष्य के हाथ में शक्ति दी, बल्कि शक्तियों के हाथ में मनुष्य को भी दे दिया है। मनुष्य शक्ति का इस्तेमाल करे, यह एक हालत है। लेकिन शक्ति ही मनुष्य को नचाये, उन पर मनुष्य का काबू न चले, उनका ही मनुष्य पर काबू चले, यह दूसरी हालत है। आज दुनिया इसी दूसरी हालत में पहुँची है। शायद यह कहना अत्युक्ति न होगी कि जहाँ तक हम जानते हैं, मानव के इतिहास में यह पहला ही मौका है, जब कि दुनिया में इतने बड़े पैमाने पर भय-भावना फैली हुई हो। हम लोगों ने माना है कि लोगों को सुख हो, उन्हें सब प्रकार की सहूलियतें हासिल हों, कुछ गुण भी हों, लेकिन सबसे बढ़कर चीज जनता में अभय होना है। आज सर्वत्र अभय का अभाव दीख रहा है, सारी दुनिया भयभीत है। उसकी यह भयभीतता न मिटेगी, अगर मानव में निर्भयता पैदा न हो। और वह निर्भयता भी शस्त्रास्त्र बढ़ा-बढ़ाकर नहीं हो सकती। बिल्ली चूहे के सामने शेर साबित होती है, लेकिन कुत्ते के सामने तो बिल्ली ही बन जाती है। शेर भी खरगोश के सामने शेर साबित होता है, लेकिन कोई बन्दूकवाला मिल जाय, तो उसके सामने बिल्ली बन जाता है—भाग जाता है। सारांश, निर्भयता नाखूनों और दाँतों के आधार पर नहीं होती, वह तो आत्मिक आधार पर होती है। यह

उसी आत्मिक शक्ति से आयेगी, जिसे हम मर्यादित भाषा में 'नैतिक शक्ति' या अधिक स्वच्छ और स्पष्ट भाषा में 'अहिंसा की शक्ति' कह सकते हैं। अहिंसा का निर्भयता के साथ गहरा सम्बन्ध है, दोनों एकरूप ही हैं। अगर कोई अहिंसक दीख पड़े—चाहे ऊपर से हिंसा करता हुआ न दीखे—लेकिन उसके मन में डर हो, तो वह अहिंसक है ही नहीं। अहिंसा निर्भयता का पर्याय है। इसके विपरीत कोई वीर पुरुष दीख पड़ता हो, शस्त्रों के आधार पर उसकी वीरता का प्रदर्शन हो रहा हो, फिर भी वह कायरता ही है। वह आत्मा के अन्दर शक्ति महसूस नहीं करता, इसीलिए शस्त्रों का आधार लेता है।

निर्भयता के लिए मन-परिवर्तन जरूरी

दुनिया को निर्भय बनाने के लिए हमें अपने को निर्भय बनाना होगा। यह कार्य शस्त्र-संहार बढ़ाने की दिशा में जाने से नहीं हो सकता, बल्कि उससे उल्टी दिशा में जाने से ही होगा। 'उल्टी दिशा में जाने' का अर्थ कोई अगर इतना ही करे कि 'हमें शस्त्रास्त्रों के त्याग का कार्यक्रम शुरू करना होगा', तो वह ठीक नहीं। शस्त्रास्त्र-त्याग के उस बाह्य कार्यक्रम से निर्भयता नहीं आयेगी। निर्भयता के लिए मनुष्य के अभी तक बने मन में बदल करना होगा। अगर हम आज की मनोवृत्तियों को प्रमाण मानकर चलें, तो आजकल के युग में निर्भयता नहीं ला सकते हैं। तब तो हम विवश और व्याकुल रहेंगे। हमारी व्यवस्था डाँवाँडोल रहेगी। इसलिए हमें मन में ही परिवर्तन लाना होगा, नया मानव बनाना होगा, नये मूल्यों की स्थापना करनी होगी और अपना जीवन बदलना होगा।

नया शब्द और जीवन में परिवर्तन

मैंने सुना कि आवड़ी में एक प्रस्ताव हुआ और एक शब्द Socialistic patern of Society मिल गया, तो मुझे खुशी हुई कि जिन लोगों को शब्द की आवश्यकता थी, जो अपने को शब्द विहीन महसूस करते थे, उन्हें शब्द मिल गया; अब शक्ति बढ़ेगी। लेकिन इस शब्द से शक्ति बढ़ती है या नहीं, बढ़ेगी या नहीं बढ़ेगी—इसका प्रमाण तो यही होगा कि इस शब्द के उच्चारण के बाद इसे उच्चारण करने या मान्य करनेवालों ने अपने जीवन में कुछ परिवर्तन करना

शुरू किया या नहीं। इस प्रस्ताव के पहले मेरा जो जीवन था, वही अगर प्रस्ताव के बाद भी जारी रहा, तो मैं आशा नहीं कर सकता कि इस शब्द से हिन्दुस्तान और दुनिया में कोई चमत्कार हो सकेगा। तब तो यह एक ऐसा शब्द होगा, जो प्रचलित स्थिति में अपने को जमा लेगा, उसका अर्थ हमें बचानेवाला साबित न होगा। दुनिया में कुछ ऐसे शब्द होते हैं, जो मानव को बचा लेते हैं, पर निर्भय नहीं बनाते। वैसा ही यह भी एक शब्द हो जायगा। चाहे इससे दुनिया में सुख की प्रेरणा निर्माण हो, कुछ सुख बढ़े, लेकिन यह निर्भय नहीं बना सकता। इसलिए हमारा पहला कार्यक्रम होगा, हमारे मन में परिवर्तन और दूसरा कार्यक्रम होगा, हमारे जीवन में परिवर्तन। मैंने तो एक सादी-सी कसौटी अपने सामने रखी है और मानता हूँ कि उसी कसौटी पर हमें अपने को कस लेना होगा। मैं अपने को पूछूँगा कि जब से यह शब्द आया, तब से मेरे जीवन में कितना फर्क पड़ा? मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मैं ऐसा हूँ, जिसका जीवन बदलने के लिए इस शब्द की कोई आवश्यकता नहीं है। मेरा जीवन परिपूर्ण है और इस शब्द के आने-जाने से उसमें कोई फर्क करने की जरूरत नहीं। अगर एक नया शब्द मिला है, तो मेरे जीवन में फौरन परिवर्तन होना चाहिए। यह एक कसौटी मैं मानता हूँ। फिर उस शब्द का असर दुनिया पर हो सकता है।

हमारी कसौटी स्वयंशासन

आज हिन्दुस्तान में बहुत-से लोग कहते हैं कि हम शान्ति चाहते हैं। हमारे नेता शान्ति के पक्ष में बोलते हैं, इसका हम गौरव महसूस करते हैं, और वह उचित भी है। माना जाता है कि हिन्दुस्तान शान्ति के पक्ष में है। हमारे राजाजी जैसे नीतिविशारद और तत्त्वज्ञानी महान् पुरुष हिम्मत के साथ दुनिया के सामने कुछ बातें रख रहे हैं। दुनिया से कह रहे हैं कि उसे किस दिशा में जाना होगा, क्या करना होगा? लेकिन हमें सोचना चाहिए कि क्या हम अपने देश में वह ताकत पैदा करने की दिशा में काम कर रहे हैं, जिससे समाज-जीवन से हिंसा मिटेगी और समाज-जीवन का आधार अहिंसा होगा? इसकी कसौटी यही होगी कि समाज के लोग स्वयं शासित होंगे। कुछ विचारों का शासन कबूल करेंगे और

अपने को उस शासन में रखेंगे। स्वयं शासित होने की दिशा में हम लोग कदम बढ़ा रहे हैं या नहीं, यही हमारी कसौटी मानी जायगी।

आक्रमणकारी अहिंसा

आज अमेरिका के मन में रूस के लिए कुछ डर है और रूस के मन में कुछ डर है अमेरिका के लिए। हमारे मन में कुछ डर है पाकिस्तान के लिए और पाकिस्तान के मन में कुछ डर है हमारे लिए। सारांश, क्या छोटे और क्या बड़े, सभी देश एक-दूसरे से डर रखते हैं। तब क्या कोई देश अपनी ओर से निडर बन सकता है? हाँ, हो सकता है। जैसा कि राजाजी ने कहा है कि "यूनी-लेटरल ऐक्शन" याने अपनी तरफ से आक्रमणकारी अहिंसा, हम अहिंसा का आक्रमण करें। जैसे हिंसा का आक्रमण होता है, वैसे ही अहिंसा का भी हो सकता है। आज नहीं, तो कम-से-कम दस साल के अन्दर 'सारे शस्त्रास्त्रों का परित्याग कैसे हो' इस दिशा में हम अपने देश को ले जा सकते हैं—ऐसी हिम्मत हम अपने देश में ला सकते हैं। उस दिशा में काम कर हम दुनिया के सामने मार्ग खोल सकते हैं। हमारी नैतिक शक्ति से दुनिया में शान्ति की स्थापना हो सकती है।

विज्ञान की दिशा

हम नहीं समझते कि विज्ञान की खोजों को रोका जा सकेगा। उन्हें रोकने की जरूरत है, ऐसा भी हम नहीं समझते। हम इतना ही मानते हैं कि वह नैतिक शक्ति के मार्ग-दर्शन में रहे। विज्ञान एक शक्तिमात्र है, उसमें बुद्धि नहीं है। शक्ति को बुद्धि के ताबे में रहना चाहिए। यह योजना हो जाय, तो शक्तियाँ चाहे कितनी ही बढ़ें, उससे कोई खतरा नहीं हो सकता, बल्कि लाभ ही पहुँचता है। हम अहिंसा इसीलिए चाहते हैं। जहाँ तक मेरा ताल्लुक है, दस साल से मेरा जप चल रहा है कि अहिंसा के खिलाफ अगर कोई चीज खड़ी है, तो वह हिंसा नहीं, हमारे मन की भयभीत अवस्था है। इस भय को हम नष्ट करेंगे, तो अहिंसा पनपेगी। विज्ञान के इस युग में दो ही रास्ते हैं, या तो हम विज्ञान बढ़ायें या उसे रोकें। अगर हम विज्ञान को रोकना चाहते हों, तो कुछ थोड़ी हिंसा चल भी सकती है।

वैसे हर हालत में हिंसा से नुकसान तो होता ही है, फिर भी पुराने जमाने में उससे कुछ लाभ भी होते थे। क्योंकि उस समय हिंसा सीमित थी, उसका पैमाना दूसरा था। उस समय विज्ञान इतना बढ़ा नहीं था, इसलिए उस समय के साधु पुरुष भी हिंसा का उपयोग कर लेते थे। हिंसा का दुनिया के हित में प्रयोग करनेवाले कई साधु पुरुष हो गये हैं। किन्तु अगर हम आज विज्ञान को बढ़ाना चाहते हैं, तो हिंसा को रोकना ही पड़ेगा। विज्ञान तो हर हालत में बढ़ेगा ही; लेकिन अगर हम हिंसा को रोकेंगे, तो वह लाभकारी दिशा में बढ़ेगा। नहीं तो विनाशकारी दिशा में जा पहुँचेगा।

एक ही रास्ता

इसलिए हमें नैतिक शक्ति बढ़ानी होगी। परमेश्वर ने हिन्दुस्तान की हालत ऐसी की है कि यहाँ नैतिक शक्ति ही बढ़ सकती है, दूसरी शक्ति नहीं। हमारे इतिहास और सभ्यता ने हमें कुछ शक्ति दी है, कुछ मर्यादाएँ भी पैदा की हैं। उन्हें और हिन्दुस्तान की जन-संख्या देखते हुए हम कह सकते हैं कि आज की हालत में हिन्दुस्तान को या तो नैतिक शक्ति बढ़ानी चाहिए या तो निस्तेज हो जाना चाहिए। हमारे सामने यही रास्ता है। इसीलिए मैं बार-बार कहता हूँ कि हमें नैतिक शक्ति बढ़ानी होगी, उस दिशा में काम करना होगा। हम कोई ग्रन्थ पढ़ते हैं, कई शब्दों का जप करते हैं। इससे कुछ मानसिक बल मिल सकता है। परन्तु उतने से काम नहीं होगा। काम तो तब होगा, जब हमारे समाज के अत्यन्त महत्त्व के बड़े-बड़े मसले हल हों, जिनके हल के बिना मानवता उठ नहीं सकती है। ऐसे मसले हमें शान्ति के तरीके से, प्रेम से या अहिंसा की ताकत से हल करने चाहिए।

भूदान का इतिहास

इसी बारे में सोचते सोचते यह भूदान-यज्ञ मुझे सूझा। अवश्य ही यह बात सहज ही सूझ गयी, लेकिन उस बारे में वर्षों से मेरा चिन्तन चलता रहा। मैं अभी उसका थोड़ा-सा इतिहास कहूँगा। गांधीजी के प्रयाण के बाद मैं शरणा-

र्थियों और मेव लोगों की सेवा के लिए दिल्ली पहुँचा। वहाँ कुछ अनुभव आये। पश्चिम पाकिस्तान से जो शरणार्थी आये, उनमें हरिजन भी बहुत थे। हरिजनों ने जमीन की माँग की। उन्हें जमीनें मिलनी चाहिए, इस बारे में कुछ चर्चा हुई। उनकी माँग मंजूर नहीं हो रही थी। आखिर पंजाब सरकार की तरफ से आश्वासन दिया गया कि हम हरिजनों के लिए कुछ लाख एकड़ जमीन देंगे। यह आश्वासन राजेन्द्र बाबू और दूसरे सज्जनों के समक्ष दिया गया, जिनमें मैं भी एक था। वह शुक्रवार का दिन था। उसके बाद मुझे प्रार्थना के लिए राजघाट पर जाना था। वहाँ मैंने जाहिर किया कि बहुत खुशी की बात है कि पंजाब की सरकार ने हरिजनों के वास्ते जमीन देना मान्य किया है। इसलिए मैं पंजाब की सरकार का अभिनन्दन करता हूँ।

किन्तु उसके एक-दो महीने बाद दूसरी ही बात सुनने को मिली कि यह नहीं हो सकता। इसके कई कारण होंगे, लेकिन हरिजन इससे बहुत दुःखी हुए। रामेश्वरी नेहरू को तीव्र वेदना हुई। वह मेरे पास आकर कहने लगीं कि हरिजन सत्याग्रह करना चाहते हैं, तो क्या उन्हें सत्याग्रह करने देना चाहिए? उन्हें जमीन न देने में यह दलील दी गयी थी कि 'पाकिस्तान से जो शरणार्थी आये हैं, उनमें जिनके पास वहाँ जमीन नहीं थी, उन्हें यहाँ भी वह नहीं दी जा सकती। जिस नमूने पर वे वहाँ रहते थे, उसी नमूने पर यहाँ रह सकते हैं। वैसे हमारे पास जमीन ही कम है। इसलिए उनके पास वहाँ जितनी जमीन थी, उतनी तो हम यहाँ नहीं दे सकते हैं, कुछ कम ही देंगे। इसलिए जिन हरिजनों को वहाँ बिल्कुल जमीन नहीं थी, उन्हें जमीन देना एक प्रकार का अन्याय होगा।' यह दलील बलवान् थी या दुर्बल, इसमें मैं न पड़ूँगा। परन्तु इतना तो सच ही है कि जो एक वादा किया गया, वचन दिया गया, वह टूट गया। मैं सोच में पड़ गया। मैंने हरिजनों से कहा कि देश की आज की हालत में मैं आपको सत्याग्रह करने की सलाह नहीं दे सकता। आपको इस मसले पर मैं अभी मदद नहीं पहुँचा पाता, इसका मुझे दुःख है। लेकिन मेरे मन में यह बात, यह सुप्त भावना रही कि कोई ऐसी युक्ति सूझनी चाहिए, जिससे बेजमीनों को जमीन मिले। इसी प्रसुप्त-भावना को तेलंगाना में मौका मिल गया और एक आन्दोलन आरंभ हो गया।

भूदान से देश की नैतिक शक्ति बढ़ेगी

यह एक ऐसा मसला है, जो बहुत ही बुनियादी है। हिन्दुस्तान के लिए तो है ही, लेकिन एशिया के दूसरे देशों में भी है। ऐसे मसले को अगर हम अहिंसात्मक तरीके से कुछ हल कर सकें, तो उससे अहिंसा की ताकत, नैतिक शक्ति बढ़ेगी। इसी दृष्टि से मैंने इसकी तरफ देखा है। इसके कई पहलू हैं। यह एक पेचीदा सवाल है। इसमें आर्थिक सवाल भी आते हैं। मैं आहिस्ता-आहिस्ता उनका चिन्तन करता गया। देखा, भूदान-यज्ञ से बेजमीनों को जमीन मिलती है, एक मसला हल होता है। इस काम का जितना महत्त्व है, उससे बहुत ज्यादा महत्त्व इस बात का है कि एक तरीका हाथ में आया। अहिंसा की शक्ति निर्माण करने की एक युक्ति हमारे हाथ में लगी। इस युक्ति को हाथ से जाने न देना चाहिए, उसका पूरा उपयोग कर लेना चाहिए। इससे अहिंसा की शक्ति पर विश्वास बैठेगा और उसके परिणामस्वरूप हिन्दुस्तान में आत्म-विश्वास, आत्म-निष्ठा पैदा होगी। फिर दुनिया पर उसका असर हो सकेगा। फिर हम हिम्मत के साथ कह सकेंगे कि भारत की नैतिक शक्ति का दुनिया को बचाने में उपयोग होगा। इसी दृष्टि से इस काम की ओर देखिये।

मैं बार-बार कहता हूँ, मेरे सामने एक दृश्य ही है—जैसे मैं आँख से देखता हूँ। इसलिए कहता हूँ कि अभी हमारे सामने दो साल की अवधि पड़ी है। इन दो सालों में भूमि के मसले का कुछ हल हो जाय, एक सूरत पैदा हो जाय। जैसा मैंने कहा कि छठा हिस्सा जमीन हासिल हो, यह ज्यादा माँग नहीं है। इतना अगर हो जाय, तो उससे हमारी ताकत बढ़ेगी। और किसी विचार से इसकी तरफ मत देखिये। इसमें अपने पक्ष के लिए क्या लाभ हो सकता है, व्यक्तिगत लाभ क्या हो सकता है, इस तरह न देखते हुए केवल सेवा की भावना से देखिये। इससे अहिंसा की शक्ति बढ़ेगी, विश्व शान्ति में मदद मिलेगी, ऐसी भावना से देश की सारी ताकतें दो साल के लिए इसमें लगाइये। मान लीजिये कि दो साल में हम इस मसले का हल निकाल लेते हैं, तो सारी दुनिया कबूल करेगी कि अहिंसा की शक्ति का सामाजिक क्षेत्र में आविर्भाव हो गया। उसके परिणाम-स्वरूप हिन्दुस्तान के दूसरे मसले भी हल हो सकते हैं।

भूदान से नया उत्साह

इन दिनों हमारे जो भाई रचनात्मक काम में लगे हैं और मेरी सलाह लेते हैं, तो मैं उनसे कहता हूँ कि यह सारे रचनात्मक काम तो शाखा-पाण्डित्य है, टहनियाँ हैं और यह मूलग्राही विचार है। इस जड़ को हम पकड़ रखेंगे, तो इसके आधार से बाकी के सारे रचनात्मक काम और सर्वोदय-विचार फैलेंगे, फूलेंगे। नहीं तो चार साल पहले सारे रचनात्मक काम करनेवालों में मायूसी फैल गयी थी, यह आप जानते ही हैं। वे समझे थे कि इससे कुछ नहीं होगा। गांधीजी का विचार अभी हमारे सामने तो खतम हो गया। आगे कभी वह आ जाय, तो आ सकता है, परन्तु अभी हमारे हाथ से कुछ नहीं होगा। कुछ लोगों ने तो हमसे यहाँ तक कहा कि 'हम यह प्रार्थना वगैरह न छोड़ेंगे, क्योंकि आदत बनी है; लेकिन हम समझ गये हैं कि ये चीजें हिन्दुस्तान में न चलेंगी।' लेकिन आज चार साल के बाद मैं देखता हूँ कि मायूसी नहीं रही है और देश में उत्साह आ गया है। अगर हम इस उत्साह का ठीक उपयोग करें और इस दृष्टि से इस ओर देखें, तो हम समझते हैं कि इससे देश में एक बड़ी चीज बनेगी।

दान-पत्र विश्व-शान्ति के लिए वोट

मैंने जब यह कहा कि 'जो भूदान में प्रेम से और समझ-बूझकर जमीन देगा, उसका दान विश्व-शान्ति के लिए वोट होगा—वह विश्व-शान्ति में मदद करेगा', तो एक अखबार ने उस पर टीका करते हुए लिखा : "कभी-कभी विवेकी पुरुष का भी विवेक छूट जाता है और वे उत्साह में आकर या आन्दोलन के प्रवाह में बहते हुए कुछ ऐसी बातें बोलने लगते हैं। विनोबा ने कहा है कि भूदान से विश्व-शान्ति स्थापित हो सकती है। पर विश्व-शान्ति के साथ भूदान का सम्बन्ध ही क्या है ? यह तो ऐसी ही बात हुई कि जैसे गांधीजी ने कहा था कि अरे कम-अक्लो, यह जो भूकम्प हुआ, वह तुम्हारे और हमारे पाप का फल है और वह पाप है अस्पृश्यता। इसलिए उसे मिटाना हमारा कर्तव्य है। जैसे गांधीजी ने भूकम्प के साथ अस्पृश्यता को जोड़ दिया, उसी कोटि का विनोबा का यह वाक्य है।" उस भूकम्पवाली बात में मैं नहीं पड़ना चाहता। उसमें भी कोई रहस्य

है या नहीं, यह एक गहरा विचार है। फिर भी मैं यह नम्रता के साथ कहना चाहता हूँ कि मेरी मिसाल उस भूकम्प वाली मिसाल की कोटि की नहीं।

भारत की शक्ति : नैतिक शक्ति

तो, अब हिन्दुस्तान मे आशा पैदा हुई है। एक तो हिन्दुस्तान का इतिहास और फिर गांधीजी ने हमें जो तरीका सिखाया वह तरीका, जिससे हमारी स्वराज्य-प्राप्ति आदि सब जानी हुई बातें हैं! वैसे आजादी की लड़ाइयाँ दुनिया के दूसरे देशों में भी लड़ी गयीं, पर हमारा अपना एक ढंग था। फिर परमेश्वर की कृपा से हमें जो नेतृत्व उपलब्ध हुआ, उन सबकी बदौलत हिन्दुस्तान की आवाज आज भी दुनिया में कुछ काम करती है। हम यह नहीं कहते कि दुनिया को आकार देने की शक्ति हममें है और ऐसा अहंकार रखना भी नहीं चाहिए, परन्तु यह स्पष्ट है कि आज हिन्दुस्तान की आवाज कुछ काम कर रही है। वह नैतिक आवाज ही है। नहीं तो हिन्दुस्तान में आज कौन-सी शक्ति है? भौतिक-शक्ति हमारे पास क्या है? हमारी सेना कितनी छोटी है। दूसरे बड़े-बड़े देशों के पास जो सारा शस्त्र-सभार है, उसकी तुलना में हमारी कोई शक्ति ही नहीं। आज हिन्दुस्तान के पास बड़ी दौलत भी नहीं है। हाँ, धीरे-धीरे बढ़ सकती है। कुल मिलाकर हमारे पास न भौतिक शक्ति है और न दौलत, उस हालत में भी अगर हमारी कुछ-न-कुछ आवाज सुनाई देती है, तो इसका कारण सिवा इसके क्या हो सकता कि यहाँ नैतिक शक्ति का थोड़ा-सा आविर्भाव हुआ। वह शक्ति बहुत बढ़ेगी, अगर हम यह अहम मसला शान्ति के तरीके से हल करें।

दुनिया की आँखें भारत की ओर

आखिर दुनिया के लोग इस काम को देखने के लिए क्यों आते हैं? मैंने तो कभी कुछ प्रचार नहीं किया! न मैंने कभी अंग्रेजी में कुछ लिखा और न विदेश के साथ मेरा कुछ पत्र-व्यवहार चला, लेकिन "अब तो बात फैल गयी!" क्यों फैल गयी? इसीलिए कि इसमें एक ऐसी चीज है, जिसमें दुनिया आश्वासन पाती है। आज दुनिया प्यासी है। आज दुनिया के दूसरे मुल्कों में भी ऐसे मसले पड़े हैं। वे बिना शस्त्र के हल नहीं हो सकते, ऐसी मान्यता हरएक देश में है। अशान्ति

तो कोई नहीं चाहता, फिर भी सब देश लाचार हो शस्त्रास्त्र बढ़ा रहे हैं। इससे छूटने की कोई तरकीब हाथ आये, तो दुनिया उसे चाहती है। इसीलिए उसे शका हो रही है कि संभव है, भूदान में से ऐसी ताकत निकल पड़े। अभी तो यहाँ कोई बड़ा काम नहीं हुआ, जरा-सा ही हुआ है। लेकिन जो हुआ, वह एक विशेष ढंग से हुआ है। इसलिए दुनिया सोचती है कि शायद इसमें कोई गर्भित शक्ति (पोटेन्सियल) हो। इसलिए अगर आप-हम सब भाई-भाई इसे हाथ में लें, लोगों के पास पहुँचें और प्रेम से जमीन माँगें, तो कितना काम होगा। हमें किसीको धमकाकर नहीं माँगना है, प्रेम से ही माँगना है। मैंने एक-दो जगह पर धमकाने की बात सुनी, तो कहा कि धमकाने से ही काम हो जाता, तो उसके लिए हमारी क्या जरूरत है ? वह करनेवाले बहादुर तो दुनिया में बहुत पड़े हैं। उसके लिए हमें गाँव-गाँव घूमने की क्या जरूरत है ? इसलिए हमें तो लोगों को प्रेम से समझाना और कहना चाहिए कि इससे विश्व-शान्ति की स्थापना होगी, विश्व-शान्ति के लिए छठा हिस्सा दान दो।

दान पूर्ण विचार से ही ग्राह्य

इस तरह जरा दूर की, विश्व-व्यापक दृष्टि रखेंगे, तो काम होगा। फिर आज जो छोटी-छोटी बातें, पक्ष-भेद चलते हैं, उन्हें हम भूल जायेंगे। अवश्य ही उनका भी कुछ मूल्य है, पर इस समय हम जरा उन्हें भूल जायें, तो एक बड़ी चीज हो सकती है। मैंने जब सुना कि एक-दो जगह कुछ कार्यकर्ताओं ने किसीको धमकाया और कहा कि 'दान न दोगे, तो तुम्हारा भला नहीं होगा', तो बिहार में मुँगेर की मीटिंग में—जो सबसे बड़ी सभाओं में से एक थी—मैंने जाहिर किया कि अगर कोई डरा-धमकाकर आपसे जमीन माँगे, तो आप हर्गिज न दीजियेगा। इस तरह मैं जमीन का एक छोटा टुकड़ा भी नहीं चाहता। जो कुछ मिले, वह पूर्ण विचार से मिले, तभी उसकी कीमत है। यह ध्यान में रखकर हम सबको काम करना चाहिए।

सत्य का अधिकार

इस वक्त कांग्रेस की तरफ से मेरे पास एक पत्र आया, जिसमें कांग्रेस के वार्षिक समारम्भ में आने के लिए निमंत्रण था। इस तरह हर साल निमंत्रण आता

है। मैं जा तो नहीं पाता, फिर उसका कुछ खास उत्तर देने की भी प्रेरणा नहीं होती। इस वक्त भी ऐसा ही होता। मैंने कोई खास सभ्यता का बन्धन तो नहीं माना है और बावजूद गांधीजी की संगति के, मैं असभ्य ही रहा। लेकिन इस समय ऐसा हुआ कि जब आवड़ी में कांग्रेस का अधिवेशन होने जा रहा था, उस समय एक शख्स, जो कि आवड़ी जा रहे थे, बीच में मुझसे मिलने आये। मुझे लगा कि ईश्वर का इशारा हुआ और मुझे जवाब देने का मौका मिला है। इसलिए मैंने एक पत्र लिख भेजा, उसमें एक वाक्य यह था कि "एक शख्स घूम रहा है ऐसी आशा से कि आप उसकी मदद में कभी-न-कभी दौड़े आयेंगे। वह समझता है कि आपसे मदद पाने का वह हकदार है।" उसके उत्तर में हमारे ढेबर भाई ने कहा कि "विनोबा को इस तरह हमसे मदद पाने का क्या हक और क्या अधिकार है ?" अब पहली मर्तबा मैं इस सभा में आ रहा हूँ, ऐसे मनुष्य को यहाँ के लोगों से मदद पाने का क्या अधिकार हो सकता है ? लेकिन अधिकार है। वह सत्य का अधिकार है, जो सबको कबूल करना होगा।

अल्लाह का दर्शन

हिन्दुस्तान में आज भूमि का बँटवारा गलत हुआ है, भूमि-हीनों का भूमि पर हक है, यह सबको कबूल करना होगा। मैंने यह विचार बार-बार दुहराया है और इस सभा में भी दुहराऊँगा, क्योंकि यह मेरा मंत्र-जप है कि जैसे हवा, पानी और सूरज की रोशनी भगवान् ने पैदा की है और सबके लिए है, वैसे ही जमीन भी भगवान् ने पैदा की और वह सबके लिए है। भगवान् ही उसके मालिक हो सकते हैं, मनुष्य नहीं। जो मनुष्य अपने को उसका मालिक समझता है, वह ईश्वर का विरोध करता है। मैं लोगों के पास जाता हूँ, तो यही समझाता हूँ। किसी घर में बूढ़ा मनुष्य हो, तो मैं उसका बच्चा बन जाता हूँ और उसे कहता हूँ कि आपके चार बेटे हैं, तो मैं पाँचवाँ हूँ और आपके पाँच बेटे हैं, तो मैं छठा हूँ। किसी घर में जवान भाई-भाई हों, तो मैं कहता हूँ कि मैं आपका एक भाई हूँ, मुझे अपना हक दीजिये।

एक किस्सा याद आ रहा है। हम एक मुसलमान भाई से जमीन माँगने गये

थे। उसके पास काफी जमीन थी और उसने कुछ देना भी कबूल किया था। मैंने उसे समझाया कि छठा हिस्सा देना चाहिए। उसने पूछा: 'आपका उसूल क्या है?' मैंने समझाया: 'अक्सर हर घर में पाँच भाई होते हैं, ऐसा मैं मानता हूँ, इसलिए मैं छठा भाई बनकर छठा हिस्सा माँगता हूँ।' उसने कहा: 'बिल्कुल ठीक। हमारे घर में हम पाँच ही भाई हैं, परन्तु हम मुसल्मानों में बहनों का भी अधिकार होता है। हमे दो बहनें हैं...' जहाँ यह बात उसके मुँह से निकल पड़ी, मैंने उसके चेहरे की तरफ देखा। मुझे उसके चेहरे में अल्लाह का दर्शन हुआ। उसी क्षण मैंने कहा: 'आपकी बात मुझे मंजूर है। आप सात भाई-बहन हैं, तो मैं आठवाँ हुआ। मुझे आठवाँ हिस्सा दीजिये।' उसने भी फौरन कबूल कर लिया और आठवाँ हिस्सा दे दिया!

यह किस्सा मैंने इसलिए सुनाया कि हिन्दुस्तान का दिल कितना पवित्र है, इसका इससे भान होता है। मैं कहना चाहता हूँ कि मैं अत्यन्त कठोर-हृदय हूँ। मुझ पर न किसीकी मृत्यु का परिणाम होता है और न किसीके जन्म की खुशी। कोई बीमार पड़ता है, तो मुझे बहुत चिन्ता नहीं होती। लेकिन भूदान-यज्ञ में जो अनुभव आये, उनसे मैं अत्यन्त कोमल बन गया, मेरा हृदय बहुत थोड़े में द्रवित होने लगा, मुझे भक्ति लाभ हुआ। जो भक्ति-लाभ एकान्त चिन्तन और ध्यान-साधना में भी नहीं हुआ, वह इसमें हुआ। मेरा दिल कोमल और नम्र हो गया। बहुत ही पवित्र अनुभव आये। लोगों की चित्त-शुद्धि का भान हुआ, तो मेरे ध्यान में आया कि अपने देश में एक शक्ति पड़ी है। वह कहाँ से आयी, यह जानने के लिए तो इतिहास में जाना पड़ेगा। परन्तु देखता हूँ कि देश में एक शक्ति है, जिसके आधार पर हम अपने देश को मजबूत बना सकते हैं। परमेश्वर की कृपा से हमारे देश में दूसरी शक्तियाँ कम हैं।

हर कोई देनेवाला है

"मैं अरु मोर, तोर तें माया"—मैं-मेरा और तू-तेरा, यह सब माया है, यह बात हिन्दुस्तान के हर कान में पहुँची है। यहाँ तक कि यह भावना हिन्दुस्तान के बहनों तक भी पहुँची है। वे मानती हैं कि हमारा जो जीवन चलता है, वह मिथ्या

है। और विनोबा जो कहता है कि मालकियत गलत है, भूमि पर सबका हक है, यह बात भी ठीक है। मुझे आज तक एक भी शख्स ऐसा नहीं मिला, जिसने इसका खण्डन किया हो। कोई मोह के कारण न दे, तो दूसरी बात है। मैं मानता हूँ कि जो आज नहीं देता, वह इसीलिए नहीं देता कि वह कल देनेवाला है। कोई आज नहीं मरा, इसलिए मुझे पक्का विश्वास हो जाता है कि वह कल मरनेवाला है। इसलिए जिसने आज दान नहीं दिया, वह कल देनेवाला है, ऐसा विश्वास मेरे मन में है। उसके लिए दान लेना लाजिमी है। हिन्दुस्तान के हृदय में ही यह बात है।

दो साल का समय दीजिये

इसलिए मेरी आपसे माँग है कि आप आगे के दो साल इसमें लगा दीजिये, तो फिर इसका परिणाम दीख पड़ेगा। मैं हरएक से दो साल की माँग करता हूँ। एक भाई ने मुझसे पूछा : 'आप कहते हैं कि सब छोड़कर इसमें आइये, तो क्या सब कुछ छोड़ना चाहिए ?' मैंने कहा : 'लेटर किलेथ स्पिरिट सेवेथ—जग बुद्धि का उपयोग करना चाहिए, इसका अक्षरार्थ न लेकर भावार्थ लेना चाहिए। भावार्थ से मैं कहना चाहता हूँ कि हम जितने काम समेट सकते हैं, उतने समेटने में रचनात्मक काम का भला है।' जब कोई रचनात्मक काम करनेवाले भाई मुझसे पूछते हैं कि 'क्या हम इसके लिए अपने सब काम बन्द करें ?' तो मैं नम्रता से कहता हूँ : 'भाई, मेरा सारा यौवन, जीवन के तीस वर्ष रचनात्मक काम में गये। वही मैं आपके सामने आज कह रहा हूँ कि यह बुनियादी चीज हाथ में लीजिये, तो बाकी के सारे काम फलेंगे। यह मत समझिये कि इसमें बुद्धि नहीं है, इसमें गहरी बुद्धि है। इससे ताकत पैदा होनेवाली है, नहीं तो हमें पूछता ही कौन था ? हम खादी की बात करते थे, तो हमें कौन पूछता था ? लेकिन आज पूछते हैं। वैसे 'सर्वोदय' शब्द जब से निकला, तब से लोग कहते हैं कि यह बहुत अच्छा शब्द है, परन्तु आज अमल में नहीं आ सकता। यह विचार अच्छा है, पर अव्यवहार्य है। लेकिन आज लोगों को शंका हो रही है कि यह अच्छा -परिणाम तो है ही, शायद व्यवहार्य भी है। उनमें यह इतमीनान, यह श्रद्धा

पैदा हो रही है कि इस जमाने में भी इसके अनुसार कुछ हो सकता है। मैं चाहता हूँ कि कांग्रेस इस काम को उठा ले और पक्षरहित दृष्टि से दूसरे पक्षों का सहयोग ले और इसे अपना ही काम समझकर करे। वैसे कांग्रेसवालों ने काफी मदद की है। परन्तु इसे अपना निज का कार्यक्रम समझकर सुव्यवस्थित ढंग से एक 'टारगेट' (लक्ष्य) बनाकर सब लोग इसमें लगते हैं, ऐसा दृश्य देखने को मिले, ऐसी मेरी प्रार्थना है।'

बेदखली मिटाने का काम उठाइये

इसीके साथ जुड़ी हुई और एक चीज है। उसके बारे में भी मैं कुछ कह देना चाहता हूँ। हिन्दुस्तान में बेदखलियाँ बढ़ रही हैं। इसमें भूदान का कोई कसूर नहीं है। किन्तु लोगों के मन में डर पैदा हुआ है कि कोई कानून बनेगा, न मालूम क्या कानून बनेगा और कब बनेगा? और उसके परिणामस्वरूप बेदखलियाँ शुरू हुई हैं। भूदान-यज्ञ के लिए इसमें जिम्मेवारी आती है, क्योंकि भूदान से हम उन पर असर नहीं डाल सके। इसलिए हमने भूदान में यह कार्यक्रम मान लिया है कि जिस किसीने दूसरे को बेदखल किया हो और परिणामस्वरूप वह भूमि-हीन बन गया हो, तो हम भूमिवालों के पास पहुँचेंगे और उनसे प्रार्थना करेंगे कि आप भूदान में जमीन दीजिये, ताकि हम वह जमीन उसीको दे देंगे, जो बेदखली के कारण बेजमीन हुआ है। इससे आपसे जो एक गलत काम हुआ, वह दुरुस्त हो जायगा और उसके अलावा पावनता भी भी पैदा होगी—दान भी बनेगा। इस तरह हम लोगों को समझाते हैं, फिर भी कई जगह इसका परिणाम नहीं हुआ। तब मुझे भूमि-हीनों से कहना पड़ा कि 'तुम अपनी जमीन पर डटे रहो। अगर तुम्हारा मानना सही है कि तुम उस जमीन पर दस-दस साल से काम करते हो, तो सत्य पर डटे रहो, चाहे मालिक जो भी करे।' इससे भूमि-हीनों को ही तकलीफ हो सकती है। लेकिन ऐसा कहने की नौबत मुझ पर आयी और लाचार हो मैंने यह कह दिया। इसलिए मैं चाहता हूँ कि बेदखली मिटाने का काम भी कांग्रेस उठा ले। भूदान-यज्ञ और बेदखलियाँ मिटाना, दोनों मिलाकर एक ही काम हैं। उसी बुनियाद पर हमें आगे काम करना है।

ग्रामदान

भूदान-यज्ञ में एक अद्भुत बात हुई है, जिसकी आशा लोगों ने कभी नहीं की थी, लेकिन मेरे मन में था कि कभी-कभी वह जरूर होगा। वह बात है, गाँव की कुल जमीन गाँव की बनना। गाँव के कुल लोग कुल जमीन का दान, सर्वस्व दान दें, फिर जमीन गाँव की हो और गाँववाले जैसा चाहें, वैसा प्रयोग करें। हम कहते थे कि ऐसे दान हमें मिलने चाहिए और साथ ही छठे हिस्से की भी माँग करते थे, जो प्राथमिक माँग थी। मुझे कहने में खुशी होती है कि अब तक १०० से अधिक पूरे गाँव दान में मिल चुके हैं। जिनमें कुछ छोटे हैं, तो कुछ बड़े। इस तरह अब हवा तैयार हुई है, तो काम बढ़ सकता है। इसमें जीवन का बिलकुल ही नया दर्शन हो सकता है। भूदान के साथ सम्पत्ति-दान, कूप-दान आदि भी निकले हैं। उन्हें भी हमें आगे बढ़ाना है। यह तत्त्व मान्य करना है कि हर मनुष्य को उसके पास जो कुछ सम्पत्ति है, उसका एक हिस्सा समाज को अर्पण करके ही बाकी के हिस्से का भोग करना चाहिए। यह एक जीवन-विचार है।

अहिंसा और कानून

हम आपसे दो ही साल की माँग कर रहे हैं। कोई भी कबूल करेगा कि भूमि का मसला दस साल में हल हो, तो भी जल्दी ही कहा जायगा। फिर हम तो दो ही साल की बात करते हैं। दो साल जोर लगाने के बाद जो कुछ बचेगा, वह सरकार के जरिये होगा। तब तक इतना वातावरण तैयार हो जायगा कि उसके बाद बननेवाला कानून अहिंसा में ही आ जायगा। उससे कुछ नुकसान न होगा, बल्कि लाभ ही होगा। अहिंसा में यह बात आती है कि आखिर में कानून की मुहर लगेगी। लेकिन आखिर में भी कानून से थोड़ा भी करना पड़ा, तो हम मानेंगे कि हमें पूर्ण यश नहीं मिला। अगर इस यज्ञ से ही यह काम हुआ, तो मैं मानूँगा कि पूर्ण यश मिला। मैंने तो कहा है कि इससे मसला हल हुआ, तो मैं नाचूँगा। लेकिन इससे काफी वातावरण तैयार हुआ और फिर कानून बना, तो भी मुझे खुशी होगी। हम तो चाहते हैं कि यह मसला इसी तरह लोक-शक्ति से हल हो।

कुछ दिन पहले कम्युनिस्टों से बोलने का मौका आया था। उन्होंने कहा कि आपका काम ठीक चल रहा है, ऐसा आप समझते हैं, तो हम भी आशा करते हैं कि आपको यश मिले। परन्तु हम चाहते हैं कि सरकार पर दबाव आये और कानून बने। मैंने कहा कि दबाव लाने की जरूरत नहीं है। सरकार पर दबाव तो आज भी आ रहा है। लेकिन सरकार पर दबाव आया और सरकारी शक्ति से काम हुआ, भूदान-यज्ञ के परिणामस्वरूप सरकार को कानून बनाना पड़ा, तो आप उसे पूर्ण यश कहेंगे। लेकिन मैं उसे आधा यश कहूँगा। जिसे आप पूर्ण यश मानते हैं, उसे मैं आधा यश मानता हूँ। मेरा पूर्ण यश इसीमें होगा कि यह मसला प्रेम और जन-शक्ति से ही हल हो।

परमेश्वर के हाथ से फलदान होता है। किन्तु जिसने प्रेरणा दी, वह फलदान भी करता है, इसी श्रद्धा से हम आपसे मित्र के नाते मदद चाहते हैं। आप अधिक-से-अधिक शक्ति इसमें लगायें, तो हमारे देश में एक बड़ा भारी कार्य सम्पन्न होगा।

ब्रह्मपुर
१-५-'५५

आज एक कार्यकर्ता ने सवाल पूछा कि सरकार का स्वरूप कैसा होना चाहिए ? लेकिन यह तो लोगों की हालत पर निर्भर है। मान लीजिये कि किसी कुटुम्ब में बिलकुल छोटे-छोटे बच्चे और जवान माता-पिता हैं। वहाँ माता-पिता की आज्ञा ही चलेगी और छोटे बच्चों को उनकी आज्ञा में रहना पड़ेगा, यही उस कुटुम्ब का स्वरूप होगा। जिस कुटुम्ब में लड़के बिलकुल छोटे नहीं हैं; समझदार हो गये हों और माता-पिता प्रौढ़ होकर कुछ काम कर सकते हों, वहाँ दोनों के सहयोग से काम चलेगा, केवल माता-पिता की आज्ञा नहीं चलेगी—उस कुटुम्ब का स्वरूप यह होगा। और जिस कुटुम्ब में लड़के प्रौढ़ और माता-पिता बिलकुल बूढ़े हो गये हों, वहाँ लड़के ही सारा कारोबार चलायेंगे। माता-पिता सिर्फ सलाह देंगे—न उनकी आज्ञा चलेगी, न उनका बच्चों के साथ सहयोग होगा।

सरकार का स्वरूप जनता की शक्ति पर निर्भर

इस तरह कुटुम्ब का स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार का होगा। लेकिन तीनों हालतों में उसका मुख्य तत्त्व प्रेम ही रहेगा और उसे बाधा न पहुँचे, इसी दृष्टि से उसके बाह्य स्वरूप में बदल होगा। जैसे कुटुम्ब का मूल-तत्त्व प्रेम है, वैसे ही समाज का मूल-तत्त्व 'सर्वोदय' होना चाहिए। 'सर्वोदय' समाज का मूलतत्त्व दिखाने का एक उत्कृष्ट शब्द है। जिस समाज में प्रजा-जन बिल्कुल अज्ञानी हों, उन्हें सोचने की शक्ति प्राप्त न हुई हो, उस समाज की सरकार के हाथ में ज्यादा शक्ति रहेगी और लोग सरकार से संरक्षण की अपेक्षा रखेंगे, जैसे छोटे बच्चे माता-पिता से संरक्षण की अपेक्षा रखते हैं। जहाँ प्रजा की दशा अज्ञानी की और हालत कमजोर हो, वहाँ की सरकार सर्वोदय चाहनेवाली, लेकिन कल्याणकारी सरकार होगी। उस सरकार को 'माँ-बाप सरकार' का स्वरूप आयेगा। किन्तु जैसे-जैसे प्रजा की शक्ति, योग्यता और ज्ञान बढ़ेगा, प्रजा में परस्पर सहयोग आ

मादा बढ़ेगा, वैसे-ही-वैसे सरकार की जरूरत कम होती जायगी। फिर सरकार आज्ञा देनेवाली नहीं, बल्कि सलाह देनेवाली संस्था बन जायगी। इस तरह जैसे-जैसे जनता का नैतिक स्तर ऊपर उठेगा, वैसे-ही-वैसे हुकूमत की, हुकूमत चलाने की शक्ति क्षीण होती जायगी—हुकूमत कम होती जायगी। आखिर में तो हम यही आशा करते हैं कि हुकूमत मिट भी जायगी।

शासनहीनता, सुशासन और शासन-मुक्ति

सर्वोदय के अन्तिम आदर्श में हम शासन-मुक्त समाज की कल्पना करते हैं। हम 'शासन-हीन' शब्द का प्रयोग नहीं करते। शासनहीनता तो कई समाजों में होती है, जहाँ अन्धाधुन्ध कारोबार चलता है। जहाँ किसी प्रकार की व्यवस्था नहीं होती, दुर्जन लोग चाहे जो करते हैं, उस अवस्था को 'शासन-हीन' कहा जायगा। ऐसा शासन-हीन हमारा आदर्श नहीं। हम तो चाहते हैं कि शासन-हीनता मिटकर 'सुशासन' हो और उसके बाद सुशासन मिटकर शासन-मुक्त समाज बने। शासन-मुक्त समाज में व्यवस्था न रहेगी, सो बात नहीं। उसमें व्यवस्था तो रहेगी, पर वह गाँव गाँव में बँटी रहेगी। उसमें दंड की आवश्यकता नहीं रहेगी। समाज में कुछ नैतिक विचार इतने मान्य होंगे कि वे समाज के आचरण में आये होंगे, समाज के छोटे-छोटे लड़कों को भी उसकी तालीम मिली होगी। ऐसे समाज के लोग खुद होकर नैतिक विचार को मानकर चलेंगे। वह समाज स्वयं-शासित होगा।

चोरी और संग्रह

आज लाखों लोग चोरी नहीं करते, तो वह इसलिए नहीं करते कि चोरी के विरुद्ध कोई कानून है। कानून है तो ठीक ही है, पर लाखों लोग इसीलिए चोरी नहीं करते कि 'चोरी करना गलत है' यह नैतिक विचार उन्हें मान्य है। जैसे आज चोरी करना गलत है, यह मान लिया गया। इसलिए सब लोग चोरी न करना सहज ही मान लेते हैं—चाहे किसी दण्ड या कानून का भय न हो, तो भी बेचारे चोरी न करेंगे। इसी तरह लोग 'संग्रह' को भी बुरा मानने लगेंगे। वे अपने पास संग्रह न करेंगे। कुछ संग्रह हो जायगा,

तो फौरन वोट देंगे। जिस तरह आज समाज में व्यभिचार बहुत बुरा माना जाता है, लोग उससे बचे ही रहना चाहते हैं—चाहे उसके विरुद्ध कोई सरकारी कानून न भी हो, तो भी लोगों के विचार में व्यभिचार न करना कानून माना जाता है। इसी तरह समाज में 'संग्रह गलत है' यह विचार मान्य हो जायगा। फिर उस समाज में 'अपरिग्रह' भी माना जायगा। तब आज के कई झमेलों का समाधान हो जायगा। 'चोरी करना पाप है' यह विचार ठीक है, पर वह एकांगी है। किन्तु जब 'संग्रह करना पाप है' यह विचार भी समाज को मान्य हो जायगा, तो दोनों मिलकर पूर्ण विचार बन जायगा। तब समाज का स्वास्थ्य बढ़ेगा। आज जिसके पास ज्यादा संग्रह है, उसीका समाज में गौरव होता है। किन्तु कल ऐसी स्थिति आयेगी कि जिसके पास ज्यादा संग्रह हो, उसकी अवस्था चोर जैसी मानी जायगी।

सर्वोदय-समाज की ओर

इस तरह जब समाज-रचना का आधार 'अपरिग्रह' हो जायगा, तब सरकार की शक्ति की भी कम-से-कम आवश्यकता पड़ेगी। गाँव के लोग ही अपने गाँव का सारा कारोबार देख लेंगे और ऊपर की सरकार केवल निमित्तमात्र रहेगी। वह केवल सलाह देनेवाली सरकार होगी, हुकूमत चलानेवाली नहीं। ऐसी सरकार में जो लोग होंगे, वे नीतिमान्, चरित्रवान् और सदाचारी होंगे। इसलिए उनके हाथ में नैतिक शक्ति रहेगी, भौतिक नहीं। हम इसी प्रकार का सर्वोदय-समाज लाना चाहते हैं। हमें इसी दिशा में अपनी सारी कोशिश करनी चाहिए।

सुशासन की बातें शासन-मुक्ति के गर्भ में

आजकल 'समाजवादी समाज-रचना' या और भी जो बातें चलती हैं, सारी 'सुशासन' की बातें हैं, शासन-मुक्ति की नहीं। इसलिए वे 'शासन-मुक्ति' के पेट में आ जाती हैं। जैसे माता के पेट में गर्भ रहता है, तो उसे माता से पोषण मिल जाता है—वह जानता भी नहीं कि उसे माता से पोषण मिल रहा है—वैसे ही सर्वोदय-विचार से उसके गर्भ की समाजवादी समाज-रचना आदि बातों को पोषण मिलता है। इसमें 'अशासन' या 'शासन-हीनता' से 'सुशासन' की ओर और

सुशासन से 'शासन-मुक्ति' की ओर जाना है। इस तरह हम एक-एक कदम आगे बढ़ेंगे। लेकिन अगर हमारा अन्तिम आदर्श शासन-मुक्ति का होगा, तो हमें सुशासन भी इस तरह चलाना होगा कि शासन-मुक्ति के लिए राह खुली रहे। जैसे साधारण असयमी मनुष्य को गृहस्थाश्रम की शिक्षा दें, तो वह गृहस्थ बनता और उसमें सयम आ जाता है। किन्तु यदि वह गृहस्थाश्रम में ही स्थिर हो जाय और वानप्रस्थाश्रम की ओर न बढ़े, तो आगे नहीं बढ़ सकता। फिर तो जो गृहस्थाश्रम संयम के लिए उसे साधक हुआ, वही बाधक बन जाता है। सारांश, असंयम मिटाने के लिए गृहस्थाश्रम की स्थापना करनी होगी और गृहस्थ को अपने सामने वानप्रस्थ का आदर्श रखना होगा—गृहस्थाश्रम इस तरह चलाना होगा कि आगे कभी-न-कभी वानप्रस्थ लेना है। इसी तरह समाज की आज की हालत मे हमे एक तरफ से शासन मुक्ति की ओर ध्यान देते हुए सुशासन चलाना चाहिए और दूसरी तरफ से शासन-मुक्ति के लिए जनशक्ति संगठित करने का भी प्रयत्न चलाना चाहिए।

हमारा दोहरा प्रयत्न

इसीलिए हम भूदान-यज्ञ मे जनता की शक्ति को जगाना चाहते हैं, जनता को अपने पैरों पर खड़ा करना चाहते हैं। दूसरी ओर शराबबन्दी के लिए कानून बने, ऐसी भी अपेक्षा करते है, क्योंकि शराबबन्दी के खिलाफ काफी जनमत तैयार हो चुका है। ऐसी हालत में अगर शराबबन्दी न होगी, तो देश में सुशासन न होगा—दुःशासन होगा, जो शासन-मुक्ति में बाधा देगा। इसलिए हम शासनमुक्ति चाहते हुए भी शराबबन्दी कानून की माँग भी करते हैं। लेकिन जमीन के बारे में हम चाहते हैं कि गाँव की कुल जमीन गाँव की हो। इस तरह का वातावरण लोगों में पैदा हो, लोग उसे मान्य करें, इसलिए पहले कदम के तौर पर हम गाँव की कुल जमीन का छठा हिस्सा माँग रहे है। हम चाहते हैं कि लोग प्रेम से इतना दें कि गाँव में कोई भूमि-हीन न रहे। इस तरह उधर तो हम स्वतन्त्र रीति से लोक-शक्ति संगठित करने का प्रयत्न करते है और इधर शासन को सुशासन में परिवर्तित करने की कोशिश भी करते हैं।

कानून याने समाप्तम्

गाँव की कुल जमीन गाँव की बन जाय, अगर इस तरह का सक्रिय लोकमत बन जाय याने लाखों लोग भूदान दे दें, तो आगे गाँव की जमीन गाँव की हो, इस तरह का कानून बनेगा। वह कानून लोकमतानुसारी होगा—वह लोगों को प्रिय होगा, अप्रिय नहीं। मान लीजिये कि हर गाँव के ८० फीसदी लोगों ने जमीन दान दी और २० फीसदी लोग दान देने को तैयार न हुए। उन्हें मोह है, इसलिए तैयार नहीं हुए, पर उन्होंने विचार को तो पसन्द किया ही। उस हालत में भी सरकार का कानून बन सकता है। इसलिए इधर हमारी कोशिश तो यही रहेगी कि सारे-के-सारे लोग इस विचार को पसन्द करें, ताकि सरकार के लिए सिर्फ उसका नोट लेना, उस पर मुहर ठोकना, इतना ही काम बाकी रह जाय। जैसे हम एक अध्याय पूरा-का-पूरा लिख डालते हैं और जहाँ लिखना समाप्त होता है वहाँ आखिर में 'समाप्तम्' लिख देते हैं, वैसे ही जनता एक काम को कर डालती है, तो वहाँ 'समाप्तम्' लिखने का काम सरकार का होता है। लेकिन लोक-शक्ति से अध्याय लिखने का काम पूरा न हो, अध्याय अधूरा ही रह जाय और उस पर भी सरकार 'समाप्तम्' लिख दे, तो केवल वह लिखने से अध्याय पूरा नहीं होता, पूरा लिख डालने से अध्याय पूरा होता है। जैसे बाल-विवाह नहीं होना चाहिए। इसका अध्याय हम लिख रहे थे, तो सरकार ने बीच में लिख डाला कि 'समाप्तम्'। परन्तु वह समाप्त नहीं हुआ और आज भी बाल-विवाह जारी है।

सरकार का भी एक काम होता है। अन्तिम अवस्था में सरकार का कोई काम नहीं होता, पर आज की हालत में होता है। लेकिन आज भी जनता पहले आगे जायगी और जनता के पीछे-पीछे जाने का काम सरकार का होगा। इस तरह सुशासन भी रहेगा और हम शासन-मुक्ति की तरफ भी आगे बढ़ेंगे। हम शासन-मुक्ति की कोशिश करते हैं, तो कम-से-कम सुशासन तो हो ही जायगा। करोड़ रुपया प्राप्त करने की आशा रखते हैं, तो लाख रुपया हो ही जाता है।

युवकों का आह्वान

इस तरह ऐसा महान् उद्देश्य सामने रखकर, भूदान के जरिये जनता में

जाकर जन-क्रान्ति करने का मौका हमें मिला है। अतः हमें अत्यन्त उत्साह आना चाहिए। बाबा वृद्धावस्था में भी चार साल घूम चुका और उसका उत्साह कम नहीं हुआ। लोग पूछते हैं कि आप कब तक घूमेंगे? बाबा कहता है कि रामचन्द्रजी को तो चौदह साल घूमना पड़ा था, बाबा तो अभी चार साल ही घूमा है। रामचन्द्र को रावण-वध के लिए अगर चौदह साल लगे, तो इस काम के लिए इतना समय लग रहा है, इसकी हमें कोई फिक्र नहीं। परन्तु इस काम के पीछे जो महान् तत्त्वज्ञान है, वह इतना उज्ज्वल, इतना व्यापक और इतना परिपूर्ण है कि हर जवान को इसमें उत्साह आना चाहिए। और लाखों जवानों को इस काम में कूद पड़ना चाहिए। विचार को ठीक से समझकर तत्त्वज्ञानपूर्वक जवान लोग इसमें कूद पड़ेंगे, तो हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि दो साल के अन्दर यह मसला हल हो सकता है।

दिगापहंडी
१४-५-'५५

आज का भक्ति-मार्ग : २७ :

यहाँ चैतन्य-सम्प्रदाय का एक मठ है। उस मठ के एक सेवक हमसे मिलने आये थे। वे भूदान-यज्ञ में कुछ काम करना चाहते हैं, पहले से कुछ करते भी हैं। भूदान के बारे में बहुत सहानुभूति से बात करते हुए उन्होंने एक विशेष बात बतायी कि चैतन्य महाप्रभु का जिस तरह का दैनिक व्यवहार था और उनका जो आदेश था, ठीक उसके अनुसार भूदान का कार्य चल रहा है। मैंने यह दावा तो किया ही था कि मैं उन महापुरुषों के नक्शेकदम पर चल रहा हूँ और उसीसे मुझे भूदान-यज्ञ की प्रेरणा मिली है। किन्तु खुशी की बात है कि उन्हींमें से एक भाई इस दावे को कबूल कर रहे हैं। हम जानते हैं कि हम जो भाई भूदान के काम में पड़े हैं, उनका आचरण उतना उत्तम कोटि का नहीं है, जितना भक्ति-मार्ग के लिए होना चाहिए। फिर भी हम भक्ति-मार्ग पर चलने की कोशिश कर रहे हैं।

प्राचीन और अर्वाचीन भक्ति-मार्ग

एक जमाना था, जब कि सारा समाज आज जितना व्यवहार में व्यस्त नहीं था। जमीन काफी थी और लोक-संख्या कम। उस जमाने में लोगों का ढाँचा दूसरे ही प्रकार का था। आज से एक हजार साल पहले हिन्दुस्तान की जन-संख्या आज से दशमांश रही होगी। और लोग आज जितनी तंगी महसूस करते हैं, उतनी उस समय न करते होंगे। इसलिए उस हालत में भक्ति-मार्ग का जो आरम्भ हुआ, वह एकान्त ध्यान-साधना से हुआ। उससे मन पर अंकुश रखने के लिए मदद मिलती और चित्त की शुद्धि हो जाती थी। समाज के सामने एक अच्छा आदर्श उपस्थित हो जाता था। इस तरह समाज पर अपना भार न डालते हुए जो लोग मूर्ति की उपासना करते थे, चिन्तन-परायण होते थे, उन निर्मल पुरुषों से समाज को प्रेरणा मिलती थी।

लेकिन आज की हालत दूसरी है। आज हम लोगों को केवल नैतिक उपदेश देते रहें, तो उससे काम न होगा। आज तो हमें लोगों की मुश्किलें, दुश्वारियाँ दूर करनी होंगी, तभी उनमें सद्विचार स्थिर होंगे। जिस वक्त आसपास आग लगी हो, उस वक्त हम मूर्ति का ध्यान करने बैठें, तो वह भक्ति-मार्ग का लक्षण न होगा। उस समय तो हाथ में बालटी लेकर आग बुझाने के लिए दौड़ पड़ना ही भक्ति-मार्ग का लक्षण है। जब समाज में चारों ओर दुःख का कल्लोल चलता हो, हम लोगों की आपत्तियाँ प्रत्यक्ष देखते हों, भूखे लोगों को भूख के कारण कुछ न सूझता हो और इसीलिए वे गलत काम करते हों, तो वैसी स्थिति में कोई शान्त बैठकर ध्यान करना चाहे, तो भी उसे वह न सूझेगा।

सच्चा भक्त कौन ?

इसीलिए तुलसीदासजी ने जहाँ भक्ति का वर्णन किया है, वहाँ उसके लक्षणों में एक लक्षण यह भी बताया है कि गरीबों को मदद पहुँचायी जाय। उन्होंने कहा है : "शम, दम, दया, दीन-पालन"—जो भक्त होता है, वह चित्त में शांति रखता है, इन्द्रियों का दमन करता है, तभी वह सेवा के लिए लायक बनता है। फिर वह अन्तःकरण में दया रखकर दीनों का पालन करता है। भक्त के ये

लक्षण बताकर तुलसीदासजी ने पूछा कि 'अरे भाई, तूने नर-देह धारण की है। फिर साधारण जानवरों की तरह तूने भी खाना-पीना, भोग करना आदि किया, तो नर-देह प्राप्त कर क्या किया ? अगर तूने शम, दम, दया, दीन-पालन न किया, तो नर-तनु धारण कर क्या किया ? शम और दम, ये तो व्यक्तिगत साधन हैं। अपने चित्त को हर हालत में शान्त रखना चाहिए। इन्द्रियों पर काबू रहना चाहिए। उसके बिना मनुष्य जन-सेवा के लायक हो नहीं बन सकता। इस तरह अपने को जन-सेवा के योग्य बनाकर मनुष्य दया और दीन-पालन का कार्यक्रम हाथ में लेगा, तो वह भक्त बनेगा।

दीनों का पालन नहीं, दीनता मिटाना लक्ष्य

भक्ति-मार्ग के जरिये हम सिर्फ दीनों का पालन ही नहीं करना चाहते—सिर्फ मौके पर उन पर थोड़ी दया नहीं करना चाहते, बल्कि उनकी दीनता मिटाना चाहते हैं। जब हम किसीको काश्त करने के लिए भूमि दिलाते हैं, और उसके साथ बीज, बैल आदि चीजें भी दिलाते हैं, तो हम उस मनुष्य की दीनता मिटा देते हैं। वही दान उत्तम दान कहा जायगा, जिसमें एक बार देने पर बार-बार देना न पड़े। सर्वोत्तम दान का यही लक्षण है और वह भूमि-दान में दीख पड़ता है।

गाँव का मन्दिर : किंडर गार्डन स्कूल

बहुत दफा यह पाया जाता है कि हिन्दुस्तान का भक्ति-मार्ग सेवा-परायण नहीं है। आज तक वह मूर्ति और ध्यान-परायण रहा। लेकिन अब जमाना आया है कि भक्ति-मार्ग को अपना मुख्य स्वरूप सेवा-परायणता ही बनाना होगा। एक जमाना था, जब कि ऐसी योजना की गयी थी कि गाँव में कोई मध्यवर्ती मन्दिर हो और उसकी सेवा इस तरह चले कि गाँव के सामने सेवा का आदर्श उपस्थित हो। वह तो एक 'किंडर गार्डन' का स्कूल खोला गया था। जैसे मन्दिर में सुबह भगवान् के जागने का समय हुआ, तो चौघड़ा बजता था और गाँववालों से कहा जाता था कि भगवानो, जागो। क्या पत्थर का भगवान् सोता है या जागता है ? लेकिन सुबह सब लोगों को जगाने के लिए यह एक नाटक किया जाता था। फिर दोपहर को भगवान् को प्रसाद चढ़ाने का समय आता, तो आरती होती; तब सारे गाँववाले

यहाँ आकर दर्शन करते और फिर घर जाकर भोजन करते थे। इस तरह गाँव के लोगों के भोजन का एक निश्चित समय होता था। फिर शाम को भगवान् की आरती का समय होता, तो गाँववाले अपना सारा काम बन्द कर मन्दिर में जाते थे और आरती के समय सारे भाई-भाई इकट्ठा होते। फिर रात में भगवान् के सोने का समय होता, तो उन्हें सुलाने के लिए गीत गाये जाते। सारे लोग उसमें सम्मिलित होते और भगवान् का नाम लेकर घर जाकर सोते। सारांश, सोने का भी एक निश्चित समय होता था। इस तरह सारे गाँव की जो दिनचर्या होनी चाहिए, उसका नियमन मन्दिर की दिनचर्या से होता था। इस प्रकार मन्दिर के जरिये लोगों को शिक्षा मिलती थी।

आज सेवा ही भक्ति

लेकिन आज तो यह होता है कि मन्दिर में भगवान् के नैवेद्य का समय हो जाने पर भी जिसके घर में खाने की चीज ही न हो, वह भगवान् को क्या समर्पण करेगा ? जब देश के लोग भूखे, नंगे और रोग से पीड़ित हों, उस हालत में उनकी सेवा में लग जाना ही भक्तिमार्ग का सर्वोत्तम कार्यक्रम है। मुझे खुशी हो रही है कि वैष्णव-सम्प्रदाय के एक सेवक ने यह महसूस किया कि भूदान यज्ञ के काम के जरिये भक्ति मार्ग का ठीक तरह से प्रसार हो रहा है। हम लोगों को बार-बार यही समझाते हैं कि हमारे आसपास जितने प्राणी हैं, वे सब हमारे स्वामी हैं और हम उनकी सेवा के लिए जनमे हैं। यह स्वामी-सेवक-भाव भक्ति-मार्ग की आत्मा है। जहाँ हम भूत-मात्र को हरिस्वरूप देखते हैं, उन्हें स्वामी समझते हैं और अपने को सेवक, वहाँ हमारी हरएक कृति भक्ति-मार्ग की बन जाती है। इसलिए भक्तों को बहुत नम्र होना चाहिए। उनमें परस्पर अत्यन्त प्रेम होना चाहिए और यह महसूस होना चाहिए कि हम भगवान् की सेवा में लगे हैं। इसलिए मन में किसी भी प्रकार के राग द्वेष को स्थान न देना चाहिए। लोग हमारे जीवन की परीक्षा भक्तों के जीवन से करेंगे। वे देखेंगे कि यह जो भूदान में लगे कार्यकर्ता हैं, उन्होंने उसके अनुसार अपना जीवन और हृदय बनाया है या नहीं ?

इसलिए हमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि अगर हम अपने जीवन में जाग्रति रखें, तो भूदान का काम अग्नि के जैसा फैलेगा।

पुडामारि
१५-५-'५५

ग्रामदान—अहिंसा का अणुबम : २८ :

आज आपने जो काम किया, उससे भगवान् अत्यन्त सन्तुष्ट है। भगवान् का आपको आशीर्वाद प्राप्त है। इसी तरह आपकी धर्म प्रेरणा और भावना बढ़े और आपका कल्याण हो। लोग कहते हैं कि यह तो कलियुग है। किन्तु हमने 'भागवत' में पढ़ा कि कलियुग तो बड़ा अच्छा युग होता है। उसमें सबके हृदय में प्रेम होता है। कलियुग कितना अच्छा है, इसका दर्शन तो आज इस गाँव में हुआ। यहाँ आप सब लोगों ने बड़ा ही प्रेम का काम किया। ऐसा काम देखकर भी, जिनकी ईश्वर पर श्रद्धा न बैठेगी, वे परम अभागे होंगे। अभी आपने सुना कि इस गाँव का काम देखकर दूसरे गाँववालों ने भी कह दिया है कि हम अपने गाँव का सर्वस्व दान देते हैं। मैंने तो भूदान का काम शुरू किया, तो अपने बल से नहीं शुरू किया। केवल ईश्वर की आज्ञा समझकर ही शुरू किया। मैंने विश्वास रखा कि हिन्दुस्तान के प्रेमी भक्त-जन इस यज्ञ को सफल बनायेंगे और सारी जमीन भगवान् की समझकर प्रेम से रहेंगे।

अभूतपूर्व घटना

ऐसी घटना दुनिया के इतिहास में एक अद्भुत घटना गिनी जायगी, जब कि हिन्दुस्तान के लोगों ने पूरे-के-पूरे देहात दान में दे दिये। ऐसी बात कभी किसीने सुनी नहीं थी। इसमें किसी भी प्रकार का दबाव नहीं है और न हो भी सकता है। ऐसे काम दबाव से नहीं बनते। यह पहला ही गाँव है, जहाँ मेरे हाथ से कुल जमीन का बँटवारा हुआ है। अभी तक इस तरह पूरे-के-पूरे गाँव सौ-सवा सौ मिल गये हैं। पहला गाँव मिला था उत्तर प्रदेश में। उसका नाम है 'मँगरौठ', जो आज हिन्दुस्तान में मशहूर हो गया है। अभी तक मैंने वह गाँव नहीं

देखा। मैं वहाँ से एक मील पर से गुजरा था। गाँववालों ने रास्ते में मेरा स्वागत किया। गाँव का पूरा दान दे दिया और मुझे यह खुशखबर सुनायी। उसके बाद आपके इस उड़ीसा प्रदेश में 'मानपुर' में जाने का मुझे अवसर मिला। वहाँ भी गाँव की कुल जमीन दान में मिली है। किन्तु वहाँ की जमीन का बँटवारा मेरे हाथों नहीं हुआ, पहले ही हो चुका था। इसलिए यह पहला ही गाँव है, जहाँ सर्वस्व-दान हुआ है और अपने हाथों जमीन बाँटने का सौभाग्य मुझे मिला।

ईश्वर का साक्षात् दर्शन

हमारे देश के एक बड़े नेता राजाजी ने कहा है कि 'भूदान-यज्ञ ईश्वर पर श्रद्धा बढ़ानेवाला यज्ञ है।' आज तो हम इस गाँव में ईश्वर को साक्षात् देख रहे हैं। आप लोगों ने कितना प्रेम बताया है। हम समझते हैं कि भगवान् ने आपको यह प्रेम इसलिए दिया कि आपका कल्याण हो। भगवान् जिसका कल्याण चाहता है, उसे सद्वासना देता है। वही सद्वासना देता है, वही अच्छे काम कराता है और वही कल्याण फल करता है। हम नहीं समझते कि यह काम आपने किया और हमने कराया है। यह काम तो ईश्वर ने किया है और ईश्वर ने ही कराया है। ऐसा काम कानून से, डराने या धमकाने से नहीं हो सकता। यह काम तो केवल श्रद्धा, प्रेम और समझाने से ही हो सकता है।

गाँववालों का कर्तव्य

अब आप लोग गाँव में एक परिवार जैसे रहेंगे। कोई झूठ न बोलेगा, कोई एक-दूसरे के साथ झगड़ा न करेगा, सब साफ-सुथरे रहेंगे, कोई आलस नहीं करेंगे, व्यसनी नहीं बनेंगे, एक-दूसरे को मदद देंगे और सब मिलकर भगवान् का नाम लेंगे। आप लोगों ने हमारी माँग पर इतना काम किया है, तो हमारी जिम्मेवारी बहुत बढ़ जाती है। हम समझते हैं कि आपका हम पर उपकार हुआ है। आप लोग भी अपनी जिम्मेवारी समझ लीजिये। आपको जितनी मदद हो सकती है, उतनी मदद करने की जिम्मेवारी हम लोगों की होती है। हम आप लोगों को परावलम्बी नहीं बनाना चाहते। चाहते हैं कि आपका बल बढ़े और आपके बल से ही आप आगे बढ़ें। लेकिन सब तरह का सलाह-मशविरा देना और जो कुछ संभव हो,

थोड़ी मदद भी दिलाना हम लोगों का कर्तव्य हो जाता है। मैं तो चाहता हूँ कि ऐसे गाँव-के-गाँव, थाने-के-थाने पूरे मिल जायँ, तो उनमें हम ग्रामराज्य, रामराज्य की योजना बना सकते हैं। जमीन के बँटवारे के बाद गाँवों में उद्योग बढ़ाने होंगे, आपको कपास बोनी होगी, सूत कातना, बुनना और अपना कपड़ा खुद बनाना होगा। अपने गाँव का झगड़ा कभी भी गाँव के बाहर नहीं जाना चाहिए। उसके बिना गाँव में स्वराज्य नहीं हो सकता।

ग्रामदान से दुनिया की हवा शुद्ध हो जाती है

मैं समझता हूँ कि ऐसे गाँवों ने जो काम किया है, उससे सारी दुनिया में शान्ति की स्थापना हो सकती है। मैंने तो पुरी के सर्वोदय-सम्मेलन में कहा था और ब्रह्मपुर की अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी की मीटिंग में दुहराया भी था कि भूदान-यज्ञ में जो दान देता है, वह विश्व-शान्ति के लिए वोट देता है, विश्व-शान्ति स्थापन करने में मददगार होता है। पश्चिम की विद्या पढ़े लोग बहुत अन्धे हो गये हैं। वे ऐटम की शक्ति देखते हैं, एक परमाणु में कितनी शक्ति है, ऐसा कहते हैं। लेकिन उससे भी ज्यादा शक्ति ग्राम-दान में है। हम समझते हैं कि जो पराक्रम ऐटम और हाइड्रोजन से हिंसा के क्षेत्र में होता है, वही ग्राम-दान से अहिंसा के क्षेत्र में होता है। ऐटम और हाइड्रोजन को हिंसा-शक्ति का सबसे बड़ा पराक्रम माना जाता है, उसी तरह ग्राम-शक्ति में सर्वस्व-दान अहिंसा-शक्ति का सबसे बड़ा पराक्रम माना जायगा। वैज्ञानिक कहते हैं कि जब ऐटम और हाइड्रोजन फूटता है, तब सारी दुनिया की हवा बिगड़ जाती है। हम समझते हैं कि जब ऐसा एक ग्राम-दान मिलता है, तो सारी दुनिया की हवा शुद्ध हो जाती है।

आखिर में हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वह आपको आरोग्य दे, तुष्टि दे, पुष्टि दे। आप अपने बाल-बच्चों के साथ उसका नाम लेते रहें। आप लोगों ने बहुत ही पवित्र कार्य किया है। आपको मेरे भक्ति-भाव से प्रणाम!

अकिली
११-५-'५५

आज हमने इस गाँव की कहानी सुनी। यह गाँव बड़ी आफत से बचा है, अकाल में यह खतम ही होने जा रहा था। हमारे देश की हालत ऐसी है कि पाँच लाख देहातों में क्या क्या घटनाएँ होती हैं, इसका अन्दाजा शहरवालों को नहीं हो सकता। शहर मे एक छोटी-सी घटना हो जाती है, तो वह फौरन अखबार मे आती है, लेकिन इधर गाँव-के-गाँव खतम होते जाते है, फिर भी अखबार मे खबर नहीं आती। किन्तु हमे यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि इस गाँव के संकट के समय हमारे कुछ कार्यकर्ता यहाँ दौड़े आये और उन्होंने कुछ मदद की, जिससे गाँव बच गया। विशेष गौरव की बात तो यह है कि यहाँ 'कस्तूरबा ट्रस्ट' का शिक्षण पायी हुई बहनें काम करती हैं। वे हिम्मत के साथ अकेली रहती और गाँव-गाँव घूमकर गाँववालों को हिम्मत देती हैं। हम आशा करते हैं कि ऐसे गाँव तो हमें पूरे-के-पूरे मिल जाने चाहिए। जिस गाँव ने संकट का अनुभव किया हो, उसे मालूम होता है कि मिल-जुलकर काम करने से क्या लाभ होता है। परमेश्वर ने संकट भेजकर गाँववालों को यह सबक सिखाया कि तुम लोग गाँव का एक परिवार बनाकर रहो। इस जिले में हमें काफी गाँव सर्वस्व-दान में मिले हैं। अब उनमें कुल जमीन गाँव की बनेगी। काश्त करने के लिए परिवार को थोड़ी-थोड़ी जमीन दी जायगी, पर मालकियत किसीकी भी नहीं रहेगी। जिस किसीके खेत में मदद की जरूरत हो, सब लोग दौड़े जायँगे। आगे जाकर अगर गाँव-वाले चाहें, तो सारे गाँव का एक खेत भी बना सकते हैं। समग्र ग्राम दान देने से क्या क्या लाभ होते हैं, यह समझने की जरूरत है। अगर लोगों को इन लाभों का भान हो जाय, तो हमारा विश्वास है कि हिन्दुस्तान में एक भी ऐसा गाँव न रहेगा, जो अपनी पूरी जमीन दान में न देगा।

पहला लाभ आर्थिक आजादी

जमीन की मालकियत मिटाकर सारे गाँव की जमीन एक करने से पहला

लाभ यह होगा कि गाँव की दौलत बढ़ाने मे बड़ी सहूलियत होगी। किस खेत मे क्या बोना चाहिए और कितना बोना चाहिए, इस बात पर सारे गाँववाले सोचेंगे और सब मिलकर आयोजन करेंगे। गाँव की फसल का कितना हिस्सा बेचना है, इसका भी विचार गाँव की समिति करेगी। गाँव मे खेती के सुधार के लिए क्या-क्या करना चाहिए, यह भी सोचा जायगा। किसी खास मौके पर गाँव के लिए बाहर से या सरकार से मदद हासिल करनी हो, तो ऐसे गाँवों मे मदद हासिल करने मे सुविधा होगी। लोग व्यक्तिगत कर्ज न लेंगे। इस तरह जो सब लाभ होंगे, उन पर तो एक ग्रंथ लिखा जा सकता है। थोड़े मे हम इतना ही कहेंगे कि समग्र ग्राम-दान से अपना इहलोक का जीवन सुखी बनाने में मदद होगी। आजकल की भाषा मे बोलना है, तो हम कहेंगे कि इससे आर्थिक आजादी प्राप्त होगी।

जीवन के आनन्द का स्वाद बढ़ेगा

गाँव का परिवार बनाने से दूसरा लाभ यह होगा कि उस गाँव में परस्पर प्रेम बढ़ेगा और जीवन मे आनन्द आयेगा। जब हम किसीका सुख-दुःख समझकर उसमे हिस्सा बँटाते है, तो दुःख कम हो जाता है और सुख बढ़ता है। सुख और दुःख, दोनों मे हिस्सा लेने से गाँव मे आनन्द बढ़ेगा, जैसे आज परिवार में आनन्द हासिल होता है। आनन्द अनेक के सहकार से होता है। जहाँ हर मनुष्य अपने को भूल जाता है, वहीं आनन्द निर्माण होता है। दस लड़के एक साथ खेलते हैं, तो उसमे आनन्द आता है। अगर उनसे कहा जाय कि तुम व्यायाम के लिए खेलते हो, तो सब अलग-अलग दौड़ो, इस तरह दौड़ने से उन्हे व्यायाम तो होगा, पर आनन्द नहीं मिलेगा। इसी तरह कोई अकेला नाचता है, तो आनन्द नहीं आता, पर सब मिल-जुलकर नाचते है, तो आनन्द आता है। इस प्रकार गाँव का एक परिवार बनाने से जीवन का आनन्द, रुचि और स्वाद बढ़ेगा। इसे हम 'सांस्कृतिक लाभ' कह सकते है।

लोगों का नैतिक स्तर उठेगा!

गाँव का एक परिवार बनाने से बहुत बड़ा लाभ तो यह होगा कि लोगों का नैतिक स्तर ऊपर उठेगा, झगड़े, गाली-गलौज, चोरी आदि सब कम होंगे।

आप जानते हैं कि घर के अन्दर चोरी नहीं होती। लड़के ने कोई चीज खा ली, तो उसे 'चोरी' नहीं कहा जाता है। माँ लड़के से इतना ही कहती है कि तू मुझे पूछकर फिर खाता, तो अच्छा होता। इस तरह जहाँ गाँव का एक घर बन जाता है, वहाँ चोरी मिट जाती है। उससे नीति बढ़ती है। आज दुनिया में नीति का स्तर इतना गिरा हुआ है कि लोगों ने अपने आर्थिक स्वार्थ के लिए अलग-अलग घर बना रखे हैं। परसों हमने एक भिखारी की गठरी खोलकर देखी, तो उसमें दो आने और एक साबुन का टुकड़ा था, लेकिन उसने पक्की गाँठ बाँधकर रखा था। इस तरह लोग अपने दो-चार आने, दो सौ या दो हजार रुपये हों, पक्की गाँठ बाँधकर रखते हैं। फिर छीना-झपटी और चोरियाँ चलती हैं, लूटने और ठगने के तरीके ढूँढ़े जाते हैं। डॉक्टर भी किसी बीमार को देखने के लिए जाता है, तो कहता है कि पहले अपनी गठरी खोलो। इस तरह लोगों ने अपना एक संकुचित हृदय बनाया, छोटा घर बनाया। इसलिए दुनिया में झगड़े चल रहे हैं। लेकिन जहाँ जमीन और सम्पत्ति की मालकियत मिट जाती है, वहाँ मनुष्य की नीति जरूर सुधरेगी। इस नैतिक लाभ को हम सबसे श्रेष्ठ लाभ कह सकते हैं। अगर दुनिया को यह लाभ हो, तो दुनिया नाच उठेगी। आज तो दुनिया परेशान है। परस्पर स्वार्थों की जो टक्करें चलती हैं, उनसे दुनिया दुःखी है और परिणामस्वरूप हिंसा खूब बढ़ गयी है। इसलिए अगर हम गाँव की जमीन और सम्पत्ति गाँव की बना देते हैं, तो सारी दुनिया को नैतिक उत्थान का रास्ता मिल जाता है।

सहज ही आसक्ति से मुक्ति

और एक बड़ा लाभ यह होगा, जिसे चाहे दुनिया के लोग समझें या न समझें, लेकिन हिन्दुस्तान के और खासकर देहात के लोग समझ जायँगे। जब हम कहते हैं कि यह मेरा घर है, मेरा खेत है—इस तरह मेरा-मेरा चलता है—तो मनुष्य आसक्त बन जाता है, कैदी बनता है। लेकिन जब मनुष्य मैं और मेरा, यह सब छोड़ देगा और कहेगा कि यह सब हमारा है, मेरा कुछ नहीं है, तो वह जल्दी मुक्त हो जायगा। आज सब लोगों का मन बँधा हुआ है, क्योंकि

मेरा-मेरा छूटता नहीं है। इसके छूटने के लिए संतों ने कई उपाय बताये हैं, फिर भी लोग मुक्ति नहीं पाते।

अक्सर कहा जाता है कि घर-द्वार सब कुछ छोड़ चलोगे, तो यह मैं और मेरा छूटेगा। लेकिन ऐसी बात नहीं है। इस तरह भाग जाने से मनुष्य को मुक्ति नहीं मिल सकती। मुक्ति की युक्ति तो यह है कि हम अपना घर छोटा न समझें। सारा गाँव हमारा घर है और हमारा जो छोटा घर हम मानते हैं, वह भी सबका है, ऐसा समझें। मैं किसीका नहीं और कोई मेरा नहीं, ऐसी बातें करने से मनुष्य मुक्त नहीं होता। मनुष्य तो मुक्त तब होता है, जब वह समझता है कि मैं सबका हूँ और सब मेरे हैं। अभी तक हिंदुस्तान में जिन्होंने मुक्ति के लिए कोशिश की, उन्होंने ऐसी ही कोशिश की कि मेरा कुछ भी नहीं है। इसीलिए सब छोड़कर जाना पड़ता था। लेकिन इससे जल्दी मुक्ति नहीं मिलती। मनुष्य सब छोड़कर जाता है, तो आखिर एक लँगोटी पहनता ही है। तो, उसकी सारी आसक्ति उस लँगोटी में रह जाती है। इसलिए हमारे पास जो कुछ है, वह सारा गाँव का है; मैं भी गाँव का हूँ और गाँव मेरा है—ऐसी भावना जब बनती है, तब मनुष्य आसानी से मुक्त होता है। यह एक बहुत बड़ा लाभ है।

सुएर्डीढमिर्णा (कोरापुट)
५-६-'५५

हिन्दुस्तान के इतिहास की ओर हम देखते हैं, तो मालूम होता है कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि अपने समाज को एकरस बनायें और सारे कृत्रिम भेदों को मिटा दें। छूत-अछूत-भेद, ऊँच-नीच-भेद, गरीबी-अमीरी, अपढ़ और पढ़ा-लिखा आदि सारे भेद मिटाने होंगे। हम अपढ़ को पढ़ाकर वह-भेद मिटा सकते हैं, श्रीमानों की सम्पत्ति गरीबों में बाँटकर गरीबी-अमीरी का भेद मिटा सकते हैं और ब्राह्मण की निर्मलता अछूत को देकर छूत-अछूत का भेद मिटा सकते हैं। जिसके पास जो चीज है, वह आसपास के लोगों में बाँटनी होगी।

शिक्षित रोज एक घंटा विद्यादान दें

आज हिन्दुस्तान में १५-२० फीसदी पढ़े-लिखे लोग हैं और बाकी के सारे अपढ़ हैं। सरकार के सामने सबको पढ़ाने की समस्या ही खड़ी है। उसके लिए जो योजनाएँ बनती हैं, उनमें करोड़ों और अरबों रुपयों की बात चलती है। लेकिन अगर हम एक छोटी-सी योजना चलायें, तो सारा हिन्दुस्तान शिक्षित हो सकता है। हर गाँव में जो कोई पढ़ा-लिखा हो, वह हर रोज अपना एक घंटा गाँव के अपढ़ लोगों को पढ़ाने के लिए दे। एक मनुष्य तीन महीने में १० मनुष्यों का पढ़ना-लिखना सिखा सकता है। इस तरह अगर सारे शिक्षित लोग विद्या दान देंगे, तो तीन साल के अन्दर सारा समाज शिक्षित बन जायगा और उसके लिए कौड़ी का भी खर्चा नहीं आयेगा। लेकिन आजकल तो विद्या बेचना शुरू हुआ है। जितनी डिग्रियाँ ज्यादा हों, उतना ही ज्यादा दाम माँगा जाता है। यहाँ तक होता है कि शादियों में भी लड़के की पढ़ाई देखकर दहेज माँगा जाता है। इसका मतलब है कि बैलों के समान वे लोग अपने लड़कों को बाजार में बेचते हैं। इसका यह अर्थ है, दो दो हजार रुपया नगद और स्कूटर, घी

परीक्षा पास किया हुआ बलद है, तो उसका पाँच हजार रुपया दाम! किन्तु हमारे ऋषियों की यह कल्पना नहीं थी। वे जितने ज्ञानी होते थे, उतने ही अपरिग्रही भी थे। 'अकिंचनो ब्राह्मणः'—ब्राह्मण को संग्रह नहीं करना चाहिए। वह समाज को विद्या देता जायगा और समाज उसे खिलाता जायगा। हम चाहते हैं कि हमारे शिक्षित लोग यह प्रण करें कि देश के लिए हमें एक घण्टे का विद्यादान देना है।

मान लीजिये, हम हिन्दुस्तान में दाँत घिसने के कारखाने खोलेंगे, तो एक मनुष्य के दाँत घिसने के लिए एक मजदूर को दस मिनट का समय देना पड़ेगा। इसका मतलब हुआ कि एक मजदूर आठ घण्टे में ५० मनुष्यों के दाँत घिस देगा। इस हिसाब से हिन्दुस्तान के ३५ करोड़ लोगों के दाँत घिसने के लिए कितनी फैक्टरियाँ खोलनी पड़ेंगी? कितने करोड़ों का खर्चा आयेगा, आप ही हिसाब लगाइये। लेकिन दाँत घिसने के बारे में हमने औद्योगीकरण (इण्डस्ट्रियलाइजेशन) नहीं किया। हर मनुष्य प्रतिदिन सुबह अपने दाँत घिस लेता है, तो सारे देश का दाँत घिसने का काम दस मिनट में खतम हो जाता है। इसी तरह हमने अनुभव किया है कि मनुष्य हर रोज आधा घंटा सूत कातता है, तो अपने लिए सालभर का कपड़ा बना लेता है। लेकिन इन दिनों इस तरह की योजनाएँ नहीं बनतीं, बड़े-बड़े कारखाने खोलने की ही योजनाएँ बनती हैं, जिनसे लोग परावलम्बी बन जाते हैं। हमने देखा है कि बिलकुल जंगली लोग भी आज कपड़े के मामले में परावलम्बी बन गये हैं।

सहकार का सुख

हर मनुष्य देश के लिए आध घण्टे का श्रमदान दे, तो हर गाँव के खेत अच्छे बन जायेंगे। गाँव के सभी लोग एक-दूसरे के खेत में जाकर काम कर देंगे। लेकिन आज इस काम में बाधा इसलिए आती है कि मनुष्य सोचता है कि मैं दूसरे के खेत में जाकर काम क्यों करूँ? इसीलिए हमने कहा है कि गाँव की सारी जमीन सबकी है, ऐसा समझना चाहिए। एक दिन हमने शाम की सभा में भूमि का बँटवारा किया, तो सब लोग निकल पड़े और नजदीक के खेत में

जाकर उसे साफ करने का काम करने लगे। खेत में जितने कंकर पत्थर थे, सारे उठाकर मेड़ बनायी और आध घण्टे में सारा खेत सुन्दर बन गया। बाद में पता लगाने पर मालूम हुआ कि वह एक विधवा का खेत था, जिसकी मदद करने वाला कोई नहीं था। उस काम में हमें कुछ भी तकलीफ नहीं हुई, बल्कि थोड़ा सा व्यायाम हो गया और उस विधवा को सहायता मिली। इस तरह अगर गाँव के सब लोग समझें कि गाँव की कुल जमीन सबकी है, तो हर कोई हर किसीके खेत में जाकर काम कर देगा। लेकिन आज हालत यह है कि हर किसान रात को जागता है, इसलिए कि पड़ोसी का बैल उसकी फसल न खा जाय। अड़ोसी पड़ोसी एक दूसरे से डरते हैं और दोनों रात को जागते हैं। अगर सारे गाँव की खेती एक हो जाती है, तो इस तरह हर किसान को रातभर जागना न पड़ेगा।

जमीन के साथ बैल का भी दान

यहाँ दान की परम्परा चले, तो हमारा देश सुखी हो सकता है, एकरस बन सकता है। जब प्रेम के साथ सुख बढ़ता है, तो वह सुख कल्याणकारी होता है। कुछ लोग पूछते हैं कि बाबा दान क्यों माँगता है, सरकार से कानून क्यों नहीं करवा लेता? हम कहते हैं कि सरकार का काम सरकार करेगी और बाबा का काम बाबा करेगा। बाबा का काम सरकार नहीं कर सकती। सरकार जमीन छीन सकती है, पर प्रेम पैदा नहीं कर सकती। बाबा जमीन माँगता है, तो देनेवालों और लेनेवालों में प्रेम पैदा होता है। सरकार जमीनें छीनती है, तो जमीनवालों से यह नहीं कह सकती कि और पैसा भी दीजिये उल्टे सरकार को ही उन लोगों को मुआवजा देना पड़ता है। लेकिन बाबा लोगों से कहता है कि जमीन दी है, तो अब बैल दीजिये, बीज भी दीजिये, तो लोग देते हैं। हम कहते हैं कि आपने किसीको अपनी लड़की दी और वह आदमी गरीब है, तो आप उसको और भी मदद देते हैं न? तो इसी तरह भूमि हीन को और मदद देनी चाहिए। बिहार के पूर्णियाँ जिले से वैद्यनाथ बाबू ने हम लिखा है कि वे एक गाँव में जमीन का बँटवारा करने गये थे, तो भूमिहीनों को भूमि देने के बाद उन्होंने सबसे कहा कि 'आपने जमीन तो दी, पर उसके साथ बैल भी चाहिए।' तुरत दाताओं ने जितनी बैल जोड़ियों की जरूरत थी, उतनी

दान ग्रहण न करेंगे। आखिर उसने अपनी पत्नी की सम्मति ली, तब हमने उसका दान ग्रहण किया। तो, क्या आप समझते हैं कि वह मनुष्य हमें ठगेगा। अगर वह ठगना चाहता, तो दान ही क्यों देता? बाबा ने जबर्दस्ती तो नहीं की थी और न अखबार में उसका नाम प्रकट किया था। उसे दान देने से कोई मान-सम्मान नहीं मिलनेवाला था। इसलिए जो दान देता है, वह पूरा सोच-विचार कर देता है।

लड़के श्रमदान दें

हम चाहते हैं कि छोटे लड़के भी देश के लिए कुछ करें। हर रोज आधा घंटा सूत कात सकते हैं और वह सूत देश के लिए भूदान-समिति के पास अर्पण कर सकते हैं। अगर उन्होंने रोज १६० तार काते, तो उनकी तरफ से समाज को प्रतिदिन एक पैसे के हिसाब से महीने में आठ आने का दान मिलेगा। इन लड़कों के पास श्रम-शक्ति है, इसलिए ये बड़े श्रीमान् हैं। वे देश को श्रमदान दे सकते हैं। भगवान् ने हमें दो हाथ दिये हैं, तो उनसे पचासों काम बन सकते हैं। इन दो हाथों से हम बीमारों की सेवा कर सकते हैं, किसी डूबनेवाले को बचा सकते हैं और दोनों हाथ जोड़कर भगवान् की भक्ति की जा सकती है। भगवान् ने हरएक को खाने के लिए एक छोटा-सा मुँह दिया है, काम करने के लिए दो लम्बे हाथ और दस अंगुलियाँ दी हैं। वेदों में कहा है कि भगवान् ने मनुष्य को दस यन्त्र दिये हैं। लेकिन इन दिनों शिक्षित लोग दस अंगुलियों से काम नहीं करते, बल्कि तीन ही अंगुलियों से काम कर ढेर पैसा कमाना चाहते हैं।

इस तरह हरएक के पास जमीन, सम्पत्ति, विद्या, श्रम-शक्ति आदि जो कुछ है, उसका एक हिस्सा समाज के लिए देना चाहिए। बाबा की यह माँग आप कबूल कीजिये और फिर देखिये कि हिन्दुस्तान सुखी होता है या नहीं? फिर भी अगर देश सुखी न हुआ, तो बाबा को फाँसी दे दीजिये!

कोरापुट
२१-१-'५५

आज सुबह जब हम यहाँ पहुँचे, तो हमारे स्वागत के लिए आये हुए लोगों से हमने कहा था कि शाम की सभा में सबको जरूर आना चाहिए। बारिश बरसे, तो भी छाता न लाना चाहिए और भींगने की तैयारी करके आना चाहिए। हमें बारिश की मार सहन करनी चाहिए। इतना ही नहीं, उसमें खूब आनन्द भी महसूस होना चाहिए। आखिर जो बारिश, ठंड, धूप और हवा से डरेगा, वह खेत में काम कैसे करेगा? अब हम सबको अपनी मातृ-भूमि की सेवा के लिए तैयार हो जाना चाहिए। समझना चाहिए कि बारिश, हवा, आसमान, सारे हमारे देवता और दोस्त हैं। और भूमि तो देवता तथा दोस्त है ही, माता भी है। इसलिए सबको कुदरत में काम करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

शिक्षा में यह नाजुकपन!

फिर लड़कों को तालीम भी इसी तरह देनी चाहिए। आज तालीम देनेवाला कुर्सी पर बैठता है और लेनेवाला बेंच पर। पुस्तक के जरिये पाठ पढ़ाया जाता है। इस तरह की तालीम पानेवाला कोई भी काम करने के लिए नालायक बन जाता है। आज सारे लड़के रसोई करना नहीं जानते। वे समझते हैं कि यह तो हीन काम है, स्त्रियों का काम है, हमारा काम नहीं है। हमारा काम खाने का है, इसलिए हम उच्च हैं। किन्तु हम ऐसी तालीम देना चाहते हैं, जिसमें लड़कों को रसोई का भी ज्ञान हासिल होगा। इन दिनों स्कूलों को गर्मी के दिनों में छुट्टियाँ होती हैं, क्योंकि वे गर्मी सहन नहीं कर सकते। इस तरह जो गर्मी और बारिश सहन नहीं कर सकते, वे खेत में कैसे काम करेंगे?

भगवान् श्रीकृष्ण का आदर्श

जैसे भगवान् कृष्ण को काम करते-करते तालीम मिली थी, वैसे ही हमारे लड़कों को मिलनी चाहिए। भगवान् कृष्ण गाय चराते थे, दूध दुहते थे, घर लीपते थे, मेहनत-मजदूरी करते थे, गुरु के घर जाकर लकड़ी चीरने का काम करते

थे, अर्जुन के घोड़ों की सेवा करते थे और उसका सारथ्य भी करते थे। राजसूय-यज्ञ के समय उन्होंने युधिष्ठिर महाराज से काम माँगा, तो युधिष्ठिर ने कहा कि आपके लिए हमारे पास काम नहीं है। लेकिन भगवान् ने कहा कि मैं बेकार नहीं रहना चाहता। युधिष्ठिर ने कहा कि आप ही अपना काम ढूँढ़ लीजिये। भगवान् ने कहा कि मैंने अपना काम ढूँढ़ लिया, जूठी पत्तलें उठाने का और गोबर लीपने का काम मैं करूँगा। मैं उस काम के लायक हूँ। मैंने बचपन से यह काम किया है और उस काम में मैं एम० ए० हूँ। इस तरह उन्होंने जूठी पत्तलें उठाने का काम किया, जिसका वर्णन शुकदेव ने 'भागवत' में और व्यास भगवान् ने 'महाभारत' में किया है। और जब मौका आया, तो कृष्ण भगवान् ने अर्जुन को ब्रह्म-विद्या का उपदेश भी दिया।

आज का भोगैश्वर्यपरायण शिक्षण

हमारे देश के लड़के ऐसे होने चाहिए कि इधर तो ब्रह्म-विद्या का गायन करें और उधर झाड़ू लगायें, गोबर लीपें, खेत में मेहनत करें। आज की तालीम ऐसी है कि उसमें न तो ब्रह्म-विद्या का पता है, न उद्योग का। ब्रह्म-विद्या न होने का परिणाम यह हो रहा है कि हम सब विषय-भोग-परायण और इन्द्रियों के गुलाम हो गये हैं। जो पढ़ा-लिखा होता है, वह आरामतलब हो जाता है। उसके मन में सतत भोग और ऐश्वर्य की लालसा बनी रहती है। तालीम में उद्योग न होने के कारण हाथ भी बेकार बन जाते हैं। इस तरह आत्म-ज्ञान के अभाव में बुद्धि बेकार और उद्योग के अभाव में हाथ बेकार हो जाते हैं। फिर ये शिक्षित लोग दस उँगलियों से काम करने के बजाय हाथ में लेखनी लेकर तीन उँगलियों से ही काम करते हैं। अगर इस तरह की विद्या सबको हासिल होगी, तो देश क्या खायेगा ?

ब्रह्मविद्या और उद्योग

इसलिए आज की तालीम बदलनी होगी। हमें अपनी तालीम में ब्रह्म-विद्या और उद्योग, दोनों बातें शामिल करनी होंगी। ब्रह्म-विद्या से आत्मा की पहचान हो जायगी। शरीर, मन और इन्द्रियों पर काबू रहेगा। सारी दुनिया

के प्रति प्रेम पैदा होगा, स्व-पर का भेद मिट जायगा। यह छोटा-सा घर मेरा है, यह खेत मेरा है, इस तरह की सब बातें मिट जायँगी। जिसे ब्रह्म-विद्या हासिल हुई हो, वह 'मेरा-मेरा' नहीं कहेगा। वह कहेगा कि यह घर, यह जमीन, यह सम्पत्ति 'सबकी' है। लेकिन जिन्हें भ्रम विद्या मिलती है, वे कहते हैं कि यह सब 'मेरा' है।

हमारी तालीम में हर लड़का दोनों हाथों से काम करेगा और स्वावलम्बी बनेगा। हर लड़का उत्तम रसोई करेगा। सब लड़के खेत में मेहनत करेंगे। आज तो देश में इतना आलस फैला हुआ है कि सारे उद्योग खतम हो रहे हैं। आज हमें अच्छे उद्योग करनेवाले लोग चाहिए, अच्छे बढ़ई चाहिए, बुनकर चाहिए, इंजीनियर चाहिए, लोहार चाहिए, चमार चाहिए, सिपाही और सेनापति चाहिए। हमें ऐसे व्यापारी चाहिए, जो व्यापार करके लोगों की रक्षा करें, किसीको ठगें नहीं। कोई धन्धा ऊँचा या कोई नीचा न होगा। कोई भी यह नहीं कहेगा कि फलाना काम मैं नहीं कर सकता, क्योंकि वह हीन काम है।

निर्भयता की आवश्यकता

आज दुनियाभर लड़ाई के लिए शस्त्रास्त्र बढ़ाये जा रहे हैं। हर देश में बंदूक, हवाई जहाज, ऐटम बम और हाइड्रोजन बम बनाये जा रहे हैं। अगर यही सिलसिला चला, तो सारी दुनिया का खातमा हो जायगा। इसके आगे जो लड़ाई होगी, उसमें मानव-समाज जिन्दा न रहेगा। अगर हम ऐसी हिंसा का मुकाबला करना चाहते हैं, तो हमें निर्भय बनना होगा। माता, पिता और गुरु अपने लड़कों और शिष्यों को डरायें या धमकायें नहीं। उन्हें प्रेम से बात समझायें। अगर वे अपने बच्चों को मार-पीटकर अच्छी बातें सिखाना चाहेंगे, तो लड़के डरपोक बनेंगे। फिर तो आगे चलकर कोई भी धमकाकर उनसे काम करवा लेगा।

आजकल गाँव के लोग पुलिस से भी डरते हैं। लेकिन हम गाँववालों को समझाना चाहते हैं कि अब स्वराज्य आ गया है। ये बड़े-बड़े मन्त्री आपके नौकर हैं। आपने पाँच साल के लिए इन्हें नौकरी पर रखा है। पाँच साल बाद ये फिर से आपके पास वोट माँगने आयेंगे। आप मालिक हैं, इसलिए आपको उनसे

न डरना चाहिए। अवश्य ही नौकरी की इज्जत करना और उनसे प्यार भी करना चाहिए। फिर यह पुलिस तो उनके नौकर है। याने आपके नौकरों के नौकर! उनसे तो हरगिज न डरना चाहिए।

पहले तो पति भी पत्नी से कहता था कि मैं तेरा देव हूँ और तू मेरी दासी। पर अब यह नहीं चलेगा। अब पति पत्नी का देव बनेगा, तो पत्नी उसकी देवी। पत्नी पतिव्रता रहेगी, तो पति पत्नीव्रती। अब तक जो एकतरफा धर्म चला, वह अब नहीं चलेगा। जिस देश मे डराना-धमकाना चलता है, वहाँ लोग दब्बू बन जाते हैं। अगर रूसवाले या अमेरिकावाले हमें धमकायेंगे, तो हम कहेंगे कि आप हमें क्यों धमका रहे हो। हम तो अपनी खेती करके रोटी हासिल करते हैं, हम कोई गुनहगार नहीं। हम तो हरि के दास हैं। हरि के दास किसीके सामने सिर नहीं झुकाते। इन दिनों जो सिर झुकाकर प्रणाम करने की बात चलती है, वह भी मुझे अच्छी नहीं लगती। आज आप बाबा के सामने सिर झुकाते हैं, कल किसी डण्डेवाले के सामने झुकायेंगे। इसलिए सिर तो परमेश्वर के ही सामने झुकाना चाहिए। और सबको नम्रता से, दोनों हाथों से प्रणाम करना चाहिए।

नये समाज और नये राष्ट्र की बुनियाद भूदान

हमें इस तरह का नया समाज और नया राष्ट्र बनाना है, उसमें सब लोग दोनों हाथों से काम करेंगे। कोई ऊँच नहीं और कोई नीच नहीं होगा। कोई मालिक नहीं और कोई मजदूर नहीं होगा। सब भाई-भाई बनकर रहेंगे। सबके दिलों मे प्रेम होगा, सिर मे बुद्धि और प्राण में श्रद्धा-भक्ति होगी। कोई किसीसे डरेंगे नहीं और न कोई किसीको डरायेंगे ही। सब आत्मा को पहचानते होंगे, देह की फिक्र नहीं करेंगे, इन्द्रियों पर काबू रखेंगे और विषयों के गुलाम नहीं बनेंगे। इस तरह का देश हमें बनाना है। आज हमें वह मौका मिला है। इस तरह का सर्वोदय-समाज हम बनायेंगे और उसकी बुनियाद भूदान-यज्ञ होगी।

हमें भूदान-यज्ञ में डराकर या धमकाकर जमीन नहीं माँगनी है, बल्कि प्रेम से विचार समझाना है। अगर आपसे कोई धमकाकर जमीन माँगेगा, तो हरगिज मत दीजिये। विचार और प्रेम में इतनी ताकत है कि जो प्रेम से विचार सम-

आयेगा, वह दुनिया को जीत लेगा। बाबा को अब तक ३८ लाख एकड़ जमीन मिली है, तो क्या बाबा के हाथ में तलवार है या सत्ता है? बाबा तो प्रेम से विचार समझाता है और लोग उसकी बातें मानते हैं।

विचार भगवान् और प्रेम भक्त

प्रेम से बढ़कर दुनिया में कोई ताकत नहीं। जहाँ प्रेम और विचार, दोनों एक हो जाते हैं, वहाँ योगेश्वर कृष्ण और पार्थ धनुर्धर एक होते हैं, इसलिए विजय प्राप्त होती ही है। जहाँ भक्त और भगवान्, दोनों एक हुए, वहाँ उसे कौन जीत सकता है? विचार हमारा भगवान् है। जहाँ प्रेम और विचार एक हो जाते हैं, वहाँ ज्वालामुखी जैसी ताकत पैदा होती है। भूदान-यज्ञ में जो ताकत है, वह प्रेम और विचार की ताकत है। आप गाँव-गाँव जाकर प्रेम से यह विचार समझा दीजिये कि गाँव में कोई भूमि-हीन न रहेगा। मालिक भगवान् होगा और हम सारे सेवक। सब एक-दूसरे को मदद करेंगे!

नौरंगपुर
५-७-'५५

भूदान-आरोहण की पाँच भूमिकाएँ : ३२ :

भूदान-यज्ञ का आरम्भ सवा चार साल पहले तेलंगाना में हुआ था। वहाँ एक विशेष परिस्थिति थी और उसमें जो करना उचित था, उस दृष्टि से काम का आरम्भ हुआ। वहाँ जमीन के मालिक और मजदूरों में द्वेषभाव, तिरस्कार आदि भावनाएँ थीं, जिन्हें हटाना जरूरी था। उसी दृष्टि से वहाँ जो आरम्भ हुआ, उसका सारे देश पर काफी असर हुआ। देश को एक विशेष विचार का भान हुआ। भूदान-आन्दोलन की वह प्रथम भूमिका थी।

उसके बाद दूसरी भूमिका शुरू हुई, जब वह चीज सारे हिन्दुस्तान में फैली। तेलंगाना में तो एक विशेष परिस्थिति में काम हुआ; वह काम सारे देश में हो सकता है या नहीं, यह देखना था। हमारे दिल्ली के प्रवास में जो काम हुआ,

उससे भूदान-यज्ञ की दूसरी भूमिका सिद्ध हुई और सारे देश का ध्यान इस काम की तरफ खिंच गया। उससे चारों ओर व्यापक प्रचार हुआ।

उसके बाद कार्यकर्ताओं के मन में विश्वास पैदा होना जरूरी था। उसकी ओर हमारा ध्यान गया। इसलिए उत्तर प्रदेश में पाँच लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने का एक छोटा-सा सकल्प और सारे भारत के लिए पचीस लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने का संकल्प किया गया। दोनों सकल्प पूरे हो गये और कार्यकर्ताओं में आत्मनिष्ठा पैदा हुई। तब इस आन्दोलन की तीसरी भूमिका समाप्त हुई।

उसके बाद बिहार में यह प्रयत्न हुआ कि वहाँ कुल जमीन का छठा हिस्सा प्राप्त हो और सब भूमिहीनों को भूमि मिले। बिहार में काफी काम हुआ और एक राह खुल गयी। एक ही प्रदेश में लाखों एकड़ जमीन प्राप्त हो सकती है और लाखों लोग दान देते हैं, यह दृश्य बिहार में देखने को मिला। वहाँ जो जमीन मिली, उसका हम उतना महत्त्व नहीं मानते हैं, जितना इस बात का मानते हैं कि वहाँ करीब तीन लाख लोगों ने दान दिया। दाताओं की संख्या का महत्त्व अधिक है। उससे लोगों के मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई कि यह चीज फैल सकती है। लाखों लोगों ने बड़ी श्रद्धा से दान दिया, इसका मैं साक्षी हूँ। यह ठीक है कि समुद्र में जब पानी आता है, तो कुछ मैला भी आता है। इतने सारे दान में कई दान ऐसे होंगे, जिन्हें सात्त्विक दान न कहा जा सकेगा। फिर भी उसमें सात्त्विक दान का अंश भी काफी पड़ा है। आखिर यह समझना चाहिए कि दुनिया में सत्त्व गुण का जितना अंश है, उससे ज्यादा अंश भूदान-यज्ञ में कैसे दीखेगा। लेकिन हम मानते हैं कि वहाँ जो काम हुआ, उससे सात्त्विक भावना जाग गयी। कुल जमीन के छठे हिस्से की जो माँग थी, वह अभी पूरी नहीं हुई है। लेकिन वहाँ के कार्यकर्ता सोये नहीं हैं, काफी काम में लगे हैं। हमारे बिहार छोड़ने के बाद उनकी कसौटी थी। वे उस कसौटी पर खरे उतरेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। अभी वहाँ जमीन का बँटवारा हो रहा है। उसके बाद और जमीन मिलेगी और वातावरण बदल जायगा। भूमि का मसला कैसे हल हो सकता है, इसकी राह खुल ही जायगी। वहाँ कार्यकर्ता जब कभी सोचने बैठते हैं, तो सब भूमिहीनों को भूमि देने की दृष्टि से ही सोचते हैं, यह कोई छोटी बात नहीं। यद्यपि वहाँ का

काम अभी तक पूरा नहीं हुआ है, लेकिन पूरा होने की सूरत दीखने लगी है। और जैसा मैंने कहा था, वहाँ का वातावरण बदल गया है और कुल प्रांत में ऐसी हवा पैदा हुई है कि उसका लाभ सरकार कानून बनाने में ले सकती है। भूदान-यज्ञ की चौथी भूमिका यहाँ समाप्त हुई।

अब उड़ीसा में आंदोलन की पाँचवीं भूमिका का आरंभ हुआ है। यहाँ जो काम हो रहा है, उसमें क्रांति का दर्शन है। गाँव-के गाँव एक परिवार के समान बन जायँगे! उसे क्या नाम देना चाहिए, इस बारे में अर्थशास्त्रज्ञों में विवाद हो सकता है। लेकिन मैं सीधी-सी बात कहता हूँ कि 'गाँव का परिवार' बनाना चाहिए। हिन्दुस्तान में परिवार-भावना काफी अच्छी और मजबूत है। उसीका विकास कर उसे ग्राम का रूप देना है। उसके बाद 'ग्रामराज्य' की स्थापना का जो सारा कार्यक्रम है, उसकी नींव बन जायगी। फिर आगे मकान बनाना होगा। इसीलिए मैंने कहा है कि यहाँ जो भूमिका तैयार हो रही है, वह भूदान-यज्ञ की आखिरी भूमिका है।

अभी तो कार्य का आरंभ ही

इसके बाद काम खतम हो जायगा, ऐसी बात नहीं है। बल्कि उसके बाद काम का आरंभ होगा। हमें जो चीज करनी है, उसके लिए इतना सारा मसाला तैयार किये बगैर काम नहीं हो सकता था। हमने लोगों को थोड़ी राहत पहुँचाने का काम नहीं सोचा था, यद्यपि हमारे काम से राहत मिल ही जाती है। हमारा मकसद था, अहिंसक जनशक्ति निर्माण करना। गाँव का एक परिवार बने बगैर अहिंसक जनशक्ति निर्माण नहीं होती। इसीलिए हम वर्षों से सोचते थे कि इसके लिए क्या साधन मिल सकता है। इसका आरंभ कैसे किया जाय। हमारे करीब तीस साल ग्रामों की सेवा में बीते हैं और उसमें ग्राम के सब पहलुओं का जितना चिंतन हो सकता था, हमने किया है। हमारा आत्म-शक्ति पर पहले से ही विश्वास था और आज भी है। लेकिन उस समय हमारे हाथ में स्वराज्य नहीं आया था, इसलिए हम सोचते थे कि स्वराज्य आने के बाद ही कुछ काम बन सकेगा। अब स्वराज्य भी प्राप्त हो गया है। इसलिए हमारे सिर

पर जो जबरदस्त बोझ पड़ा था, वह हट गया और जन-शक्ति निर्माण करने की सहूलियत हो गयी है।

ग्राम-दान से काम में गहराई

भूदान-यज्ञ मे एक के बाद एक पाँच सीढ़ियाँ चढ़ने का जो मौका मिला, उसकी बुनियाद है, हमारा तीस साल का ग्राम-सेवा का काम। इसीलिए जब हमने देखा कि इस जिले मे यह बात बन सकती है, तब हमने अपना यहाँ का निवास और बढ़ाया। हमने सारे हिंदुस्तान से छठे हिस्से की याने पाँच करोड़ एकड़ की जो माँग की है, उससे देश म एक बड़ा काम बनेगा। किंतु यहाँ समग्र ग्रामदान से जो काम हो रहा है, वह न होता, तो पाँच करोड़ एकड़ जमीन मिल जाने के बाद भी हमें जनशक्ति निर्माण करने के लिए कोई और साधन ढूँढ़ना पड़ता। हमारी पाँच करोड़ एकड़ की माँग आज भी कायम है और चाहते हैं कि सारे हिंदुस्तान के सब लोग इसे जल्द-से-जल्द पूरा कर दें। इससे जो काम बनेगा, वह व्यापक होगा। लेकिन ग्रामदान से जो काम होता है, वह गहरा काम होता है। व्यापक कार्य भी चलना चाहिए और उसे हमने इन चार सालों मे जितनी चालना दे सकते थे, दी है। खुशी की बात है कि भिन्न-भिन्न सस्थाएँ इस बारे में सोच रही हैं। अब परमेश्वर की कृपा से इस गहरे काम को भी चालना देने का काम हो रहा है। हमारा विश्वास है कि कोरापुट से सारे हिंदुस्तान को राह मिलेगी।

भूमिकाओं का नामकरण

पहली भूमिका केवल स्थानिक दुःख-निवारण की थी। उसे हमने 'अशांति-शमन' नाम दिया। दूसरी भूमिका व्यापक सद्भावना जगाने की थी और सारे देश का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने की थी। इसलिए उसे हमने 'ध्यानाकर्षण' नाम दिया। तीसरी भूमिका कार्यकर्ताओं में आत्म-विश्वास पैदा करने की थी। उसको हमने 'निष्ठा-निर्माण' नाम दिया। चौथी भूमिका एक प्रदेश में छठे हिस्से भूमि की माँग किस तरह पूरी हो सकती है, यह देखने की थी। उसे हमने 'व्यापक भूमि-दान' नाम दिया है। और पाँचवीं भूमिका ग्राम का एक परिवार

बनाने की है। उसके बाद ग्रामराज्य और रामराज्य आरम्भ हो जायगा। इसे हमने 'भूमि-क्रांति' नाम दिया है।

स्वराज्य प्राप्ति से अधिक त्याग जरूरी

अब इस पाँचवीं भूमिका का आरम्भ हुआ है, तो कार्यकर्ताओं को कोई शिकायत का मौका न रहेगा कि उनके लिए कार्यक्रम की कमी है। जिसके दिल में काम का उत्साह है, लगन है, उसे अब परिपूर्ण काम मिल जायगा और मरने की भी फुरसत न रहेगी। इसीलिए गुजरात के रविशंकर महाराज ने, जो कि सत्तर साल के बूढ़े हैं, कहा है कि 'अब मुझे सौ साल जीने की आशा निर्माण हुई है।' इसीलिए हम चाहते हैं कि यहाँ के कार्यकर्ता अपने में एक स्वतन्त्र धर्म-प्रवर्तन का निष्ठाभाव निर्माण करें। वे समझ लें कि अपनी अब तक की जो शक्ति और योग्यता थी, उससे काम न चलेगा। जब लोग अपना सर्वस्व देने के लिए तैयार हुए हैं, तो कार्यकर्ताओं को भी अपने त्याग और प्रेम की मात्रा चढ़ानी होगी। उसमें ज्ञान और भक्ति की कसौटी होगी। कार्यकर्ताओं को सोचना चाहिए कि अब हमें अपना सर्वस्व ग्राम के लिए देना होगा। स्वराज्य-प्राप्ति में जितना त्याग किया गया, उससे इस आन्दोलन में ज्यादा त्याग करना होगा।

ग्रामीण कार्यकर्ताओं में असीम कार्य-शक्ति

मैं मानता हूँ कि इस काम के लिए नये-नये कार्यकर्ता निर्माण होंगे और वे ज्यादातर देहात के कार्यकर्ता होंगे। पहले के आन्दोलनों में कार्यकर्ता ज्यादातर मध्यम श्रेणी के और शहर के होते थे। वे लोग भी इस आन्दोलन में जरूर रहेंगे। किन्तु इसमें ज्यादातर लोग देहात के होंगे। जब देहात-देहात में कार्यकर्ता निर्माण होंगे, तो ग्राम-निर्माण का कार्य बड़ा ही सुन्दर होगा। क्योंकि उनमें जो त्याग-शक्ति है, उसकी कोई सीमा ही नहीं है। हम ऊपर के वर्ग के लोग खूब-खूब त्याग करते हैं, तो भी हमारे जीवन में भोग रहता ही है। लेकिन उन लोगों को त्याग की आदत ही है। इसलिए उनमें जब ग्राम-सेवा की भावना निर्माण होगी, तब भगवान् कृष्ण के युग के जैसा काम होगा। हमें पूर्ण विश्वास

है कि ग्रामदान के बाद जब ग्राम-निर्माण का काम शुरू होगा, तब गाँव-गाँव में गोकुल और वृन्दावन देखने को मिलेगा।

डुमरीपदर
३०-७-'५५

व्यक्तिगत स्वामित्व-विसर्जन ही सच्चा स्वार्थ : ३३ :

सर्वोदय का विचार समग्र विचार है और भूदान-यज्ञ उसकी बुनियाद है। सर्वोदय में सबकी बराबरी होती है, सब समान होते हैं, सब भाई-भाई बनते हैं, कोई ऊँच नहीं, कोई नीच नहीं। जैसे वैष्णवों में सब अपने को भक्त और सबमें हीन समझते हैं, वैसे ही सर्वोदय का भक्त अपने को सबसे हीन और सबको अपने से श्रेष्ठ समझता है। सर्वोदय का अर्थ है : 'सब लोग सुखी रहें, पीछे मैं सुखी बनूँगा। सबको खाना मिले, पीछे मुझे मिले।' सर्वोदय की मूर्ति, सर्वोदय की मिसाल तो घर की माता है। कुछ लोग कहते हैं कि सर्वोदय की तालीम के लिए शिविर खोलने चाहिए, कॉलेजों में उसकी तालीम देनी चाहिए। मैं कहता हूँ कि यह तो सब जरूर होना चाहिए। लेकिन सर्वोदय की तालीम की एक विशाल योजना हो चुकी है। सर्वोदय की तालीम विनोबा नहीं देता, हर माता घर-घर में अपने बच्चों को देती है। हर माता बच्चों को दूध के साथ सर्वोदय पिलाती है। माता घर के सब लोगों को खिलाकर खाती है—यह जो उसकी वृत्ति है, वह सर्वोदय की ही वृत्ति है। इस तरह सर्वोदय की मिसाल, सर्वोदय का गुरु जब हर घर में मौजूद है, तो इसमें ऐसी कोई कठिन चीज नहीं, जिसे समझना मुश्किल होगा।

घर का न्याय गाँव में लागू करो

एक भाई ने लिखा था कि 'यह बाबा सबको परमार्थी बनाना चाहता है। मनुष्य में परमार्थ की भावना थोड़ी होती है और स्वार्थ की भावना ज्यादा, यह बात बाबा नहीं समझता।' मैं कहता हूँ कि मनुष्य के लिए यह बिलकुल

गलत विचार है। मनुष्य का स्वार्थ ही इस चीज में है कि वह समाज के लिए अपना सब कुछ त्याग करे। मनुष्य दूसरों के लिए जितना त्याग करता है, उतना ही उसका स्वार्थ सधता है। माता को घर में जो आनन्द उपलब्ध होता है, वह कौन-से स्वार्थी और लोभी मनुष्य को उपलब्ध होता है? माताओं ने पूछिये कि आप पहले खुद खायेंगी और पीछे खिलायेंगी, तो आपको कितना आनन्द मिलेगा? अगर माताएँ बच्चों से कहे कि तुम्हारा सारा आधार मेरे पर है, इसलिए मेरा शरीर मजबूत रहना चाहिए। मैं पहले दूध पीऊँगी, पीछे तुम पीओ—अगर माताएँ आधुनिक अर्थशास्त्रों के शिष्यत्व में ऐसा स्वार्थ सीखें—तो उन्हें क्या सुख मिलेगा? इस तरह जब हर घर में परमार्थ की मिसाल मौजूद है और हर घर में यह अनुभव आता है कि जो त्याग करता है, उसे आनन्द प्राप्त होता है, तो बाबा इससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहता। वह इतना ही कहता है कि आनन्द की जो विद्या, आनन्द की जो युक्ति तुम्हें घर में हासिल हुई है, उसका प्रयोग गाँव में करो। घर में तुम अपने परिवार के लिए चिन्ता करते हो और अपने खुद के लिए नहीं करते। तो, जो न्याय घर में लागू करते हो, वही गाँव को लागू करो, तो तुम्हारा आनन्द बहुत बढ़ेगा।

यह बात समझना इतना आसान है कि बिलकुल अपढ़ लोग भी समझ गये हैं और कोरापुट के तीन सौ पचास गाँवों के लोगों ने कुल गाँव की जमीन का दान दिया है। मेरा दावा है कि मैं समाज को सच्चे स्वार्थ की तालीम दे रहा हूँ। हिन्दुस्तान के हर मनुष्य का स्वार्थ इसीमें है कि वह व्यक्तिगत मालकियत का विसर्जन करे।

जीवित समाज का लक्षण

इसी तरह जिस समाज के लोग सतत दूसरों की चिन्ता किया करते हैं, वही जिन्दा समाज है। जैसे हाथ के पास आया हुआ लड्डू हाथ फौरन मुँह के पास पहुँचा देता है, वैसे ही जिस समाज के लोग अपने पास आयी सम्पत्ति दूसरों के पास पहुँचा देते हैं, वह समाज जिंदा समाज है और जिस समाज के लोग जमीन और संपत्ति को पकड़े रखते हैं, वह मुर्दा समाज है। एक बार एक लड़का मेरे पास

आया। उसके कान में दर्द था, इसलिए वह रो रहा था। मेरा जरा विनोदी स्वभाव है, इसलिए मैंने उससे पूछा कि 'अरे, कान में दर्द है, तो आँखें क्यों रो रही हैं?' लेकिन कान का दुःख आँखों के पास पहुँचता है, यह जीवित शरीर का लक्षण है। अगर किसीके कान में खूँटी ठोंको और उसकी आँखों से आँसू न निकलें, तो समझना चाहिए कि वह मरा हुआ मनुष्य है। उसी तरह जिस गाँव में अड़ोसी-पड़ोसियों का दुःख एक-दूसरे के पास नहीं पहुँचता, उस गाँव का समाज मुर्दा है।

प्रेम और विचार की ताकत

यह बात इतनी स्वाभाविक है कि हर कोई समझता है। कुछ बड़े-बड़े लोग बाबा से मिलने के लिए डरते हैं। एक बार एक बड़े जमींदार से किसीने कहा कि बाबा अपने गाँव में आया है, तो उससे मिलने के लिए चलिये। उन्होंने कहा कि बाबा के लिए हमारे मन में बड़ा आदर है, हमने उनके ग्रन्थ पढ़े हैं। लेकिन अभी उनसे मिलने की इच्छा नहीं है। जब उनसे कारण पूछा गया, तो उन्होंने कहा कि अगर मिलने जायँगे, तो वह जमीन माँगेगा और देनी पड़ेगी। इस पर प्रश्नकर्ता ने पूछा कि जमीन क्यों देनी पड़ेगी? आप नहीं देना चाहते हैं, तो मत दीजिये। सिर्फ बाबा की बात सुन लीजिये। बाबा के पास कोई ताकत नहीं है, वह तो केवल प्रेम से माँगता है। तो वे जमींदार भाई बोले कि यही तो बड़ी ताकत है। वह प्रेम से माँगता है और उसकी बात सही है, इसलिए हम उसे टाल नहीं सकते। जब मेरे पास यह बात आ पहुँची, तो मैंने कहा कि उनकी जमीन मुझे मिल ही चुकी। वह हमारी बात कबूल कर चुके हैं, इससे ज्यादा हम कुछ नहीं चाहते। अगर हिन्दुस्तान के सब लोग बाबा की बात हृदय से कबूल करते हैं, तो बाबा एक एकड़ जमीन भी नहीं चाहता। फिर मुझे जरूरत ही क्या है कि मैं जमीन लेने और बाँटने के धन्धे में पड़ूँ। जिस विचार ने बाबा को घुमाया है, वह विचार आपके हृदय में आयेगा, तो वही आपको भी घुमायेगा।

निमित्तमात्र बनो

भूदान-यज्ञ में सैकड़ों पावन कहानियाँ बनी हैं। वह सारा यही दिखा रहा है कि ईश्वर की शक्ति कुछ काम करना चाहती है। हमें तो उस ईश्वर शक्ति के

निमित्तमात्र बनना है। भगवान् ने गीता में अर्जुन से कहा है : "मयैवेते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्"—अरे, ये तो सब पहले ही मर चुके हैं, लेकिन अर्जुन, तू निमित्तमात्र बन। इसी तरह मैं आपसे कहता हूँ कि हिन्दुस्तान में भूमि की मालकियत मर चुकी है। अब जो सामने आकर दान देंगे, वे उदार साबित होंगे, वे विश्व-शक्ति के हाथ में औजार बनेंगे, कल्याणकारी शस्त्र बनेंगे, वे भगवान् के हाथ में सुदर्शन-चक्र के समान चमकेंगे। नहीं तो ये सारे राजनैतिक पक्षवाले मेरे पीछे क्यों आते? क्या आप समझते हैं कि इन्हें बाबा से चार आने मिले हैं? जब रेती में से तेल निकलेगा, तब बाबा से चार आने मिलेंगे। लेकिन स्पष्ट है कि बाबा की बात सही है, इसलिए उसे कोई टाल नहीं सकता। बाबा ने भरोसा रखा था विश्व-शक्ति पर, आत्म-शक्ति पर या ईश्वर की शक्ति पर आप उसे चाहे जो नाम दीजिये!

अविरोधी कार्य

एक बात अवश्य याद रखनी चाहिए कि हमारा काम किसीके विरोध में नहीं है। **'सर्वेषाम् अविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे"**—ब्रह्म-कर्म किसीके विरोध में शुरू नहीं होता। हमारा यह ब्रह्म-कार्य शुरू हुआ है, इसलिए इसमें किसीका विरोध नहीं है, सबका समन्वय है। इसमें दिल से दिल जोड़ने की बात है। इसलिए हमारा विश्वास है कि इस काम में हरएक राजनैतिक पक्ष के लोगों को पड़ना चाहिए। सबको समझना चाहिए कि सबकी भलाई के लिए यह काम हो रहा है। एक जगह कम्युनिस्टों ने कहा था कि 'बाबा का काम श्रीमानों के हित में चल रहा है।' मैं यह तीन साल पहले की बात कह रहा हूँ। अब तो कम्युनिस्टों का दिल भी हमारे लिए अनुकूल हो रहा है। हमने तो पहले से ही कहा था कि हम गरीबों के लिए काम करते हैं, इसलिए सबका हृदय हमें अनुकूल जरूर होगा। लेकिन जब हमने उनका यह आक्षेप सुना कि बाबा अमीरों का एजेण्ट है, तो हमें बहुत खुशी हुई। लेकिन यह ऐसा एजेण्ट है कि इसके एक हाथ में अमीरों की एजेन्सी है और दूसरे हाथ में गरीबों की भी एजेन्सी। यह तो दोनों को जोड़नेवाला पुल है। पुल इधर के मनुष्यों को उधर पहुँचाता है और उधर के मनुष्यों

को इधर। उसी तरह बाबा गरीबों को श्रीमान् बनायेगा और श्रीमानों को गरीब! दोनों को एक भूमिका पर लाकर दोनों में प्रेम बनायेगा और पुरोहित बनकर दोनों की शादी लगाकर चला जायगा। फिर वह उनसे कहेगा कि अब अपना संसार प्रेम से चलाओ। इस तरह यह आंदोलन दिलों के साथ दिल जोड़ने का आंदोलन है।

भारत की शक्ति एकता में

हिंदुस्तान बहुत बड़ा देश है। इसकी ताकत एकता में है। अगर हम लोग दिल से एक हो जायँगे, तो हमारी इतनी ताकत बनेगी कि दुनिया में हम अमर हो जायँगे। लेकिन हमारे दिल एक न हुए, तो यह बड़ाई, यह जनसंख्या और यह विस्तार ही हमारा शत्रु हो जायगा। हम समझते हैं कि हम अमीरों से जमीन लेते हैं, तो उन पर उपकार करते हैं और गरीबों को देते हैं, तो उन पर भी उपकार करते हैं। गरीब भी अपनी लँगोटी की आसक्ति रखता है, ममताभाव रखता है। इसलिए हम गरीबों से कहते हैं कि तुम अपनी झोपड़ी की आसक्ति छोड़ दो, तो अमीरों को भी अपने महल की आसक्ति छोड़नी पड़ेगी। लेकिन तुम अगर अपनी झोपड़ी की आसक्ति को पकड़े रखोगे, तो वे भी अपने महल को पकड़े रखेंगे। लोगों को समझना चाहिए कि गरीब और अमीर इस तरह अलग-अलग दो वर्ग नहीं हैं। हम तो कहते हैं कि जिन्होंने व्यक्तिगत मालकियत से चिपके रहने का तय किया, वे चाहे छोटे हों या बड़े, एक ही वर्ग के हैं।

पार्वतीपुरम् (आन्ध्र)
८-८-'५५

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद गाँव के लोगों की हालत सुधरेगी, ऐसी आशा लोगों ने रखी थी, जो गलत न थी। अगर स्वराज्य में जनता की हालत न सुधरे, तो उस स्वराज्य की कीमत भी क्या है ? लेकिन वे यह समझे नहीं कि स्वराज्य के बाद हमारी हालत सुधारना हमारे ही हाथ मे है। वे समझते है कि जैसे पहले मुसलमानों का या अंग्रेजों का राज्य था, वैसे अब कांग्रेस का राज्य आ गया है। लेकिन मुसलमानों के और अंग्रेजों या और भी किसी राजा के राज्य में आपके वोट किसीने माँगे नहीं थे। आज यहाँ जो राज्य चलाते हैं, वे लोगों के चुने हुए नौकर हैं। आप सब लोगों को सत्ता दी गयी है कि आप अपना राज्य जैसा चलाना चाहे, वैसा चलाइये और अपना राज्य चलाने के लिए कौनसे नौकर रखने हैं, यह भी आप ही तय कीजिये। इस तरह आपको वोट माँगा गया, आपने वोट दिया और पाँच साल के लिए अपने नौकर कायम किये। किसान अपने यहाँ सालभर के लिए नौकर रखता है। साल के आखिर मे अगर उसने अच्छा काम किया हो, तो वह उसे फिर से रखता है; नहीं तो उसे हटाकर दूसरा नौकर रखता है। इसी तरह आपने पाँच साल के लिए नौकरों को चुना है। अगर आपको उनका काम अच्छा लगा, तो आप उन्हें दुबारा चुनेंगे, नहीं तो दूसरों को चुनेंगे।

स्वराज्य किसीके देने से नहीं मिलता

मतलब यह है कि यहाँ आप जो बैठे है, सब-के-सब बादशाह हैं, स्वामी है। लेकिन आपमें से हर व्यक्ति अलग-अलग स्वामी नहीं, सब मिलकर स्वामी हैं। इस तरह आप स्वामी तो बन गये, फिर भी अपने पास सत्ता है, इसका हमें भान नहीं है। क्योंकि एक नाटक-सा हुआ, आपकी राय पूछी गयी और आपने राय दे दी। मान लीजिये, किसी घर में चार-पाँच साल के मूर्ख और बेवकूफ लड़के हैं। अगर उनसे पूछा जाय कि घर का कारोबार

कैसे चलाना चाहिए—उनसे वोट माँगे जायँ, तो क्या वे वोट देंगे ? वे तो यही कहेंगे कि आप यह क्या नाटक कर रहे हैं ? आप हमारे माँ-बाप हैं, आप ही हमारी चिंता कीजिये। वैसे ही लोगों ने कांग्रेसवालों से कहा कि आप बड़े हैं, आपने हमारी सेवा की है, आप हमारे माँ बाप हैं, आप ही राज्य चलाइये। उधर तो वे कहते हैं कि हम आपके नौकर होना चाहते हैं, अगर आप हमें नौकरी पर रखेंगे, तो हम नौकरी करना चाहते हैं और इधर ये लोग कहते हैं कि आप ही हमारे माँ-बाप हैं, इसलिए आप ही हमारी चिंता कीजिये !

वास्तव में सत्ता किसीके देने से नहीं मिलती। सत्ता या अधिकार तो अन्दर से प्राप्त होना चाहिए। वैसे हिंदुस्तान के लोग मूर्ख नहीं, काफी अच्छे समझदार हैं। अभी जो चुनाव हुआ, वह भी कितने सुन्दर ढंग से हुआ ! लोगों को लगता था कि यहाँ न मालूम क्या-क्या होगा, कितनी लड़ाइयाँ होंगी ! लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। बाहर के देशों के लोगों को आश्चर्य लगा कि हिन्दुस्तान के लोग अपढ़ होने पर भी यहाँ इतने ढंग से चुनाव कैसे हो सका। इसका कारण यही है कि हिन्दुस्तान के लोग दस हजार साल के अनुभवी हैं। ये अपढ़ जरूर हैं, लेकिन अनुभवी हैं, इसलिए ज्ञानी हैं।

हिंदुस्तान के लोग यद्यपि समझदार हैं, फिर भी वर्षों से उन्हें गुलामी की आदत पड़ गयी है। वे सोचते हैं कि सरकार माँ-बाप की तरह हमारी चिंता करेगी। इसलिए अब, जब कि उनके हाथ में सत्ता आयी है, उन्हें यह अनुभव होना चाहिए कि वास्तव में हमारे हाथ में सत्ता आयी है। क्या माता को माता का अधिकार कोई देता है ? माता तो अपने में मातृत्व का स्वयं अनुभव करती है। क्या शेर को किसीने जंगल का राजा बनाया है ? वह तो खुद अपना अधिकार महसूस करता है। इसी तरह स्वराज्य-शक्ति का लोगों को अन्दर से भान होना चाहिए। पूछा जा सकता है कि आखिर वह कैसे होगा ? क्या गाँव-गाँव के लोग दिल्ली का राज्य चलायेंगे ? नहीं, गाँव-गाँव के लोग तो गाँव-गाँव का ही राज्य चलायेंगे। तो फिर उन्हें राज्य चलाने का अनुभव हो जायगा।

गाँव-गाँव में 'मातृ-राज्य' दीख पड़े

इस जमाने में जो राज्य होता है, वह 'राज्य' नहीं, 'भाज्य' होता है—यह

लोगों का राज्य होता है। पहले के जमाने में जो लोगों को दबाता था, वही राजा होता था। कहा जाता है कि जंगल का राजा शेर होता है। इसके माने यह है कि जो जंगल के प्राणियों को खा जाता है, वह राजा होता है। संस्कृत में जानवरों के राजा को याने सिंह या शेर को 'मृगराज' कहते हैं। उस राजा के दर्शन होते ही सारे मृग थर-थर काँपते हैं। इस प्रकार की राज्य-सत्ता अब न चलेगी। अब तो राज्य-सत्ता सेवा की सत्ता होगी। माता को घर में क्या अधिकार होता है? बच्चे को भूख लगी है, तो उसे दूध पिलाना माता का पहला अधिकार है। बच्चे को सुलाकर फिर सोना, उसका नम्बर दो का अधिकार है। बच्चा बीमार पड़ा, तो रात को जागना, नम्बर तीन का अधिकार है। और घर में खाने की चीजें कम हों, तो पहले बच्चे को खिलाना और बाद कुछ न बचे, तो खुद फाका करना, नम्बर चार का अधिकार है। आज का हमारा राज्य 'मातृराज्य' है न? फिर हमें गाँव-गाँव में उसके नमूने दिखाने होंगे।

गाँव-गाँव में जो बुद्धिमान्, सम्पत्तिमान् और समझदार होंगे, वे गाँव के माता-पिता बन जायँ और गाँव की सेवा कर गाँव का राज्य चलायें। बुद्धिमान् पिता अपने लड़कों के लिए यही इच्छा करते हैं कि वे हमसे ज्यादा बुद्धिमान् बनें। पिता को तो तब खुशी होती है, जब उसका लड़का उससे आगे बढ़ जाता है। इसी तरह गुरु को तब खुशी होती है, जब उसका शिष्य दुनिया में उसका विस्मरण करा देता है—लोग गुरु का नाम भूल जाते और शिष्य को ही याद करते हैं। उसे लगता है कि मैंने अपने शिष्य को ज्ञान दिया और फिर भी मेरा नाम दुनिया में कायम रहा, तो मैंने ज्ञान ही क्या दिया? मेरा नाम मिटकर शिष्य का नाम चले, तभी मैं सच्चा गुरु होऊँगा। इसलिए गाँव में जो बुद्धिमान् लोग होंगे, वे इस तरह से काम करेंगे कि सब लोग उनसे ज्यादा बुद्धिमान् बनें। तो फिर ग्रामराज्य का रामराज्य बनेगा।

ग्रामराज्य और रामराज्य

स्वराज्य के माने हैं सारे देश का राज्य। जब दूसरे देश की सत्ता अपने देश पर नहीं रहती, तो स्वराज्य हो जाता है। लेकिन जब हरएक गाँव में स्वराज्य हो जाता

है, तब उसे 'ग्रामराज्य' कहा जाता है। जब गाँव के सब लोग बुद्धिमान् बन जायँ और किसी पर सत्ता चलाने की जरूरत ही न पड़े, तो उसका नाम है 'रामराज्य'। जब गाँव के झगड़े शहर के अदालत में जाते हैं और शहर के लोग उनका फैसला करते हैं, तो उसका नाम है 'गुलामी', 'दास्य' या 'पारतन्त्र्य'। गाँव के झगड़े गाँव में ही मिटाये जायँ, तो उसका नाम है स्वातन्त्र्य या स्वराज्य और गाँव में झगड़े ही न हों, तो उसका नाम है रामराज्य। हमें पहले ग्रामराज्य बनाना होगा और फिर रामराज्य। देश में स्वराज्य तो हो गया, अब हमें ग्रामराज्य बनाना है। इसीलिए भूदान-यज्ञ चल रहा है। हम गाँव-गाँव जाकर लोगों को समझाते हैं कि तुम्हारे गाँव का भला किसमें है, इस पर तुम खुद सोचो। अपने गाँव को एक राष्ट्र समझो। आज आप आन्ध्र-राष्ट्र और भारत-माता की जय बोलते हैं, उसी तरह अपने गाँव की जय बोलनी चाहिए।

हरएक ग्राम की जय होती है, तो देश की जय होगी। जब अपना हरएक अवयव काम करेगा, तभी सारा शरीर काम करेगा। आँख, कान, पाँव, हाथ, दाँत अच्छा काम करेंगे, तो सारा शरीर अच्छा काम करेगा। अगर इनमें से एक भी कम काम करे, तो देह का काम अच्छा नहीं चलेगा। इसी तरह सारे गाँव अपना काम अच्छी तरह से चलायेंगे, गाँव-गाँव में स्वराज्य बनेगा, तो देश का स्वराज्य भी अच्छा बनेगा। अतः हमें हरएक गाँव में राज्य चलाना होगा। एक देश में विचार के जितने विभाग और जितने काम होते हैं, उतने सारे गाँव में होंगे। वहाँ आरोग्य-विभाग होता है, तो गाँव में भी आरोग्य-विभाग चाहिए, वहाँ उद्योग-विभाग, कृषि-विभाग, तालीम-विभाग, न्याय-विचारण विभाग होते हैं, तो गाँव में भी उतने सारे विभाग होने चाहिए। वहाँ पर परराष्ट्र के साथ सम्बन्ध आता है, तो ग्राम में भी परग्राम के साथ सम्बन्ध आयेगा।

ग्रामे ग्रामे विश्वविद्यापीठम्

ग्राम-ग्राम में विद्यापीठ होना चाहिए : 'ग्रामे ग्रामे विश्वविद्यापीठम्।' यह है, सच्चा ग्रामराज्य। किसीने हमसे कहा कि 'प्राथमिक शाला हर गाँव में होनी चाहिए, हाईस्कूल बड़े गाँव में होने चाहिए और विद्यालयपत्तनम् जैसे शहर में

कॉलेज होना चाहिए', तो मैंने उनसे कहा : 'अगर ईश्वर की ऐसी योजना होती, तो गाँव में दस साल की उम्र तक के ही लोग रहते। फिर उसके बाद पन्द्रह-बीस साल तक की उम्र के लोग बड़े गाँव में रहते और उस उम्र से अधिक उम्र-वाले लोग विशाखपत्तनम् जैसे शहर में रहते। लेकिन जब जन्म से लेकर मरण तक का सारा व्यवहार गाँव में ही चलता है, तो पूरी विद्या गाँव में क्यों नहीं चलनी चाहिए ?' ये लोग ऐसे दरिद्री हैं कि एक-एक प्रांत में एक-एक युनिवर्सिटी स्थापन करने की योजना करते हैं। लेकिन मेरी योजना में हर गाँव में युनिवर्सिटी होगी। सोचने की बात है कि क्या गाँव को टुकड़ा रखेंगे ? चार साल तक की शिक्षा याने एक टुकड़ा गाँव में रहेगा। फिर गाँववाले आगे की शिक्षा प्राप्त करना चाहें, तो उन्हें गाँव छोड़कर जाना पड़ेगा। इसके कोई मानी नहीं हैं। मेरे ग्राम में मुझे पूरी तालीम मिलनी चाहिए। मेरा ग्राम टुकड़ा नहीं, पूर्ण है। 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्'—पूर्ण है यह और पूर्ण है वह ! ये लोग कहते हैं कि यह भी टुकड़ा है और वह भी टुकड़ा है और सब मिलकर पूर्ण है। किन्तु हमारी योजना में इस तरह टुकड़े-टुकड़े सीकर पूर्ण बनाने की बात नहीं है। हम चाहते हैं कि हर गाँव में राज्य के सब विभागों के साथ एक परिपूर्ण राज्य हो।

गाँव-गाँव राज्य-कार्य-धुरन्धर

इस तरह हर छोटे-छोटे गाँव में राज्य होगा, तो हर गाँव में राज्य-कार्य-धुरंधरों का समूह होगा। गाँव-गाँव में अनुभवी लोग होंगे। दिल्लीवालों को राज्य चलाने में कभी मुश्किल मालूम हुई, तो वे सोचेंगे कि दो-चार गाँवों में चला जाय और वहाँ के लोग किस प्रकार राज्य चलाते हैं, यह देख आया जाय। क्योंकि राज्यशास्त्र-विद्या-पारंगत लोग गाँव-गाँव में रहते हैं। इसलिए गाँव-गाँव में विद्यापीठ होना चाहिए। आज तो लोग कहते हैं कि गाँव में राज्यशास्त्र का ज्ञाता कोई है ही नहीं। जिले में भी उसके ज्ञाता नहीं, सारे प्रदेश में दो-तीन ही होंगे। जब स्वराज्य चलाना चाहते हैं, तो राज्यशास्त्र के ज्ञाता इतने कम होने से कैसे काम चलेगा ? इसलिए गाँव-गाँव में ऐसे ज्ञाता होने चाहिए। आज हालत ऐसी है कि पंडित नेहरू ने एक दफा कहा था कि हमें जरा प्रधानमंत्री-

पद से छुट्टी दीजिये', तो सारे लोग घबड़ा गये और उनसे कहने लगे कि 'आपके बिना हमारा कैसे चलेगा ?' यह कोई स्वराज्य नहीं ! असली स्वराज्य तो वह है, जब पंडित नेहरू मुक्त होने की इच्छा प्रकट करें, तो लोग उनसे कहें कि 'जी, जरूर मुक्त हो जाइये। आपने आज तक बड़ी सेवा की है, आपको मुक्त होने का हक है।'

अक्ल का बँटवारा

इस तरह हमें, जो राजसत्ता दिल्ली में इकट्ठी हुई है, उसे गाँव-गाँव बाँटना है। हम तो परमेश्वर के भक्त हैं, इसलिए हम ईश्वर का ही उदाहरण सामने रखें। ईश्वर ने अगर अपनी सारी अक्ल वैकुंठ में रखी होती और किसी प्राणी को वह दी ही न होती, तो दुनिया कैसे चलती ? फिर तो किसी मनुष्य को अक्ल की जरूरत पड़ने पर वैकुंठ में टेलीग्राम भेजकर थोड़ी सी अक्ल मँगवानी पड़ती। आज आपके मंत्रियों को विमान से दौड़ना पड़ता है, तो भगवान् को कितना दौड़ना पड़ता ? लेकिन भगवान् ने ऐसी सुंदर योजना की है कि सबको अक्ल बाँट दी है। मनुष्य, घोड़ा, गधा, साँप-बिच्छू, कीड़े-मकोड़े, सबको अक्ल दी है। किसी एक जगह पर बुद्धि का भंडार नहीं रखा। इसीलिए कहा जाता है कि भगवान् निश्चित होकर क्षीरसागर में निद्रा लेते हैं। क्या हमारे मंत्री इस तरह निद्रा ले सकते हैं ? लेकिन भगवान् इस तरह निद्रा लेते हैं कि इसका पता भी नहीं चलता है कि वे वहाँ हैं। असली स्वराज्य तो वह होगा, जब दिल्ली के लोग सोते रहेंगे। दिल्ली के क्षीरसागर में हमारे प्रधानमंत्री सोते हुए सुनाई पड़ेंगे। लेकिन आज तो हम यह सुनते हैं कि हमारे प्रधानमंत्री अठारह घंटे तक जागते हैं। क्या यह भी कोई स्वराज्य है ?

शासन-विभाजन

पहले लंदन में सत्ता थी, तो वहाँ से पार्सल होकर दिल्ली आयी है। यह तो बड़ी कृपा हुई। लेकिन वह पार्सल दिल्ली में ही अटक गया है, उसे अब गाँव-गाँव पहुँचाना है। हमें लोगों को स्वराज्य की शिक्षा देनी है, तो यह सारा करना होगा। इसीका नाम है, शासन-विभाजन। शासन का आज जो केंद्रीकरण

हुआ है, इसके बदले हमें शासन का विभाजन करना होगा और हर गाँव में शासन या सत्ता बाँटनी होगी। फिर जब गाँव के सभी लोग राज्य-शास्त्र के ज्ञाता हो जायेंगे और कभी झगड़ा करेंगे ही नहीं, तो उस हालत में शासन-मुक्ति हो जायगी और रामराज्य आयेगा।

ग्राम-संकल्प

यह सब हमें करना है। इसीलिए भूदान-यज्ञ शुरू हुआ है। हम गाँववालों से कहते हैं कि अपने गाँव की हालत सुधारने के लिए तुम लोगों को कमर कसकर तैयार हो जाना चाहिए। आपके गाँव में भूमिहीन हों, तो उन्हें अपने ही गाँव की जमीन का एक हिस्सा देना चाहिए। फिर गाँव-गाँव में उद्योग खड़े करने चाहिए। आपको निश्चय करना होगा कि हम बाहर का कपड़ा नहीं खरीदेंगे, अपने गाँव में कात-बुनकर ही पहनेंगे। मैं मानता हूँ कि जो बाहर का कपड़ा पहने हैं, वे नंगे हैं। अभी मेरे सामने जो लोग बैठे हैं, वे सारे बाहर का कपड़ा पहने हैं। इसलिए यह निर्लज्ज और नंगों की सभा है। अगर इन लोगों को बाहर से कपड़ा न मिले, तो ये फटे कपड़े या लंगोटी ही पहनेंगे और आखिर में नंगे रहेंगे। क्योंकि उनके पास कपड़ा बनाने की विद्या न है।

गाँव-गाँव में आयोजन

यह सब काम सरकार के कानून से नहीं होगा। कुछ लोग हमसे पूछते हैं कि भूदान का काम बाबा को क्यों करना पड़ता है, सरकार अपनी जमीन क्यों नहीं बाँटती? किन्तु सरकार जमीन बाँटेगी, तो 'ग्रामराज्य' नहीं, 'दिल्ली-राज्य' होगा। अब 'लंदन-राज्य' के बदले 'दिल्ली-राज्य' आया है, लेकिन हम चाहते हैं कि दिल्ली-राज्य के बदले 'गाँव का राज्य' आये। जिस तरह अपनी भूख मिटाने के लिए हमें ही खाना पड़ता है, दूसरा कोई हमारे लिए खा नहीं सकता, इसी तरह हमारे ग्रामराज्य के लिए हमें ही भूदान करना पड़ेगा, दूसरे न कर सकेंगे। फिर आज जैसे लोग दिल्ली में बैठे-बैठे सोचते हैं कि अपने देश में बाहर से कौन-कौन चीजें आनी चाहिए और देश की कौन-कौन-सी चीजें बाहर जानी चाहिए, उसी तरह गाँव गाँव के लोग सोचेंगे कि अपने गाँव में कौन-सी चीजें बाहर से

आयें और गाँव की कौन-सी चीजें बाहर जायें। आज तो चाहे जो अपनी मर्जी के अनुसार बाहर की चीजें खरीदता जाता है। लेकिन इसके आगे यह न चलेगा। सारे गाँववाले मिलकर चर्चा करेंगे और निर्णय करेंगे। अगर किसीको गुड़ की जरूरत हुई, तो गाँववाले उस बारे में सोचेंगे और तय करेंगे कि इस साल गाँव में गुड़ नहीं बन सकता, इसलिए एक साल के वास्ते बाहर से गुड़ खरीदा जाय। लेकिन गाँव के लोग वह गुड़ भी बाजार में जाकर न खरीदेंगे, गाँव की दूकान से ही एक साल के लिए खरीदेंगे और फिर गाँव में गन्ना बोकर अगले साल के लिए पैदा करेंगे। गाँव की दूकान में वही गुड़ रखा जायगा और वहीं खरीदा जायगा।

दिमाग अनेक, पर हृदय एक

इस तरह सारा गाँव एक हृदय से सोचेगा। जहाँ गाँव में पाँच सौ लोग रहेंगे, तो एक हजार हाथ होंगे, एक हजार पाँव होंगे, पाँच सौ दिमाग होंगे; लेकिन दिल एक होगा। गीता के एकादश अध्याय में विश्वरूप-दर्शन की बात है। विश्व-रूप-दर्शन में हजारों हाथ हैं, हजारों पाँव हैं, कान हैं, आँखें हैं, लेकिन उसमें आपको यह नहीं मिलेगा कि हृदय हजारों हैं। विश्व-रूप का हृदय एक ही होगा। इसी तरह गाँव का हृदय एक होगा। पाँच सौ दिमाग होंगे। वे चर्चा करके बात तय करेंगे। यह हमारी सर्वोदय की योजना है।

त्रैराशिक की गुंजाइश नहीं

हम जानते हैं कि यह सब करने में कुछ समय लगेगा। लेकिन ज्यादा समय नहीं लगेगा। एक गाँव में एक साल का समय लगा, तो हिन्दुस्तान के पाँच लाख गाँवों में कितना समय लगेगा, इस तरह का त्रैराशिक नहीं किया जा सकता। आपके गाँव के आम पकने शुरू होते हैं, तो सारे हिंदुस्तान के पाँच लाख गाँवों के आम पकने लग जाते हैं। इसलिए आपके गाँव में ग्रामराज्य बनने में जितना समय लगेगा, उतने समय में कुल हिंदुस्तान के पाँच लाख गाँवों में राम-राज्य बन जायगा।

'रामराज्य' या 'अराज्य' नाम स्वेच्छाधीन

आज मैंने आपके सामने सूत्र-रूप में विचार रखा है। पहली बात है केंद्रीय स्वराज्य, दूसरी बात है विभाजित स्वराज्य और तीसरी बात है राज्य-मुक्ति अथवा रामराज्य। अब उसे 'रामराज्य' कहना है या 'अराज्य'—यह हरएक की अपनी-अपनी मर्जी की बात है। ईश्वर नहीं है, यह भी कह सकते हो और ईश्वर क्षीरसागर में सोया है, यह भी कह सकते हो। लेकिन ईश्वर पसीना-पसीना होकर काम कर रहा है, यह नहीं कह सकते। या तो ईश्वर नहीं है या वह अकर्ता होकर बैठा है, इन्हींमें से एक बात हो सकती है। ईश्वर करता है और सब दूर अपनी सत्ता चलाता है, यह बात न होनी चाहिए। यही तत्त्वज्ञान, यही ब्रह्म-विद्या हमें अपने देश में लानी है।

समर्थों का परस्परावलंबन ही ग्राह्य

हम चाहते हैं कि आप सब लोग उत्साह से भाई-भाई बनकर काम में लग जाइये। कुछ लोग पूछते हैं कि विनोबाजी की योजना परस्परावलंबन की नहीं, स्वावलंबन की है। इतना तो वे कबूल करते हैं कि विनोबा की योजना परावलंबन की नहीं है। परन्तु वे कहते हैं कि 'परस्परालम्बन' चाहिए। वैसे हम भी परस्परा-वलम्बन चाहते हैं। आज बाबा ने दूध पीया, तो क्या बाबा ने ख़ुद गाय का दूध दुहा था? लोगों ने बाबा के लिए सारा इन्तजाम किया था। इस तरह बाबा से जो सेवा बनती है, वह करता जाता है और लोग उसके लिए इन्तजाम करते हैं। किन्तु परस्परावलंबन दो प्रकार का होता है, एक असमर्थों का और दूसरा समर्थों का। पहला अन्धे और लँगड़े का परस्परावलम्बन है। अन्धा देख नहीं सकता, पर चल सकता है और लँगड़ा देख सकता है, पर चल नहीं सकता; इसलिए दोनों परस्परा-वलंबन या सहयोग करते हैं। लँगड़ा अन्धे के कन्धे पर बैठता है। वह देखने का काम करता है और अन्धा चलने का काम। इस तरह क्या आप समाज के कुछ लोगों को अन्धा और कुछ को लँगड़ा रखकर दोनों का परस्परावलम्बन चाहते हैं? बाबा भी परस्परावलंबन चाहता है। किंतु वह चाहता है कि दोनों आँख-वाले हों, दोनों पाँववाले हों और फिर हाथ में हाथ मिलाकर दोनों साथ-साथ

चलें । बाबा समर्थों का परस्परावलम्बन चाहता है । और ये लोग व्यंग्ययुक्त या अक्षम लोगों का परस्परावलम्बन चाहते हैं ।

गाँव का कच्चा माल गाँव में ही पक्का बने

बाबा भी परस्परावलम्बन चाहता है । हम जानते हैं कि सारी-की-सारी चीजें एक गाँव में नहीं बन सकतीं । एक गाँव को दूसरे गाँव के साथ और गाँव को शहरों के साथ सहयोग करना पड़ता है । लेकिन हम यह नहीं चाहते कि गाँवों में शहरों से चावल कुटवाकर, आटा पिसवाकर और चीनी बनवाकर लायी जाय । हम चाहते हैं कि ये चीजें गाँव में ही बनें । लेकिन गाँवों में चश्मा, थर्मामीटर, लाउड-स्पीकर जैसी चीजों की जरूरत पड़े, तो वे शहर से लायी जायँ । आज यह होता है कि शहरवाले गाँववालों के उद्योग खुद करते हैं । गाँव के कच्चे माल का पक्का माल गाँव में ही बन सकता है । लेकिन आज शहरों में यन्त्रों के द्वारा वह बनाया जाता है । और उधर परदेश का जो माल शहरों में आता है, उसे रोकते नहीं । हम चाहते हैं कि गाँव के उद्योग गाँव में चलें और परदेश से जो माल आता है, उसे रोकने के लिए वह माल शहरों में बने । अगर गाँव के उद्योग खतम होंगे, तो न सिर्फ गाँवों पर, बल्कि शहरों पर भी संकट आयेगा । फिर गाँव के बेकार लोगों का शहरों पर हमला होगा और ऊपर से परदेशी माल का हमला तो होता ही रहेगा । इस तरह दोनों हमलों के बीच शहरवाले पिस जायँगे । इसलिए हमारी योजना में गाँव और शहरों के बीच इस तरह का सहयोग होगा कि गाँववाले अपने उद्योग गाँव में चलायेंगे और शहरवाले परदेश से आनेवाली चीजें शहर में बनायेंगे । इस तरह प्रत्येक गाँव पूर्ण होगा और पूर्णों का सहयोग होगा ।

कोटिपाम (आन्ध्र)
१-८-'५५

लोगों के मानस और परिस्थिति के अनुकूल काम होना, लोगों को राहत पहुँचना और स्वतन्त्र जनशक्ति का निर्माण होना—ये सारे काम भूदान से सधते हैं। आज यह लोक-मानस बन गया है कि भूमि का बँटवारा समान हो, गरीबों को जमीन मिले। इस मानस का पूर्ण लाभ इस आन्दोलन को मिलता है। यह मानस तैयार करने में भी इस आन्दोलन ने हिस्सा लिया है। इसलिए भूदान-कार्य में जो शक्ति भरी है, उसके जरिये गाँवों में बाकी के सारे निर्माण-कार्य लाने की कोशिश करनी चाहिए। इसलिए हमारे जो साथी निर्माण-कार्य में लगे हैं, उनसे हम कहते हैं कि भूदान की गिनती आप उन सब निर्माण-कार्यों में मत कीजिये। मैं फिर से दोहराता हूँ कि मैं निर्माण-कार्य और भूदान में कोई फर्क करना नहीं चाहता। लेकिन किसी भी कारण से हो, चाहे परिस्थिति से भी हो, पर आज भूदान से जो शक्ति निर्माण हुई है, वह अन्य निर्माण-कार्यों से नहीं हुई।

निर्माण-कार्य की बुनियाद आर्थिक समानता

सारे निर्माण-कार्य की बुनियाद में आर्थिक समानता का जो विचार है, उसकी फच्चर ठोंकने का काम भूदान से हो रहा है। आर्थिक समानता कानून से नहीं, लोक-हृदय प्रेम से भरा होने पर ही संभव है। उसका बिलकुल सादा और सरल उपाय भूदान से निकला है, क्योंकि इसका जमीन से और जमीन भगवान् की चीज है, नैसर्गिक वस्तु है, यह बात हर कोई समझ सकता है। इसीलिए यह मन्त्र मैं सतत रटता रहता हूँ कि हवा, पानी और सूरज की रोशनी के समान जमीन भी भगवान् की देन है, अतः उस पर सबका अधिकार है। हमारे कुछ भाई कहते हैं कि बाबा के इस कथन में विचार नहीं, वक्तृत्व है; इसमें आलंकारिक भाषा है। लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि इसमें आलंकारिक भाषा नहीं, बल्कि स्वच्छ, शुद्ध-

होगा, तब तक वह और किसी भी उपाय से सच्चे अर्थ में सुखी न होगा। कुछ लोग भोग भोगने को ही सुख मानते हैं और दूसरों को अपने गुलाम बनवाकर उनसे काम करवाते है। वे इसमें संतोष कर लेते है कि इसीसे सब सुखी हैं। जो ऐश्वर्य मे पड़ा है, वह गरीबों की परवाह नहीं करता है और अपने को सुखी मानता है। जो गरीब हैं, वे अपने नसीब की बात कहकर आज की हालत मे सुख मानते है। लेकिन यह सच्चा सुख नहीं है।

'ट्रस्टीशिप' के दो सिद्धान्त

कुछ लोग कहते हैं कि विनोबा नाहक बेजमीनों को भूमि क्यों बाँटता है? मजदूरों को जरा अच्छी मजदूरी मिले, तो बस है; उससे वे सुखी होंगे। लेकिन एक सुखी गुलाम देखने से बाबा का दिल सुखी नहीं होगा। मजदूरों को कायम के लिए मजदूर ही रखा जाय और मालिकों को कायम के लिए मालिक, फिर चाहे मालिक अपने मजदूरों को अच्छी-से-अच्छी मजदूरी दें, तो भी उससे सर्वोदय नहीं होता। गांधीजी के ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का कुछ लोग बहुत ही गलत अर्थ कर रहे हैं, यह बात मैं जाहिर करना चाहता हूँ। ट्रस्टीशिप का पहला सिद्धान्त यह है कि जैसे बाप अपने बेटे का पालन-पोषण और संरक्षण अपने से भी ज्यादा करता है—कोई भी बाप यह नहीं कहता है कि मैं अपने खुद का जितना संरक्षण करता हूँ, उतना ही बेटे का करता हूँ; बल्कि वह कहता है कि मैं बेटे का संरक्षण अपने से भी ज्यादा करता हूँ—वैसे ही ट्रस्टी अपने को बाप के स्थान पर समझे। लेकिन इतने से ट्रस्टीशिप पूरी नहीं होती। ट्रस्टीशिप का दूसरा सिद्धान्त यह है, बाप चाहता है कि मेरा बेटा जल्द-से-जल्द मेरे जैसा बन जाय, मेरी योग्यता का हो जाय और अपने पाँवों पर खड़ा हो। इस तरह गांधीजी का सिद्धान्त बड़ा गहरा है। सिर्फ ऊपर-ऊपर से देखकर आज के समाज में थोड़ा-सा फर्क कर मजदूरों की मजदूरी थोड़ी-सी बढ़ा दी जाय, तो इतने से जन-समाज सुखी न होगा।

स्वामित्व और सेवकत्व, दोनों मिटाने हैं

आज तो दुनिया में जो भी उठता है, गांधीजी का नाम लेता है और उनके नाम पर चाहे जो कहता है। ऐसों की संख्या बढ़ाना मैं नहीं चाहता। मैं तो एक शुद्ध

धर्म विचार आपके सामने रख रहा हूँ। मेरा विश्वास है कि गांधीजी और सब सत्पुरुषों का आशीर्वाद इसे हासिल है। जिस सत्य-वस्तु का स्वीकार हृदय करता है, उसके बचाव के लिए किसी भी महापुरुष के वचनों की जरूरत नहीं होती। फिर भी मैं मानता हूँ कि इस सिद्धान्त के पीछे सब सत्पुरुषों का आशीर्वाद है। इसलिए मैं मानता हूँ कि गरीबों को थोड़ी-सी मजदूरी बढ़ा दी जाय, फिर भूदान की कोई जरूरत नहीं, इस प्रकार का विचार बिल्कुल गलत है। मुझे नामदेव का एक वचन याद आ रहा है, जिसमें वह भगवान् से कहता है कि 'तू ही एक ऐसा स्वामी है, जो अपने भक्त को अपने समान योग्यता दिलाता है। जो स्वामी अपने सेवक को कायम के लिए सेवक रखता है, वह चाहे उसे कुछ भी सुख दिलाये, फिर भी वह सच्चा स्वामी नहीं है। जो सेवक को सच्चे सेवकत्व में से और अपने को स्वामित्व से मुक्त करे, वही सच्चा स्वामी है।

सख्यभक्ति

जब सेवक का सेवकत्व और स्वामी का स्वामित्व मिटेगा, तो दोनों में प्रेम कम होगा या बढ़ेगा? तब तो दोनों में सख्यभक्ति निर्माण होगी। दोनों भाई-भाई, मित्र, सखा बनेंगे। हम तो भाई-भाई की बात करते हैं, लेकिन भाइयों में भी कोई छोटा, तो कोई बड़ा भाई होता है। वेद का सिर्फ भाई-भाई कहने से समाधान नहीं हुआ। वह कहता है कि कोई छोटा भाई और कोई बड़ा भाई न हो, सब समान हों : 'अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः एते संभ्रातरो वावृधुः।' वेद चाहता है कि समाज के लोग ऐसे भाई भाई बनें, जिनमें कोई ज्येष्ठ न हो और कोई कनिष्ठ न हो। यह सर्वोदय का आदर्श है, जिसमें परम प्रेम का उत्कर्ष होता है। ऐसा सर्वोदय-समाज लाने के काम में सरकार की छिनने की शक्ति का कोई उपयोग नहीं हो सकता, उसकी कल्याणकारी शक्ति का थोड़ा उपयोग हो सकता है, लेकिन ऐसा सर्वोदय-समाज लाने का काम लोगों को ही करना होगा।

बडराइसिंह
११-८-'५५

मानव को मानव की हत्या का अधिकार नहीं

पंद्रह अगस्त को, भारतीय स्वातंत्र्य-दिवस के अवसर पर हमारे भाइयों ने गोवा में सत्याग्रह के तौर पर प्रवेश करने की सब तैयारी रखी थी। वे बिना कोई शस्त्र लिये अन्दर जा रहे थे। आज खबर आयी है कि उन पर बहुत बुरी तरह से मार पड़ी और उनमें से पचीस-तीस मनुष्यों को कत्ल भी किया गया। हिंदुस्तान में अंग्रेजों की इतनी बड़ी सल्तनत थी, वह भी यहाँ से चली गयी। उसे अब आठ साल हुए हैं, फिर भी गोवावाले पुर्तगीज लोग अभी भी नहीं समझ रहे हैं। बीच में फ्रेंच लोगों ने अपना आग्रह छोड़ दिया और पांडेचेरी को मुक्त कर दिया। अंग्रेजों ने भारत छोड़ा, तो उसमें उन्होंने कुछ भी नहीं खोया। बल्कि उससे उनकी इज्जत बढ़ी और हिंदुस्तान के साथ उनका प्रेम बना रहा। आज उनका व्यापार भी यहाँ जैसा चलना चाहिए, वैसा चल रहा है। पुर्तगीज लोगों को भी यही करना पड़ेगा। परंतु मनुष्य मोह और ममता को एकदम नहीं छोड़ता।

गोवा में निश्शस्त्रों की निर्मम हत्या

लेकिन इस तरह से निश्शस्त्र लोगों की निर्मम हत्या करनेवालों की मंशा इस जमाने में कभी सफल नहीं होगी। आज सारी दुनिया शांति की आकांक्षा कर रही है। बड़े-बड़े देशों के बड़े-बड़े नेता शांति के लिए एक-दूसरे से हाथ मिला रहे हैं। उस हालत में इस तरह से अत्याचार कर पुर्तगाल हिन्दुस्तान के एक हिस्से पर अपनी सत्ता रख सकेगा, यह कदापि संभव नहीं। परंतु जिनका दिमाग नयी बातें सीखने के लिए खुला नहीं है, ऐसे लोगों के हाथ में जब देश की बागडोर होती है, तो देश की जनता का कुछ नहीं चलता। हम समझते हैं कि पुर्तगाल की जनता की इस हत्याकांड के प्रति कुछ भी सहानुभूति न होगी। यह बात ठीक है कि उन्हें ठीक जानकारी न दी जाती हो और यहाँ के अखबारों में सारी खबरें दूसरे ढंग से प्रकाशित की जाती हों; लेकिन इस तरह सत्य कभी भी छिपा नहीं रह सकता।

पटने में गोली चली

गोवा में यह जो बड़ी दुर्घटना हुई, उससे हम सब लोगों के दिलों को बहुत सदमा पहुँचता है। गोवा पर हिंदुस्तान का अधिकार है, इस बात को हिंदुस्तान की जनता भी मानती है और गोवा की जनता भी। हिंदुस्तान और गोवा, दोनों एक ही हैं। लेकिन यहाँ मैं अभी उस बारे में नहीं कह रहा हूँ। यह तो स्पष्ट ही है कि गोवा सब तरह से हिंदुस्तान का एक अंश है। इसलिए भारतवासियों के हृदय को इस दुर्घटना से सदमा पहुँचना स्वाभाविक ही है। किंतु मैं इसकी ओर बिलकुल एक मानव-हृदय की दृष्टि से देखता हूँ। ऐसी घटना जहाँ भी होती है, वहाँ पर सारी मानवता विदीर्ण हो जाती है। लेकिन उसी दिन की और एक खबर अखबार में आयी है। बिहार में पटने मे उसके एक-दो रोज पहले गोली चली, जिसमे कुछ विद्यार्थी मारे गये। इसके विरोध में सारे बिहार मे हलचल हुई और आज हमें खबर मिली है कि नवादा मे गोली चली, जिसमे कुछ विद्यार्थी मारे गये।

मानव को मानव की हत्या का अधिकार नहीं

मानव पर गोली चलाने का यह जो अधिकार मानव ने मान लिया है, वह बिलकुल ही अमानवीय है। और सब अधिकार बाद के है, मानव का पहला अधिकार यह है कि उसकी मानवता कायम रहे। हम समझते हैं कि हिंदुस्तान मे गोली चलती है, तो हमारे स्वराज्य के लिए है और सारी मानवता के लिए भी वह कलंक हो जाता है। गोवा में गोली, चली वह स्वराज्य पर आक्रमण है। हर मनुष्य के हृदय में स्वराज्य-भावना होती है, उसी पर आक्रमण हुआ है। परंतु उसके साथ-साथ मानवता पर भी आक्रमण है। मनुष्य के हृदय मे यह जो सत्ता चलाने की बात रहती है और उसे वह कर्तव्य भी मान लेता है, उसकी बदौलत वह मानता है कि उसे हत्या करने का भी अधिकार है। मानव को पहले यह तय करना होगा कि हमें हत्या करने का अधिकार नहीं है। हमें तो प्रेम करने का ही अधिकार है। जब मानव अपने उस परम अधिकार को खोकर दूसरी-तीसरी

बातों के लिए मानव की हत्या करने के लिए प्रवृत्त हो जाते हैं, तब हम अपनी ही हत्या कर लेते हैं।

छोटी लड़ाइयाँ रोकिये

इस विषय पर आज मैं विस्तार से कहना नहीं चाहता, पर इससे मेरे हृदय को बहुत ही दुःख हुआ है। इसमें से यह बोध लेना है कि हमें सत्ता की बात छोड़ यह समझना होगा कि परमेश्वर ने हमें एक ही अधिकार दिया है कि सबकी सेवा करें और सबकी रजामंदी से अपना जीवन चलायें। मैं मानता हूँ कि इस बात को मानव अवश्य ग्रहण करेगा। यह भी मानता हूँ कि इसका स्वीकार बहुत दूर के काल में नहीं, नजदीक के काल में ही होगा। लोगों को बड़ी फिक्र पड़ी है कि ऐटम बम, हाइड्रोजन बम आदि हथियारों से कैसे बचें। लेकिन मैंने कई बार कहा है कि मनुष्य का अगर कोई वैरी है, तो वह है, लाठी, बंदूक, तलवार जैसे छोटे-छोटे हथियार। ये तो बाप हैं और ऐटम बम आदि उनके बेटे हैं। उन्होंने ऐटम बम आदि को पैदा किया है। यह बात ठीक है कि बेटे बाप से सवाई हो गये, सौगुना शक्तिशाली हो गये हैं, लेकिन उनकी पैदाइश इन्हींसे हुई है। लोगों को जागतिक युद्ध टालने की फिक्र होती है, लेकिन मेरे मन में ऐसी फिक्र कभी पैदा ही नहीं होती। मैं मानता हूँ कि जागतिक युद्ध मनुष्य नहीं करता, उससे कराये जाते हैं। लेकिन छोटी-छोटी लड़ाइयाँ और अत्याचार मनुष्य खुद करता है। इसलिए अगर हम उन्हें रोक सकें, तो सारे ऐटम बम आदि भी क्षीण हो जायेंगे। इसीलिए मुझे जागतिक युद्ध की कोई चिंता नहीं है।

विचार-परिवर्तन आवश्यक

भारत को यह निश्चय कर लेना चाहिए कि हमारे जो कई मसले और दुःख हैं, उनके निवारण के लिए हम कभी भी हत्या का अधिकार न मानेंगे। जहाँ भारतीय मनुष्य यह निर्णय कर लेगा, वहीं भारत और सारी दुनिया का समाज बदल जायगा। लेकिन जब भारत समाज की आज की विषम परिस्थिति बदलने का निर्णय करेगा, तभी वह इस निर्णय पर आवेगा। जब तक मनुष्य का मन

अपने छोटे-छोटे सत्ताधिकार छोड़ने को तैयार नहीं होता, तब तक वह हत्या करने का अधिकार भी न छोड़ेगा। इन छोटे-छोटे अधिकारों को आज कानून में भी स्थान दिया जाता है और फिर उस कानून की रक्षा के लिए हर तरह की कृत्रिम योजना करनी पड़ती है। मनुष्य व्यक्तिगत अधिकार, जातिगत अधिकार, वांशिक अधिकार रखना चाहता है। वह समझता है कि ये हमारे बुनियादी अधिकार हैं। इस तरह हम जिन अधिकारों को मानते हैं, उनकी रक्षा के लिए तलवार का उपयोग और हत्या करने का हमें अधिकार है, ऐसा मानते हैं। इस तरह ये लोग हिंसा को धर्म का रूप देते हैं। हिंसा करना एक बात है और उसे धर्म या कर्तव्य समझकर करना दूसरी बात। हमें यह सारी वृत्ति बदलकर मानवता के लिए पूर्ण मौका देना होगा।

इसमें किसीको कोई शक न होना चाहिए कि आज अगर गोवा के लोगों की राय ली जाय, तो वह पोर्तुगीज सत्ता हटाने के पक्ष में ही होगी। लेकिन पोर्तुगीज अपना अधिकार मानकर बैठे हैं। इसी तरह अंग्रेज और हमारे राजा-महाराजा भारत पर अपना अधिकार मानकर बैठे थे। आज भी यहाँ के कारखानों और बड़ी जमीन के मालिक अपना अधिकार मानकर बैठे हैं। अधिकार की यह बात इतनी फैल गयी है कि परिवार में भी लोग उसे चलाने की बात नहीं छोड़ते। हम हमेशा परिवार की उपमा देते हुए कहते हैं कि परिवार में प्रेम का कानून चलता है। लेकिन आज परिवार में भी कानून ने प्रवेश किया है, वहाँ भी सत्ता की बात मानी गयी है। बाप की इस्टेट पर बेटों को अधिकार है; लेकिन लड़कियों का अधिकार है या नहीं, इस पर चर्चा चलती है। समझने की बात है कि लड़कियों को माता-पिता के गुण और शरीर का रूप प्राप्त होता है। फिर भी उनका सम्पत्ति पर अधिकार है या नहीं, इस बारे में चर्चा चलती है। जहाँ प्रेम के सिवा दूसरी बात ही नहीं चलनी चाहिए, वहाँ भी सत्ता और अधिकार की बात पैठ गयी और उसकी रक्षा के लिए कानून का आधार लिया जाता है। एक जमाना था, जब पत्नी पर पति का अधिकार है, यह भी बात मानी गयी और महाभारत में तो युधिष्ठिर ने द्रौपदी को भी दाँव पर लगा दिया था। इस तरह अधिकार की बात समाज में इतनी चली कि आज उसीकी पीड़ा हो रही है।

मानव का परम अधिकार प्रेम करना

किसका क्या अधिकार है, इसकी चर्चा हम बाद में करेंगे। किन्तु सर्वप्रथम एक बात मान लेनी चाहिए कि किसीको भी मानव की हत्या करने का अधिकार कदापि नहीं हो सकता। मुझे उम्मीद है कि हिन्दुस्तान के लोग इस बात को जल्दी समझेंगे। आज मानव के अधिकारों में किन-किनकी गिनती करनी चाहिए, इस पर चर्चा चलती है। परन्तु भारत के लोग समझते हैं कि मानव का जन्म सेवा के लिए है। मानव को सेवा करने का ही परम अधिकार है। सत्ता चलाने की बात तो जंगल का शेर भी करता है। कभी-कभी वह मनुष्य को खाने के लिए ले जाता है, तब वह सोचता है कि मेरा इस पर अधिकार है, मुझे खाने की चीज मिल गयी। इस कोरापुट जिले में तो हम ऐसी घटनाएँ हमेशा सुनते हैं। उसे भूख लगी होती है, इसलिए उसे अपना अधिकार सिद्ध करने और किसी प्रमाण की जरूरत ही नहीं होती। इसी तरह हम लोग भी जानवरों की हत्या करना अपना अधिकार मानते हैं। कलकत्ते में रोज गायें कटती हैं, तो मनुष्य मानता है कि गायों को काटना हमारा अधिकार है। शेर अगर ऐसी बात करता है, तो वह अज्ञान जीव ही है, उसके पास समझने की शक्ति ही नहीं है। लेकिन मानव को भगवान् ने उतनी अक्ल दी है। आज जब कि विज्ञान इतना फैला है और ऋषियों की कृपा से भारत में आत्मज्ञान भी फैला है, तो मानव को यह समझना चाहिए कि उसका परम अधिकार, प्रथम और अन्तिम अधिकार है, प्रेम और सेवा करना।

रेवलकण्डा
१८-८-'५५

अभी आपने भजन सुना : 'आत्मा रे आत्मा कुं देख।' यह भजन तो सभी गा लेते हैं और सबको प्रिय भी लगता है। किन्तु इसका अनुभव प्राप्त करने में बड़ा पुरुषार्थ करना पड़ता है। आत्मा में आत्मा को देखना बहुत बड़ी बात है। उसके मानी है, दुनिया में हमारे सामने जितने प्राणी प्रकट हैं, जितनी मूर्तियाँ दीखती हैं, उन सबमें हम अपना ही रूप देखें। हम कहना चाहते हैं कि भूदान और ग्रामदान उसीका एक नम्र और छोटा-सा प्रयत्न है। भूदान में हम सबको समझाते हैं कि आप पाँच भाई हैं, तो आपके घर एक और छठा भाई है, जो बाहर है। उसका हिस्सा भी उसे दीजिये। समाज को अपने परिवार का हिस्सा समझिये, यही आत्मा में आत्मा के दर्शन का प्रयत्न है। यह बात केवल भूमि के लिए ही लागू नहीं, बल्कि कुल सम्पत्ति, शक्ति और बुद्धि के लिए लागू है। हर मनुष्य अपनी सम्पत्ति, शक्ति और बुद्धि का एक हिस्सा अपने अड़ोसी-पड़ोसियों के लिए दे और उसमें हम दूसरे किसी पर उपकार करते हैं, ऐसी भावना न हो। समाज को अपने परिवार में दाखिल करना व्यापक आत्म-दर्शन का एक अल्प प्रयत्न है। जब आप देखते हैं कि गाँववाले अपनी जमीन पर से अपना हक उठा लेते और उसे सारे गाँव की बना देते हैं, तो उसमें व्यापक आत्मा का कुछ भान होता है।

ग्राम-दान का स्वतन्त्र मूल्य

यहाँ बहुत सारे गाँव मिल रहे हैं। इस काम में हमारी कसौटी जरूर है, परन्तु हमारे मन में दूसरी ही बात है। हमने कभी नहीं समझा कि दुनिया का कारोबार चलाने की जिम्मेवारी हम पर है। दुनिया का कारोबार दुनिया चला रही है। हम तो लोगों में एक विचार प्रचलित करना चाहते हैं, व्यापक आत्मा का भान कराना चाहते हैं, यह समझाना चाहते है कि व्यक्तिगत मालकियत मिटानी चाहिए। अगर गाँव-गाँव के लोगों ने इतना समझकर ग्रामदान दिया,

तो फिर चाहे उसके बाद हम उन गाँवों की उत्तम रचना न कर सकें, तो भी उस ग्रामदान का जो स्वतन्त्र मूल्य है, वह कम न होगा। इसके लिए मैं एक मिसाल देता हूँ। बहुत प्रयत्नों के बाद हिन्दुस्तान को स्वराज्य प्राप्त हुआ। स्वराज्य की कसौटी जरूर इस बात में है कि हम स्वराज्य किस तरह चलाते और हिन्दुस्तान की उन्नति किस तरह करते हैं। लेकिन मान लीजिये कि हम बहुत शीघ्र ज्यादा उन्नति न कर सके, तो हम कम लायक साबित होंगे। फिर भी हिन्दुस्तान को जो स्वराज्य प्राप्त हुआ है, उसका मूल्य कम न होगा। स्वराज्य-प्राप्ति की स्वतन्त्र कीमत है। चाहे उसके बाद हम उसका उत्तम उपयोग कर सकें या न कर सकें। इसी तरह यह जो भूदान, ग्रामदान, सम्पत्तिदान आदि का आन्दोलन चल रहा है, उसका स्वतन्त्र मूल्य है। चाहे उसका उपयोग हम ठीक से कर सकें या न कर सकें।

मूल्य-परिवर्तन और सुख

दूसरे सेवकों के और हमारे इस विचार में बुनियादी फर्क है, जो आज का नहीं, पुराना है। जब बाबा रचनात्मक काम में लगा था, तब भी उसके सामने यही कसौटी थी। इसलिए बाबा ने हमेशा यही प्रयत्न किया कि आसपास के लोगों में अच्छी भावना पैदा हो और उत्तम कार्यकर्ता पैदा हों। समझने की बात है कि हम रचनात्मक काम करना जरूर चाहते हैं, लेकिन रचनात्मक काम तो सरकार भी करना चाहती है और करेगी। उससे लोग सुखी होंगे और अवश्य होने चाहिए। लेकिन मूल्य-परिवर्तन एक बात है और समाज को सुखी बनाना दूसरी बात। जब आप शाश्वत सुख की बात करेंगे, तो दोनों में फर्क न रहेगा। लेकिन तात्कालिक सुख के बारे में सोचेंगे, तो सुखी बनाना एक बात है और मूल्य-परिवर्तन दूसरी बात।

जहाँ लोग अपने परिवार को व्यापक समझकर अपना एक हिस्सा समाज के लिए देते हैं, वहाँ मूल्य-परिवर्तन हो जाता है। कोई फंड दिया जाता है, तो उसमें मूल्य-परिवर्तन नहीं होता। परंतु जैसे हम आजीवन खाते हैं, वैसे ही खाने के साथ साथ समाज को एक हिस्सा देते हैं, तो यह वृत्ति मूल्य-परिवर्तन की निशानी

है। फिर चाहे जो भाग आप समाज को देते हैं, उसका सदुपयोग कर सकें या न कर सकें, यह तो अक्ल की बात होगी। आज हम अपने घर में जो संपत्ति खर्च करते हैं, उसमे भी ठीक खर्च करते हैं या नहीं, यह अक्ल पर निर्भर है। फिर भी यह समझने की बात है कि जहाँ पाँच सौ गाँवों के लोगों ने अपने जीवन से व्यक्तिगत मालकियत मिटा दी, वहाँ उनके जीवन में मूल्य-परिवर्तन हो गया है।

मूल्य परिवर्तन ही क्रान्ति

इसी मूल्य-परिवर्तन को हम 'शान्तिमय क्रान्ति' कहते हैं। क्रान्ति के पीछे मैंने यह 'शान्तिमय' विशेषण नाहक लगाया। क्योंकि जो अशान्तिमय होती है, वह क्रान्ति ही नहीं है। वह तो शान्तिमय ही हो सकती है। किसी भी प्रकार के बदल को क्रान्ति नहीं कहा जाता। क्रान्ति में तो बुनियादी या मूलभूत फर्क होना चाहिए, मूल्य बदलना चाहिए। मूल्य में जो बदल होता है, वह शान्तिमय ही होता है, विचार से ही होता है। मार-पीटकर, आग लगाकर या धमकाकर जो परिवर्तन किया जायगा, वह विचार-परिवर्तन न होगा। चाहे वह बड़ा परिवर्तन हो, तो भी वह क्रान्ति नहीं होगी। कुछ लोग हमसे पूछते हैं कि आप जिसे 'विचार-परिवर्तन' या क्रान्ति कहते हैं, उसे करने के लिए कितना समय लगेगा? हम जवाब देते हैं कि चाहे कम समय लगे या ज्यादा, इसकी हमें कोई चिन्ता नहीं। विचार-क्रान्ति शीघ्र होती हो तो ठीक, नहीं तो शीघ्र 'अविचार-क्रान्ति' करनी चाहिए—इस विचार को हम नहीं मानते। हम सिर्फ 'शीघ्रवाद' को क्रान्ति नहीं कह सकते। कोई अगर हमसे कहेगा कि आपको शीघ्र खाना मिलना चाहिए, फिर चाहे रोटी न मिले, तो जहर खाना चाहिए—इस तरह के शीघ्र भोजन के विचार को हम नहीं मानते। हम तो समुचित भोजन के विचार को ही मानते हैं। यह बात ठीक है कि भूखे को जितना जल्दी खाना मिले, उतना अच्छा ही है। विचार-क्रान्ति भी जल्द-से-जल्द हो, यह अच्छा है। लेकिन चाहे शीघ्र हो या देर से, चीज वही बननी चाहिए, जो बनानी होती है। इसीलिए मैंने कहा कि क्रान्ति के पीछे मैंने नाहक शान्तिमय विशेषण जोड़ दिया, उस विशेषण की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन इन दिनों 'रक्तपातयुक्त क्रान्ति' के लिए क्रान्ति शब्द इस्तेमाल किया जाता है, इसलिए मुझे वह विशेषण जोड़ना पड़ा।

सारांश, समाज को अपने परिवार का अंग समझकर एक हिस्सा देने की बात के परिणामस्वरूप जो ग्रामदान की बात निकली, वह क्रान्ति की बात है। अगर आप शाश्वत सुख चाहें, तो इस विचार-क्रान्ति के द्वारा वह भी मिलेगा और शीघ्र और तात्कालिक सुख चाहते हैं, तो वह इस विचार-क्रान्ति का उपयोग हम किस तरह करते हैं, इस पर निर्भर है।

अम्बादला
२८-८-'५५

अमृत-कण : ३८ :

[विनोबाजी के सप्ताहभर के प्रार्थना-प्रवचनों के महत्त्वपूर्ण अंश संकलित कर नीचे दिये जा रहे हैं। सर्वोदय-विचार और भूदान आन्दोलन के ये अमृत-कण सिद्ध होंगे।]

स्वावलम्बन के तीन अर्थ

आजकल सब लोग कहने लगे हैं कि 'तालीम में स्वावलम्बन का बहुत महत्त्व है।' 'स्वावलम्बन' शब्द का मेरे मन में बहुत गहरा अर्थ है। सिर्फ विद्यार्थियों को कुछ उद्योग और शरीर-परिश्रम सिखा देने से वे स्वावलम्बी बन जायँगे,' इतना ही मेरा अर्थ नहीं है। वह चीज तो करनी ही चाहिए। जब देश के सभी लोग हाथ से कुछ-न-कुछ परिश्रम करने लग जायँगे, तब देश में वर्ग-भेद निर्माण न होगा। किन्तु स्वावलम्बन के मानी मैं यह भी समझता हूँ कि तालीम में ऐसा तरीका आजमाना चाहिए, जिससे विद्यार्थियों की प्रज्ञा स्वयं बने और वे स्वतन्त्र विचारक बनें। अगर विद्या में यही मुख्य दृष्टि रहेगी, तो उसका सारा स्वरूप ही बदल जायगा।

आजकल अनेक भाषाएँ और अनेक विषय सिखाये जाते हैं और हर बात में विद्यार्थी को वहाँ तक शिक्षक के मदद की जरूरत होती है। लेकिन विद्यार्थियों को ऐसी तालीम मिलनी चाहिए कि उनमें जीवनोपयोगी ज्ञान हासिल करने की शक्ति पैदा हो। विद्या तो मुक्ति के लिए है। इसी मुक्ति को आजकल हम 'स्वा-

लंबन' कहते हैं। उसके मानी है, अन्य सब आलम्बनों से या आधारों से मुक्ति। जिसे सच्ची विद्या मिलती है, वह पूरे अर्थ में मुक्त या स्वावलम्बी होता है।

मुक्ति के लिए जिस तरह पराधीनता उचित नहीं है, उसी तरह विकारवशता भी उचित नहीं है। जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों का गुलाम है और अपने विकारों को काबू में नहीं रख सकता, वह स्वावलम्बी या मुक्त नहीं हो सकता। इसलिए विद्या का यह एक तीसरा भी अंग है, जिसके लिए विद्या में संयम, व्रत, सेवा आदि का समावेश करना पड़ता है। इस तरह स्वावलंबन के तीन अर्थ होते हैं: पहला अर्थ यह है कि अपने उदर-निर्वाह के लिए दूसरों पर आधार न रखना पड़े। दूसरा अर्थ यह है कि ज्ञान प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र शक्ति निर्माण हो। और तीसरा अर्थ यह है कि अपने आप पर, मन, इन्द्रियों आदि पर काबू रखने की शक्ति निर्माण हो। सारांश, शरीर, बुद्धि और मन, तीनों की पराधीनता मिटनी चाहिए।

प्रकृति, संस्कृति और विकृति

आदिवासियों की सेवा करने के लिए कार्यकर्ताओं को प्रकृति, संस्कृति और विकृति का ठीक भान होना चाहिए। जब मनुष्य प्रकृति से ऊपर जाता है और उसे वश करने के लिए अपने में कुछ सुधार कर लेता है, तब 'संस्कृति' उत्पन्न होती है और जब मनुष्य प्रकृति से नीचे गिरता है, तब 'विकृति' आ जाती है। मनुष्य अपने जीवन को प्रकृति के साथ जितना अनुकूल बनाता है, उतना प्रकृति का अंश उसके जीवन में रहता है। आज शहरवालों के जीवन में प्रकृति का अंकुश बहुत कम है, विकृतियाँ काफी आ गयी हैं; लेकिन कुछ संस्कृति भी है। आदिवासियों के जीवन में प्रकृति का अंश अधिक है, संस्कृति का अंश मात्रा में कम है और विकृतियाँ भी कुछ हैं। इसलिए आदिवासियों की सेवा करनेवालों को इसका खयाल रखना चाहिए कि शहर की विकृतियों को यहाँ न आने दिया जाय। इनकी विकृतियाँ दूर हों, शहर में जो संस्कृति है, वह यहाँ जरूर आये, लेकिन यहाँ की संस्कृति भी कायम रहे। साथ ही इनके जीवन में प्रकृति का जो अंश है, उसका हम भी अनुकरण करें।

मैं एक मिसाल देता हूँ। दूध स्वयं प्रकृति है, दूध का मक्खन बनाना संस्कृति

और अच्छे फूलों की शराब बनाना विकृति है। इस तरह जिसे प्रकृति, संस्कृति और विकृति का सम्यक् विवेक हो, वही कार्यकर्ता आदिवासियों की सेवा करने योग्य होगा।

भूदान-आन्दोलन माताओं के लिए अमृत

भगवान् ने बहनों पर छोटे बच्चों के लालन-पालन की बड़ी भारी जिम्मेदारी सौंपी है। हमारा भूदान-विचार बहनों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए, क्योंकि इसमें सबके बच्चों का भलीभाँति पालन-पोषण होगा। आज जो बेजमीन हैं, उनके बच्चों के पालन-पोषण का कोई इन्तजाम नहीं है। फिर आप ही बताइये कि सबको जमीन मिलनी चाहिए या नहीं? इस सवाल के जवाब में बहनें हमेशा कहती हैं कि मिलनी चाहिए। बच्चों को भूख लगती है, तो वह माता के पास जाकर ही खाना माँगता है। उस समय अगर माता उसे खाना नहीं दे पाती, तो उसे जितना दुःख होता है, शायद दुनिया में उससे बढ़कर कोई दुःख न होगा। इसलिए हमारा आंदोलन माताओं के लिए अमृत है। हम चाहते हैं कि माताएँ पुरुषों को 'ग्रामदान' की बात समझायें।

आजादी का सच्चा प्रेम देने में

जब दूसरे के हाथ से अपनी चीज वापस लेने की बात चलती है, तो बहुत जोर आ जाता है। पर यदि दूसरों की चीज अपने हाथ में हो, तो उसे वापस देने में उससे भी अधिक जोर आना चाहिए। जमीनवाले समझ लें कि हमारे हाथ की जमीन दूसरों की है, इसलिए हमें उसका एक हिस्सा ही अपने पास रखने का अधिकार है। बाकी सारी जमीन दान कर उन्हें मुक्त हो जाना चाहिए। इसीका नाम है, आजादी का प्रेम और यही है, मानवता। दूसरों के हाथ से अपनी चीज लेने में नहीं, बल्कि दूसरों की चीज उन्हें वापस देने में ही आजादी का पूरा प्रेम प्रकट होता है। हम आशा करते हैं कि हिन्दुस्तान के भूमिवान् लोग देश के सब भूमिहीनों को जमीन देकर यह सिद्ध कर देंगे कि हिन्दुस्तान के हृदय में सचमुच ही स्वराज्य के प्रति प्रेम है और हिन्दुस्तान को सचमुच स्वराज्य हासिल हुआ है।

लोभ-मुक्ति का कार्यक्रम

गीता ने कहा है कि काम, क्रोध और लोभ, ये तीन नरक के बड़े भयानक दरवाजे हैं। मनुष्य में ये तीनों होते हैं। किन्तु तीनों में मनुष्य का सबसे ज्यादा शत्रु है, लोभ। मनुष्य के संग्रह-वृत्ति की कोई सीमा नहीं है। मनुष्य कितना ही क्रोधी बने, तो भी शेर से ज्यादा क्रोधी नहीं बन सकता। मनुष्य कितना भी भी कामी बने, तो भी चक्रवाक पक्षी के समान कामी नहीं बन सकता। लेकिन मनुष्य जितना लोभी बन सकता है, उसकी बराबरी न चक्रवाक कर सकता है और न शेर।

स्वराज्य के आन्दोलन में हम लोगों का डर छूटा। हजारों लोग निर्भयता से जेल जाने लगे। जब अंग्रेजों ने देखा कि ये लोग जेल से डरते नहीं, तब उन्होंने एक युक्ति निकाली, जुर्माना करना! और घर से पैसा वसूल करना शुरू हुआ। वहाँ हमारे लोग कमजोर साबित हुए। इस तरह गांधीजी के जमाने में लोगों को भय छोड़ने की बात सिखायी गयी और आज भूदान-यज्ञ के निमित्त से लोभ छोड़ने का कार्यक्रम उपस्थित है।

भारतीय आयोजन में ग्रामोद्योग का महत्त्व : ३९ :

हमारे स्वराज्य के पहले पाँच साल ऐसे ही निकल गये। उनमें ग्रामोद्योग के लिए कोई काम नहीं हुआ। ग्रामोद्योग अच्छा है या यन्त्रोद्योग, यह चर्चाभर चलती रही। गांधीजी ने कहा था, इसलिए हम भी यही दुहराते थे कि 'ग्रामोद्योग के बिना गति नहीं।' किन्तु तब गांधीजी की वह बात लोगों के ध्यान में नहीं आयी। लेकिन जब बेकारी का असुर भयानक रूप लेकर सामने आ गया, तो वह अचानक लोगों के ध्यान में आ गयी। खुशी की बात है कि अब सरकार का भी ध्यान इस ओर गया और आगामी पंचवर्षीय योजना में ग्रामोद्योगों को स्थान दिया जा रहा है। लेकिन यह सब असुर के भय से हो रहा है, जब कि हम चाहते हैं कि ईश्वर की भक्ति से हो। रावण के भय से कोई अच्छा काम होता है, तो हम उसे पसन्द तो कर लेते हैं, पर चाहते हैं कि राम की भक्ति से ही हो।

किन्तु ऐसा कभी न सोचना चाहिए कि बेकारी मिटाने के लिए फिलहाल बीच के समय में ही हमें ग्रामोद्योगों की जरूरत है। यों तो पूँजीवादी सरकार को समझा ही रहे हैं कि 'आप ग्रामोद्योग खड़े कर रहे हैं, पर उससे काम में बड़ी देर होगी और उससे लोगों को तकलीफ ही होगी। फिर भी आप उसे खड़ा करना चाहते हों, तो करें। लेकिन यह ध्यान रखिये कि ये थोड़े ही दिनों के लिए होंगे। हम तो देश में यन्त्रीकरण ही चाहते हैं। जैसे हम मेहमान को घर में जगह देते हैं, वैसे ही देश में ग्रामोद्योगों को स्थान दीजिये। लेकिन उसे घर का मनुष्य मत समझिये।' इस तरह एक ओर पूँजीवादी विरोध कर ही रहे हैं; दूसरी ओर जो यह समझ गये हैं कि ग्रामोद्योग चलाने ही पड़ेंगे, उनके दिमाग भी साफ हैं, ऐसी बात नहीं। अवश्य ही उनमें कुछ ऐसे हैं, जिन्हें ग्रामोद्योगों पर श्रद्धा है। लेकिन बहुत-से ऐसे हैं, जो ग्रामोद्योगों को एक तात्कालिक उपाय मानते हैं। हम कहना चाहते हैं कि इस जिले में हमने ऐसे सैकड़ों गाँव देखे, जहाँ कोई तात्कालिक योजना नहीं चल सकती, दीर्घकालीन योजना ही करनी होगी। रास्ते बनाना आदि जैसे अनुत्पादक काम करने हों, उनके लिए तात्कालिक योजना हो सकती है। किन्तु इन गाँवों में यह नहीं हो सकता कि ग्रामोद्योग का आयोजन किया जाय और फिर चार साल के बाद ग्रामोद्योग हटाकर दूसरे यन्त्र लाये जायँ। यह भी समझने की बात है कि हिन्दुस्तान की और दुनिया की भी जनसंख्या कुछ-न-कुछ बढ़ ही रही है, पर हिन्दुस्तान की जमीन का रकबा नहीं बढ़ेगा। ऐसी स्थिति में हमें समझना ही होगा कि ग्रामोद्योगों का इस देश की आर्थिक योजना में स्थिर कार्य है।

भारत के आयोजन में ग्रामोद्योग का स्थान

जैसे इस देश में और दुनिया में भी खेती नहीं टल सकती, वैसे कम-से-कम हिन्दुस्तान में ग्रामोद्योग नहीं टल सकते। दुनिया को हर हालत में खेती करनी ही पड़ेगी, पर ग्रामोद्योगों के बारे में ऐसा नहीं कह सकते। जिस देश में जनसंख्या बहुत कम हो, वहाँ दूसरे उद्योग चल सकते हैं और जहाँ जमीन बहुत ज्यादा हो, वहाँ खेती में यन्त्रों का उपयोग किया जा सकता है। किन्तु हिन्दुस्तान

जैसे देश में, जहाँ जमीन कम और जनसंख्या ज्यादा है, खेती में बड़े-बड़े यन्त्र नहीं आ सकते और उद्योगों में भी सिर्फ ग्रामोद्योग ही चल सकते हैं। इसलिए न केवल बेकारी के असुर के भय से, बल्कि स्थायी योजना के रूप में काम किया जाय। कोई हमसे पूछ सकते हैं कि आप इस तरह भेद क्यों करते हैं? हम भेद इसीलिए करते हैं कि जहाँ देशव्यापी योजना बनानी हो, वहाँ अगर कोई निश्चित विचार न हो, तो वह योजना नहीं चल सकती। मैंने कह दिया है, यह ठीक है कि बेकारी-निवारण के लिए ग्रामोद्योग का आरम्भ किया जा रहा है। लेकिन आज नहीं तो कल, हमें यह सोचना होगा कि यहाँ जो आयोजन करना है, उसमें ग्रामोद्योग को एक महत्त्वपूर्ण विषय, जीवन का एक अंश मानकर स्थान देना होगा।

औजारों में सुधार हो

हिन्दुस्तान के लिए ग्रामोद्योग अत्यन्त आवश्यक है, इसका मतलब यह नहीं कि औजारों में कोई सुधार ही न किया जाय। सुधार तो जरूर करना चाहिए और हम भी पचीस साल से उसके पीछे लगे हुए हैं। अनेक वर्षों से हमने चरखे के प्रयोग किये और परिणामस्वरूप अब 'अम्बर चर्खा' निकला है। ऐसे सुधरे हुए औजार जरूर निकलने चाहिए। उनसे कोई हानि नहीं होगी। लेकिन अम्बर चरखा आयेगा, तो भी हमारी तकली और चर्खा नहीं मिटेगा। छोटे-छोटे बच्चे भी रोज आध घंटा चर्खे पर सूत कातकर अपने लिए सालभर का कपड़ा बना सकते हैं। ग्रामोद्योगों में यह सामर्थ्य है कि गाँव के औजारों से ही काम हो सकता है और उसके लिए ज्यादा पूँजी की जरूरत नहीं होती और न ज्यादा तालीम ही देनी पड़ती है।

ग्रामदान के बिना ग्रामोत्थान असम्भव

ग्रामोद्योग भी अकेले नहीं टिक सकते। गाँव के सब लोगों को मिलकर उसके लिए योजना करनी होगी। अगर गाँव के लोग निश्चय करें कि हमारे गाँव में बाहर का कपड़ा नहीं आ सकता, तो वे योजना करके कपास बोने से कपड़ा बनाने तक का सारा काम गाँव में ही करेंगे। हम नहीं मानते कि इस तरह की योजना के

बिना ग्रामोद्योग फैल सकते हैं। कोई व्यक्तिगत तौर पर ग्रामोद्योग कर ले, तो भी उससे ग्रामव्यापी योजना नहीं हो सकती। कोई एकाध मनुष्य अपनी मर्जी से सूत कातकर अपना कपड़ा बना सकता है। लेकिन उतने से ग्राम-योजना नहीं बन सकती। ग्राम-योजना बनाने के लिए गाँव की एक समिति बननी चाहिए। लेकिन जब तक गाँव में विषमता रहेगी, तब तक गाँव के लोग ग्राम-समिति के निर्णय न मानेंगे। इसलिए जमीन का समान बँटवारा भी आवश्यक है। हमने इसके लिए कुछ सिद्धान्त ही बनाये हैं, जो आपके सामने रख रहे हैं: (१) बिना ग्रामोद्योग के ग्राम का उत्थान हो नहीं सकता, (२) सुव्यवस्थित ग्राम-योजना के बिना ग्रामोद्योग नहीं चल सकते, (३) ग्राम की सुव्यवस्थित योजना ग्राम-समिति बनाये बगैर नहीं हो सकती और (४) ग्राम-समिति को गाँव में तब तक मान्यता नहीं मिल सकती, जब तक गाँव में जमीन का समान बँटवारा न हो। इस तरह ग्रामोत्थान के साथ ग्रामोद्योग और जमीन का बँटवारा, ये दो चीजें बँधी हुई हैं, उन्हें अलग नहीं किया जा सकता है।

गुहारी
७-६-'५५

स्वेच्छा से स्वामित्व छोड़ने में ही क्रान्ति : ४० :

मनुष्य को जीवन में यज्ञ का भी कुछ मौका मिले, तो वह बहुत भाग्य माना जायगा। हमारे जीवन मे हमें एक यज्ञ की पूर्ति करने के बाद दूसरा यज्ञ शुरू करने का भाग्य मिला है। मनुष्य को अक्सर ऐसा भाग्य हासिल नहीं होता। कालिदास ने लिखा है: "क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते"—जो भक्त होते हैं, वे एक क्लेश समाप्त होते ही नये क्लेश का आरम्भ करते हैं। नये क्लेश का आरंभ करने का मतलब है, नये आनन्द का आरम्भ करना। तपस्या और तप में बड़ा फर्क है। तप से आनन्द और निर्मिति होती है। हम लोगों को स्वराज्य के नाम से तपस्या करने का एक दफा मौका मिला था और अब दुबारा 'सर्वोदय' के नाम से तपस्या करने का मौका मिला है, इसलिए हम बड़े भाग्यवान् हैं। हमें उम्मीद होनी चाहिए कि यह कार्य पूरा हुए बगैर भगवान् हमें अपने दर्शन के लिए न बुलायेगा। उस हालत मे हमें वर्षों को कोई गिनती ही न करनी चाहिए, अपने काम मे उत्साह मालूम होना चाहिए। जब भगवान् किसीको इस तरह का भाग्य देता है, तो उसे दोनों तरफ से सुख हासिल होता है, उसके दोनों हाथ लडड्डू रहते हैं। अगर भगवान् ने उसे अपने दर्शन के लिए जल्दी बुला लिया, तो उसे भगवान् के दर्शन का आनंद मिलेगा और अगर जल्दी न बुलाया, तो भगवान् को ही सेवा करने का आनन्द मिलेगा। इस तरह जिसके लिए इस ओर आनन्द और उस ओर भी आनन्द है, उसके जीवन में सिवा आनन्द के दूसरी वस्तु नहीं रहेगी।

कार्यकर्ताओं का अभिनन्दन

हमें बड़ी खुशी हो रही है कि आज का यह दिन कोरापुट जिले की यात्रा मे आया। हम इस दिन को अपनी साठ वर्षों की पूर्ति का उत्सव नहीं मानते, बल्कि यहाँ जो भूमि-क्रांति शुरू हुई है, उसके संकल्प का दिन मानते हैं। मेरा बचपन से

बड़ा भाग्य रहा है कि हमेशा सज्जनों की संगति और सबका खूब अच्छा सहयोग मिला है। इस जिले में भी मुझे चार महीने से यही अनुभव आ रहा है। यह जिला मलेरिया के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ बीच-बीच मे बारिश भी काफी हुई और घने जंगल तो पड़े ही हैं। फिर भी इस बारिश में पचासों कार्यकर्ता साढ़े तीन, चार महीने से लगातार घूमकर काम कर रहे हैं। इसलिए अब यह शंका नहीं रही कि बारिश में किस तरह काम हो सकेगा। यहाँ बहुत बड़ा कार्य हुआ है और कार्यकर्ताओं के लिए ढाढ़स और हिम्मत बँध गयी है। यात्रा के लिए तो हर जगह कई सहूलियतें मिलती हैं। लेकिन इन कार्यकर्ताओं को कोई खास सहूलियत नहीं मिलती। इसलिए आज के दिन हम इन सब कार्यकर्ताओं का अत्यन्त हृदयपूर्वक अभिनन्दन करते हैं। परमेश्वर से हमारी माँग है कि वह इन सबको ऐसी ही सद्बुद्धि दे, इन्हें दीर्घायु करे, इन सबका परस्पर प्रेमभाव शतगुणित हो और सबको उत्तरोत्तर हृदय-शुद्धि होती जाय।

सभी कामों का आधार हृदय-शुद्धि

हमारे सभी कामों का आधार हृदय-शुद्धि है। आखिर यह कोई साधारण कार्य नहीं है, यह तो यज्ञ-कार्य है और यज्ञ-कार्य हृदय-शुद्धि पर निर्भर करता है। इस आन्दोलन में कितने लोग योग देते हैं, इसकी हमें चिन्ता नहीं। लेकिन जब हम देखते हैं कि कार्यकर्ता चार महीने से बारिश में अविश्रांत श्रम करते आये हैं और उन्हें किसी भी प्रकार की ख्याति या लाभ हासिल नहीं है, फिर भी वे काम करते जाते हैं, तो हमारे हृदय को बड़ा आनन्द होता है। काम तो खैर, सब करते ही हैं। दुनिया में बिना काम का कोई क्षणभर के लिए भी नहीं रहता। किन्तु जिसे 'निष्काम कर्म' कहते हैं, वह चीज बहुत दुर्लभ है। लेकिन इस यज्ञ में कोरापुट जिले के इतने सारे कार्यकर्ताओं को वह चीज सुलभ हो गयी, यह देखकर हमें प्रसन्नता होती है।

हमारे नेता परमेश्वर

हमें इसमें जरा भी संदेह नहीं कि यह कार्य ईश्वर हम लोगों से कराना चाहता है। किसीको लगता है कि हमारे काम के लिए अच्छे नेता मिलते, तो यह कार्य

बहुत जल्दी आगे बढ़ता। लेकिन आप समझ लीजिये कि हमारे काम के लिए जो नेता मिला है, उससे बढ़कर नेता सारी दुनिया में नहीं है। हमारे काम के लिए परमेश्वर ही नेता हुए हैं। उनके बल और उनकी इच्छा के सिवा यह काम किसी प्रकार आरंभ ही न हो सकता था। अगर वे नेता न होते और इस काम का थोड़ा-सा भी भार हमारे कंधों पर पड़ता, तो हम टिक नहीं सकते थे। जैसा कि मैंने अभी कहा, इस शरीर का कोई भी भार मेरे ऊपर नहीं है। वैसे ही हम यह भी कहना चाहते हैं कि इस कार्य का कोई भार हम पर है, ऐसा हमें महसूस नहीं होता। मैं तो मानता हूँ कि ईश्वर की प्रेरणा न होती, तो ये सारे छोटे-छोटे कार्यकर्ता इस तरह काम न कर सकते। लेकिन जब वह चाहता है, तो जड़ को चेतन बनाता है, नाचीज को भी चीज बना देता है।

संकल्प का कोई भार नहीं

आज के दिन कोरापुट में जो यज्ञ शुरू हुआ है, उसकी पूर्ति का संकल्प हम सब करें और उस संकल्प का कोई भार हम महसूस न करें। हम उसे भक्ति का एक संकल्प समझें। हमारे कुछ भाई हमें बहुत बार कहते हैं कि आपने यह जो पाँच करोड़ एकड़ का संकल्प किया और उसके साथ सत्तावन साल की जो मुद्दत लगा दी, उससे कई दोषों को पैदा होने और अहिंसा में भी बाधा पड़ने की आशंका है। उनकी यह कल्पना सही हो सकती थी, अगर इस संकल्प का कोई भार हम महसूस करते। लेकिन इसका कोई भार हम पर नहीं है, इसलिए इसमें उतावली या हिंसा की कोई शंका नहीं हो सकती। जरा भी सोचा जाय, तो ध्यान में आ जायगा कि इस तरह लोगों से पाँच करोड़ एकड़ जमीन हासिल करने का संकल्प हम नहीं कर सकते। अगर हम कोई संकल्प कर सकते हैं, तो यही कर सकते हैं कि हम लोगों के पास जायेंगे और प्रेम से अपनी बात समझायेंगे। जमीन देने का संकल्प तो लोग ही कर सकते हैं। इसलिए पाँच करोड़ एकड़ का संकल्प याने एक सीधा-सादा गणित है, जो हमने देश के लोगों के सामने रखा है। हमने कहा है कि देश के उद्धार के लिए इतना होना आवश्यक है। समय की भी हमने जो कल्पना की है, वह हमारी अपनी कल्पना नहीं है। हमारा

कुछ इतिहास का निरीक्षण है और कुछ श्रद्धा है। इन दोनों के कारण हमारे मन में यह विचार आया कि इस काम की कुछ मुद्दत होनी चाहिए। हमने वह मुद्दत अपने मन में मान ली है। किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि उस सीमा के अंदर हम कुछ गलत ढंग से काम करें। हमारा रास्ता तो सीधा और सरल है। सत्य हमारा आधार है और अहिंसा हमारा प्राण। इन दो आधारों पर निष्ठा रखकर हमने यह काम शुरू किया है।

काम एक दिन में हो सकता है

मेरा गणित पर बहुत ज्यादा विश्वास है, फिर भी ये आक्षेपकारी उस पर जितना विश्वास रखते हैं, उतना मेरा भी नहीं है। वे पूछते हैं कि चालीस लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने के लिए तीन साल लगे, तो पाँच करोड़ के लिए कितना समय लगेगा और सत्तावन के अन्दर यह सब कैसे होगा? जरा बताइये। मैं जवाब देता हूँ कि सत्तावन साल तक काम पूरा करने की बात ही क्यों करते हो? यह काम तो एक दिन में होगा। सारा देश एक संकल्प कर ले और एक तारीख मुकर्रर कर ले, तो उस दिन देश के सब गाँवों में जमीन की प्राप्ति और बँटवारा हो जायगा। उसके आगे निर्माण का काम करना होगा। वह एक दिन में नहीं हो सकता। उसके लिए जितना समय लगना चाहिए, उतना लगेगा। फिर उसमें गणित की मदद होगी। लेकिन यह प्राप्ति और वितरण का काम तो एक दिन में ही हो सकता है। उस एक दिन की प्राप्ति के लिए जितने दिन लगें सो लगें।

स्वेच्छा से स्वामित्व-विसर्जन ही क्रांति

हमारे चित्त में तो इस काम के लिए प्रतिक्षण उत्साह बढ़ रहा है। हमने बिहार में ही कहा था कि 'बिहार के बाद उड़ीसा को भूमि-क्रान्ति का काम करना है।' यहाँ के कार्यकर्ताओं ने उस शब्द पर श्रद्धा रखकर उस दिशा में काम किया और हमारे आने के पहले ही कुछ गाँव ग्रामदान में मिले। अब यहाँ एक स्पष्ट दर्शन हो रहा है, यह मैं अपनी आँखों से देख रहा हूँ। यहाँ इस काम का कुछ थोड़ा-सा विरोध भी हो रहा है, यह सुनकर मुझे खुशी ही हुई। अगर इतना होने

पर भी विरोध नहीं होता, तो मेरे मन में शंका आती कि शायद हम कुछ-न-कुछ गलती कर रहे हैं। इस काम से तो आज की समाज-रचना की बुनियाद ही खतम हो रही है। जहाँ आप कुल जमीन ईश्वर की मालकियत की मानने लगे, वहीं आप व्यक्तिगत मालकियत ही खतम कर देते हैं। लेकिन आज तो ऐसे समाजशास्त्रज्ञ ही नहीं, बल्कि नीतिशास्त्रज्ञ और तत्त्वज्ञानी भी मौजूद हैं, जो व्यक्तिगत मालकियत को एक पवित्र वस्तु मानते हैं। वे क्या कहना चाहते हैं, यह मैं समझ सकता हूँ। वे यही कहना चाहते हैं कि जो चीज दूसरे ने अपने हाथ में पकड़ रखी है, उसे हम हिंसा से छीन लेते हैं, तो वह अन्याय हो जाता है। लेकिन वह चीज उसीकी इच्छा से उसके हाथ से नीचे गिरनी चाहिए। क्योंकि उसने वह वस्तु प्राप्त करने के लिए काफी परिश्रम किया है। इसलिए उसे वह वस्तु छोड़ने में ही अपने परिश्रम की सार्थकता मालूम होनी चाहिए। जब आप अपनी कमायी हुई इस्टेट बेटे के हाथ सौंप देता है, तो उसे बड़ी खुशी होती है। उसे इस बात का विशेष आनन्द इसलिए होता है कि उसने वह इस्टेट खुद कमायी है। इसी तरह आज के समाज ने अपनी जो मालकियत मान रखी है और उसके लिए उसने कुछ परिश्रम भी किया है, तो उसे मालकियत छोड़ने में ही परिश्रम की सार्थकता मालूम हो। जब ऐसा अनुभव आयेगा, तब हम कह सकेंगे कि हमने क्रान्ति की है।

विचार-मन्थन आवश्यक

हमारा यह विचार बिलकुल ही नया विचार है। जब एक नया विचार शुरू होता है, तो पुराने विचारवाले आश्चर्य में पड़ जाते हैं और कुछ लोग विरोध भी शुरू करते हैं। उसमें हमें ताज्जुब मालूम न होना चाहिए। इस तरह जो कुछ थोड़ा विरोध शुरू हुआ है, उससे हमें बड़ा लाभ होगा। उससे विचार-मंथन होगा, जिसकी इस काम में बहुत आवश्यकता है। विचार-मन्थन के बिना ज्ञानाग्नि पैदा नहीं होती। हमने जगह-जगह जाकर गाँववालों को समझाया है कि आप यह काम पूरे विचार से कीजिये। मेरा विश्वास है कि जिन्होंने ग्रामदान दिया है, उनमें सिर्फ दस-पाँच ही ऐसे गाँव होंगे, जिन्होंने दूसरों की देखादेखी यह काम

व्यावहारिक लोग स्थितप्रज्ञ के श्लोक बोलते होंगे। अक्सर सर्वसाधारण लोग भक्त के लक्षण गाया करते हैं। गीता में जो भक्त के लक्षण हैं, वे बहुत अच्छे हैं। गीता का सबसे मधुर अंश अगर कोई है, तो वह भक्त के लक्षणों का है। इसलिए लोग भक्त के लक्षण गाया करते हैं, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। उसमें साधारण सद्गुणों की प्रशंसा है। किन्तु स्थितप्रज्ञ के श्लोक अंतिम अवस्था का वर्णन करते हैं, फिर भी गांधीजी ने उन्हीं श्लोकों को चुनकर लोगों के सामने रखा और वे लोकप्रिय हो गये।

विज्ञान-युग में निर्णय-शक्ति की महिमा

गांधीजी ने इन श्लोकों को क्यों चुना और उन्हें इनका इतना आकर्षण क्यों मालूम हुआ? इसका कुछ अंदाजा हम लगा सकते हैं। उसका एक कारण यह है कि विज्ञान के युग में जिसकी अत्यन्त आवश्यकता है, उसकी पूर्ति इनसे होती है। शंकराचार्य को आत्मा की अंतिम स्थिति का बहुत आकर्षण था और उसी दृष्टि से वे इन श्लोकों की तरफ देखते थे। किंतु वैज्ञानिक युग में रहनेवालों को इन श्लोकों से ऐसी चीज मिलती है, जिसकी इस युग को अत्यन्त आवश्यकता है। इन श्लोकों में सबसे ज्यादा महत्त्व 'प्रज्ञा' को दिया गया है, प्रज्ञा याने 'निर्णय-शक्ति'। यह निर्णय-शक्ति जितनी परमार्थ में काम आती है, उतनी ही व्यवहार में भी आती है। आज के वैज्ञानिक युग में मनुष्य के मसले बहुत व्यापक हुए हैं। इसलिए कठिन समस्याएँ पेश होती हैं। इस जमाने में छोटे-छोटे सवाल पेश नहीं होते, जो भी पेश होते हैं, बड़े ही होते हैं। लड़ाई की समस्या अगर उठ खड़ी होती है, तो वह जागतिक ही होती है। कोई वैज्ञानिक समस्या खड़ी होती है, तो वह भी जागतिक ही होती है। कोई समाजिक समस्या खड़ी होती है, तो वह भी विश्वव्यापक हो जाती है। कोई साधारण व्यापार की समस्या खड़ी होती है, तो उसका भी सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पहुँच जाता है। इस तरह विज्ञान के कारण छोटी-छोटी समस्याएँ भी बड़ा व्यापक रूप ले लेती हैं। दूसरी मजेदार बात यह होती है कि इधर तो व्यापक और कठिन समस्याएँ पेश होती हैं और उधर उनका जल्दी निर्णय करने की भी आवश्यकता होती है। क्योंकि

काल की महिमा इतनी बढ़ गयी है कि एक-एक घण्टा भारी हो गया है। आठ बजे मिलनेवाली डाक अगर नौ बजे मिले, तो मनुष्य घबड़ा उठता है। डाक मिलने में एक घण्टे की देर हो, तो दुनिया में कई प्रकार की बुराइयाँ पैदा हो सकती हैं।

स्थितप्रज्ञ के लक्षणों की इस युग में अधिक आवश्यकता

सारांश, जहाँ बड़ी-बड़ी समस्याएँ पेश होकर भी उनका शीघ्र निर्णय करने की आवश्यकता होती है, वहाँ स्थितप्रज्ञ के लक्षण एक बड़ा आश्रय का स्थान है। जैसे अन्तिम ब्रह्म-दर्शन के लिए स्थितप्रज्ञ के लक्षणों के सिवा गति नहीं, वैसे ही इस जमाने की समस्याएँ हल करने के लिए भी उनके सिवा गति नहीं है। इन दिनों सारी दुनिया की खबरें शीघ्र मिल जाती हैं और एक घण्टे में वे दिमाग में उपस्थित हो जाती हैं। उनका अपने पर असर हुए बिना, बिलकुल तटस्थ बुद्धि से निर्णय करना होता है। अगर असर पड़ा, तो निर्णय ठीक नहीं हो सकता। इस तरह इस जमाने के लिए निर्णय-शक्ति की महिमा बहुत ही बढ़ गयी है। इसीलिए गांधीजी ने साधारण कार्यकर्ताओं के सामने भी गीता के ये श्लोक रखे।

समाज को स्वावलम्बी बनाना सबसे श्रेष्ठ सेवा

समझने की जरूरत है कि मनुष्य की सेवा किस प्रकार समाज के काम आती है ? मनुष्य कई प्रकार से समाज की सेवा करता है। शारीरिक सेवा, मानसिक सेवा और वाणी से भी सेवा करता है। लेकिन सबसे श्रेष्ठ सेवा वह है, जिसके जरिये समाज सोचने में स्वावलम्बी बनता है। लड़कों को हम तरह-तरह का ज्ञान दें, इसका उतना महत्त्व नहीं, जितना इस बात का महत्त्व है कि लड़के ज्ञान-प्राप्ति करने में स्वतन्त्र हों। अगर समाज के हर व्यक्ति में अपने लिए विचार करने की शक्ति आ जाय, तो समाज की बड़ी सेवा होगी। अगर स्थितप्रज्ञ के ये लक्षण हम लोगों के जीवन में आ जायँ—और उनका आना बहुत ज्यादा कठिन नहीं, ऐसा हम कर सकते हैं—तो समाज के मसले सहज ही हल होंगे। क्योंकि उसके परिणामस्वरूप हर घर में निर्णय-शक्ति दाखिल होगी। जैसे हर घर में एक-एक दीपक लग जाने से रात का अँधेरा मिट जाता है, वैसे ही हर घर में स्थितप्रज्ञ के

लक्षण दाखिल होने पर निर्णय-शक्ति दाखिल होगी। अगर हम चाहते हैं कि दुनिया में 'गणतन्त्र' स्थापित हो और 'शासन-मुक्ति' आ जाय, तो मनुष्य की बुद्धि शान्त, सम और शुद्ध होनी चाहिए।

निर्णय-शक्ति की प्राप्ति कठिन नहीं

स्थितप्रज्ञ के ये लक्षण प्राप्त करना कठिन नहीं, यह हमने हिम्मत की बात कही है। उसे हम जरा स्पष्ट करेंगे। स्थितप्रज्ञता एक अत्यन्त विकसित अवस्था है। लेकिन साधारण क्षेत्र में उसका साधारण आरंभ हो सकता है। अपने निज के व्यवहार के लिए, अपने कुटुम्ब के क्षेत्र में या अपने गाँव के क्षेत्र में निर्णय करने की शक्ति हासिल हो सकती है। इस तरह अधिकाधिक व्यापक क्षेत्र में निर्णय करने की शक्ति हासिल हो, तो निर्णय-शक्ति के उत्तरोत्तर अनेक व्यापक अर्थ हो सकते हैं। फिर भी इस निर्णय-शक्ति का स्वरूप एक ही रहेगा। चाहे अपने व्यक्तिगत मामले में निर्णय देना हो, घर के क्षेत्र में, गाँव के क्षेत्र में या अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में निर्णय देना हो, तो निर्णय-शक्ति का स्वरूप यही रहेगा कि मसलों के बारे में सोचने में मनोविकार दाखिल न होने चाहिए।

हमने कहा है कि यह चीज इतनी कठिन नहीं मानी जानी चाहिए, इसके दो कारण हैं। पहला कारण यह है कि समता आत्मा का स्वरूप है। आत्मा स्वयं निर्विकार है। हम विकारवान् बनते हैं, तभी हमें कुछ क्लेश होता है। निर्विकार रहने के लिए किसी क्लेश या प्रयत्न की जरूरत ही नहीं होती। किसी पर गुस्सा करना हो, तो जरूर कुछ-न-कुछ प्रयत्न करना होगा—आँख का स्वरूप बदलना पड़ेगा, हाथ उठाना पड़ेगा, चाहे लाठी भी उठानी पड़े। इस तरह उसके लिए कुछ-न-कुछ क्लेश करना पड़ेगा और नाड़ी भी तेज चलेगी। लेकिन अगर गुस्सा न करना हो, तो कुछ खास प्रयत्न की जरूरत ही नहीं है। उसमें कुछ करना ही नहीं पड़ता। इस तरह निर्विकार अवस्था की प्राप्ति बहुत कठिन न मानी जायगी। दूसरा कारण यह है कि इस विज्ञान के जमाने में वह एक आवश्यकता है। इसलिए हर मनुष्य में वह उपस्थित होगी।

हर कोई चाहे, तो स्थितप्रज्ञ बन सकता है

इस तरह मनोविकारों के विरुद्ध अब दो शक्तियाँ काम करने लगी हैं।

पुराने जमाने में मनोविकार के विरुद्ध केवल एक ही शक्ति काम करती थी और वह भी आत्मा की शक्ति। किन्तु आज तो मनोविकार के विरुद्ध विज्ञान भी खड़ा है। इधर से आत्मज्ञान और उधर से विज्ञान, दोनों मनोविकारों के विरुद्ध खड़े हैं। इसलिए निर्विकार चिन्तन करने की शक्ति बहुत ज्यादा कठिन न मानी जानी चाहिए, यह हमने कहा। हमने 'स्थितप्रज्ञ-दर्शन' में भी यह लिख रखा और हमारा यह निश्चित विचार है। हमने वहाँ लिखा है : 'मेरे जैसा मनुष्य अगर गामा पहलवान बनना चाहे, तो नहीं बन सकता। इसी तरह हर कोई अगर चाहे कि मैं राष्ट्रपति बनूँ, तो नहीं बन सकता। लेकिन हर कोई अगर चाहे, तो स्थितप्रज्ञ बन सकता है।'

कार्यकर्ता विकार छोड़ें

इस तरह देखा जाय, तो यह चीज जैसे अत्यन्त आवश्यक और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, वैसे ही अत्यन्त सहज भी है। भूदान-यज्ञ के काम में भी इसका बड़ा महत्त्व है। इस काम में केवल हम मुट्ठीभर कार्यकर्ता ही हैं। अगर परस्पर व्यवहार में जो अनेक प्रश्न खड़े होते हैं, उन्हें हल करने में हम निर्विकार बुद्धि से काम करें, तो वे शीघ्र हल हो जायँगे। यह निर्विकार बुद्धि हमें मिल जाय, तो १९५७ की जो बात हम करते हैं, उससे भी जल्दी काम होगा। साथ ही कार्यकर्ताओं की जो थोड़ी-सी शक्ति है, वह सारी-की सारी इस काम में जुट जायगी। आज तो उनके मतभेदों में विकार-भेद भी शामिल होते हैं और एक-दूसरे की शक्ति एक-दूसरे को काटती है। अगर हमारे बीच का यह शत्रु हट जाय, तो हमारी शक्ति बहुत बढ़ जायगी। इसलिए हमारी यह इच्छा है कि कार्यकर्ता इन श्लोकों का और उनके विचारों का खूब चिन्तन करें और इसका घर-घर प्रचार हो।

आज यह बात हमें सहज ही सूझी है। आज हमारे इस शरीर के साठ साल पूरे हुए, फिर भी हममें निर्विकारिता नहीं आयी, तो हमारा जीवन बेकार गया, ऐसा मानना पड़ेगा। आप सबका हम पर आशीर्वाद हो और हमारा आप पर आशीर्वाद हो कि परमेश्वर की कृपा से यह निर्विकार बुद्धि हमें हासिल हो।

गुनपुर
११-९-'५५

विरक्ति का होना एक खालिस सद्गुण है, ऐसा हम नहीं समझते। उसमें गुण का अंश जरूर है, पर वह एक पूर्ण गुण है, ऐसा हम नहीं समझते। हम उसमें दोष मानते हैं, इसीलिए विरक्ति का उपदेश नहीं देते। यद्यपि कई संतों ने हमें विरक्ति का उपदेश दिया है, पर यदि हम उसका ठीक स्वरूप समझ लें, तो मालूम होगा कि वह अनासक्ति ही है। शरीर या पारिवारिक जिम्मेवारी का त्याग, इस तरह उसका अर्थ करना गलत है। लेकिन विरक्ति का इसी तरह से अर्थ किया गया है। इसीलिए हम कहते हैं कि हम जो विचार फैला रहे हैं, वह विरक्ति का नहीं है।

हम लोगों को यह नहीं समझा रहे हैं कि अपने परिवार और बाल-बच्चों की चिंता क्यों करते हो? सारी-की-सारी जमीन देश को दे दो। बल्कि हम तो उनसे यही कहते हैं कि आप अपने शरीर और परिवार के लिए जो अनुराग रखते हैं, वह एक अच्छा गुण है; पर उसे सीमित मत बनाओ, व्यापक करो। हमारा हेतु वैराग्य-प्रचार का नहीं है। हम जानते हैं कि वैराग्य का प्रचार कई लोगों ने किया है और वह व्यापक रूप में नहीं हो सकता। लेकिन हम तो अनुराग का विस्तार करना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि हम अपना एक बड़ा परिवार समझें। आज तक हमने अपना छोटा परिवार समझ रखा था और इसी कारण संकुचित बन गये, जिससे कई दुःख निर्माण हुए हैं।

हमारी यह बात मान्य करते हुए कि हम अनुराग का विस्तार कर रहे हैं, कुछ लोग यह आक्षेप उठाते हैं कि 'अनुराग का विस्तार करने और बड़ा परिवार बनाने की बात आप करते हैं, लेकिन बड़े परिवार में मनुष्य को कर्तव्य की प्रेरणा नहीं मिलती, छोटे परिवार में ही वह मिलती है। अगर लोगों को यह समझाया जाय कि सारी जमीन देश की और संपत्ति समाज की है, तो लोग आपका विचार कबूल करेंगे। फिर भी वह चीज उन्हें ग्रहण नहीं होगी। अगर वह उन पर लादी जाय, तो उनमें आज की वह कर्तव्य-भावना न रहेगी, जिससे प्रेरित होकर वे कई अच्छे काम करते हैं। इसका उत्तर यही है कि भूदान-यज्ञ में हम मालकियत के नाते ईश्वर का ही नाम रखना चाहते हैं, जिसे सब मानते हैं और उसकी तरफ से गाँव का परिवार बनाने की बात करते हैं। हमें भी मंजूर है कि छोटे पैमाने पर उपासना अच्छी होती है और अगर बहुत बड़ा विस्तृत आकार हो जाता है, तो

वह वस्तु अव्यक्त हो जाती है। इसीलिए विचार मान्य होने पर भी उस पर अमल नहीं हो सकता और न उससे प्रेरणा ही मिल सकती है। यही कारण है कि हम सारे देश की मालकियत या सरकार की मालकियत की बात कभी नहीं करते।

न समुद्र, न नाला; बल्कि सुंदर नदी

हम कहते हैं कि हमें अपना परिवार व्यापक बनाना चाहिए, पर वह अति व्यापक न हो, साधारण ग्रहण होने जितना ही व्यापक हो। हम कबूल करते हैं कि समुद्र में डर मालूम होता है, मनुष्य को उसमें तैरने की हिम्मत नहीं होती। लेकिन हम कहना चाहते हैं कि नाले में भी खतरे होते हैं। वहाँ कई प्रकार की गंदगी होती है। इसलिए हम सबको समझा रहे हैं कि आपने यह जो छोटा-सा नाला पकड़ रखा है, उससे काम न बनेगा। हमें समुद्र की तरफ भी नहीं जाना है, बल्कि छोटी-सी सुंदर नदी बनानी है। अभी तक का मानवता का विकास और आज के विज्ञान की माँग को ध्यान में रखते हुए आज आपने अपना कुटुम्ब, जो बिल्कुल छोटे-से नाले जैसा सीमित बना रखा है, उसे ग्राम तक व्यापक बनाना चाहिए। इस तरह इधर हम छोटे नाले को छोड़ना चाहते हैं और उधर समुद्र की तरफ भी नहीं जाना चाहते। हम बीच की ही हालत पसंद करते हैं, जिसमें सेवा का क्षेत्र अच्छा रहेगा और बुद्धि भी व्यापक होगी।

मध्यम-मार्ग

सारी जमीन और सम्पत्ति देश या दुनिया की है, ऐसा कहने में विचार की उदारता या विशालता तो होती है, परन्तु उसमें सेवा की प्रेरणा नहीं होती है। वह वस्तु बहुत विशाल हो जाती है, तो एक प्रकार से अव्यक्त-सी हो जाती है। इसीलिए उसकी उपासना बड़ी कठिन हो जाती है। किन्तु अगर हम एक छोटा-सा परिवार बनाकर उसीमें रहते हैं, तो उससे सेवा की प्रेरणा तो मिलती है, पर विचार अनुदार और संकुचित बनता है। इसलिए सेवा की प्रेरणा भी बलवान् रहे और विचार भी उदार बने, इस दृष्टि से सोचते हुए जमीन गाँव की बनाने के विचार में दोनों अच्छे विचारों का समन्वय हो जाता है। आज के वैज्ञानिक जमाने में मनुष्य का जीवन जिस तरह बन रहा है, उस बारे में सोचते

हुए हम गाँव का एक परिवार नहीं बनायेंगे, तो हमें अपनी बहुत-सी समस्याएँ हल करना कठिन हो जायगा।

सारांश, ग्राम परिवार बनाने की यह कल्पना अनुराग का इतना विस्तार नहीं कि वह अव्यक्त ही हो जाय। इसलिए इसे हम एक व्यावहारिक कार्यक्रम ही समझते हैं। ग्राम-परिवार की कल्पना में जैसे नैतिक उत्थान है, वैसे ही व्यवहार की भी बड़ी सहूलियत है। बुद्ध भगवान् ने इसीको 'मध्यम-मार्ग' कहा था। वह अति संकुचित या अति विस्तृत न हो, बल्कि बीच की चीज हो, जिसे मनुष्य सहज ग्रहण कर सके। इस तरह ग्राम-परिवार की हमारी कल्पना भी एक मध्यम-मार्ग है, ऐसा हमारा दावा है।

गुनपुर
१२-६-'५५

देश को भूमि-सेवा के मूलधर्म की दीक्षा देनी है : ४३ :

शायद यह पहला ही अवसर है, जब कि देहात-देहात में सेवक जा रहे हैं। वैसे स्वराज्य के आंदोलनों में भी गाँवों का सहयोग अच्छा रहा। फिर भी कहना होगा कि उन आंदोलनों का मुख्य कार्य शहरों में ही चला। उसमें भी देहातियों का त्याग ज्यादा रहा। फिर भी जिस तरह इस आंदोलन में गाँव-गाँव में जाना पड़ता है और हर घर से संबंध आता है, उस तरह पहले नहीं हुआ था। चाहे छठा हिस्सा जमीन हासिल करनी हो या ग्रामदान, हर घर से संबंध आता है और हर घर इसकी चर्चा होती है, तब काम बनता है। इस दृष्टि से देखा जाय, तो इस आंदोलन की जड़ें समाज में बहुत गहरी जायँगी। और जब हम देखते हैं कि हमने काम कितना किया और गाँव-गाँव के लोगों में जाग्रति कितनी आयी है, तो मालूम होता है कि हमने काम बहुत ही थोड़ा किया, पर जाग्रति बहुत ज्यादा पैदा हुई। गाँव-गाँव के लोग अब इस बात के लिए तैयार हो रहे हैं कि हमारे गाँव का जो पहला ढाँचा था, वह अब नहीं चलेगा। एक के बाद एक गाँव

ग्रामदान में मिल रहे हैं। वे यह दिखा रहे हैं कि इस आंदोलन के लिए लोगों ने किस तरह आशाएँ रखी है।

ग्रामदान से नये समाजशास्त्र और नीतिशास्त्र का निर्माण

ग्रामदान तो समुद्र जैसा है। जिस तरह समुद्र में सब नदियाँ लीन हो जाती हैं, वैसे हरएक की मालकियत ग्रामदान में लीन हो जाती है। इस काम के लिए अब छोटे-छोटे गाँवों के लोग भी तैयार हो रहे हैं, तो इसका मतलब यही है कि काल का एक प्रवाह बह रहा है, जो सबको स्पर्श कर रहा है। इस आन्दोलन के समय परस्पर सहयोग का महत्त्व जितना लोगों के ध्यान में आ रहा है, उतना इसके पहले कभी नहीं आया था। क्योंकि व्यक्तिगत मालकियत समाज में लीन कर देने से बढ़कर और परस्पर सहयोग क्या हो सकता है ? इसलिए इस आन्दोलन के जरिये न सिर्फ भूमि के मसले के लिए राह खुल जाती है, बल्कि सब तरह की सामूहिक साधना की तैयारी भी हो जाती है। वह एक ऐसे ढंग से होती है कि उसमें समूह के साथ व्यक्ति का कोई विरोध पैदा नहीं होता, बल्कि सारे व्यक्ति अपनी इच्छा से अपने स्वार्थ को समूह में विलीन कर देते हैं। इसलिए 'समूह विरुद्ध व्यक्ति' का जो झगड़ा पाश्चात्य समाजशास्त्रज्ञों और नीतिशास्त्रज्ञों ने पैदा किया था, वह इसमें रहता ही नहीं। ये लोग जो ग्रामदान दे रहे हैं, वे एक नया नीतिशास्त्र और नया समाजशास्त्र रच रहे हैं। ये लोग स्वार्थ और परमार्थ का भी भेद मिटा रहे हैं। जैसे व्यक्ति और समाज के हित में विरोध नहीं, वैसे ही स्वार्थ और परमार्थ के बीच भी कोई विरोध नहीं है।

कार्यकर्ताओं के लिए अद्भुत मौका

इस तरह इस आन्दोलन में जो शक्तियाँ निर्माण हो रही हैं, वे इतनी व्यापक हैं कि उसके लिए हम चाहे जितनी कोशिश करते हों, कम ही मालूम होगी। इस आन्दोलन में काम करनेवाला व्यक्ति देश-सेवा का दावा कर सकता है, परमार्थ का दावा कर सकता है और समाज-सेवा का दावा तो कर ही सकता है। 'समाज-सेवा' का प्रयोग मैंने मामूली अर्थ में नहीं किया है। वैसे समाज-सेवा तो देश-सेवा में आ ही जाती है। लेकिन हम कहना चाहते हैं कि समाज-रचना बदलने की या क्रांति

की बात इसमें आती है। इस तरह देश का आर्थिक जीवन उन्नत करना, सामाजिक रचना में क्रांति लाना और पारमार्थिक उन्नति करना, यह सारा कार्य देहात-देहात में चल रहा है। इसलिए कार्यकर्ताओं को ऐसा अद्‌भुत मौका मिल रहा है कि उनके लिए इससे बढ़कर उत्साहदायी आमंत्रण कोई नहीं हो सकता।

अंदर की ताकत बढ़नी चाहिए

अक्सर हम गाँव-गाँव के लोगों के पास जाकर पूछते हैं कि आपको क्या चाहिए ? तो वे जवाब देते हैं कि शिक्षा या पानी का इंतजाम होना चाहिए। लेकिन एक बार हमने ग्रामदान में मिले एक गाँव के लोगों को यही सवाल पूछा, तो उन्होंने जवाब दिया : 'अब हम एक हो गये हैं, इसलिए हमें कोई कमी ही नहीं रहेगी। हम एक-दूसरे की मदद करेंगे, तो सब चीजें हासिल कर सकेंगे।' यह जवाब सुनकर मैं चकित रह गया ! मुझे लगा कि अब इन लोगों को समझाने के लिए मेरे पास अधिक कुछ शेष नहीं रहा। इन छोटे-छोटे गाँवों को बाहर से कोई मदद नहीं मिलती, इसलिए भी वे समझ लेते हैं कि गाँव एक बनता है, तो अंदर से एक ताकत बनती है। इन सब गाँवों को यह अनुभव हो रहा है कि उनकी शक्ति अंदर से बढ़नी चाहिए। जब अपनी शक्ति बढ़ाने की इच्छा अंदर से जाग जाती है, तो मनुष्य की आत्मा एकदम सावधान हो जाती है। फिर भूदान-यज्ञ का संदेश सुनकर लोगों को यह लग रहा है कि यह एक ऐसा साधन है, जिसमें हम परावलंबी न रहेंगे, अपने बल से काम करेंगे। इसलिए वे लोग अत्यन्त उत्साह से यहाँ आते हैं और हमारा संदेश प्रेम से सुनते हैं। हम उन्हें यह भी सुनाते हैं कि इस तरह आप अपने गाँव को सर्वोदय की दृष्टि से संगठित करेंगे, तो आपको बाहर से भी मदद मिल सकती है। लेकिन इस बारे में हम बहुत एहतियात से काम करते हैं। हम उन्हें यह भास नहीं होने देते कि उनके अंदर की शक्ति से बढ़कर कोई शक्ति उन्हें मदद करनेवाली है। शास्त्र का वचन है कि जो खुद की मदद करते हैं, उन्हें भगवान् मदद करता है। फिर भी वे लोग अपनी अन्दर की ताकत बढ़ायेंगे, तो उसके साथ उन्हें कुछ बाहर की मदद भी मिलनी चाहिए। लेकिन जो लोग सिर्फ बाहर की ताकत पर विश्वास

रखते हैं, उनकी अन्दर की ताकत तो बढ़ती ही नहीं, बाहरी ताकत भी जितनी चाहिए, उतनी नहीं मिलती।

हर कोई खेती करे

हम इन गाँववालों को समझाते है कि आप लोग मैं-मेरा और तू-तेरा छोड़ दें और 'हम और हमारा' कहना शुरू कर दें। अगर कोई आपसे पूछे कि तुम्हारी जाति क्या है, तो कह दीजिये कि हम जाति नहीं मानते। हम इस गाँव के रहनेवाले हैं। ये सब जातियाँ जिस जमाने मे बनीं, उस जमाने में उनका काम था; लेकिन आज काम नहीं है। जाति का मतलब इतना ही है कि कोई बढ़ई का काम करता था, तो उसका लड़का भी बढ़ई का काम आसानी से सीख लेता और उसे तालीम के लिए किसी स्कूल में जाने की जरूरत न पड़ती थी। लेकिन आज तो गाँव-गाँव के सारे धंधे टूट ही गये, इसलिए उनके साथ जातियाँ भी टूट गयीं। धंधे टूटने के बाद भी अगर कोई 'जाति' का नाम लेता है, तो वह एक प्रकार से बेकार ही है। इसके आगे हम लोगों को धंधा देना चाहते हैं, पर जातियाँ बनाना नहीं चाहते। क्योंकि हम चाहते हैं कि हरएक को खेती में कुछ-न-कुछ समय देना ही चाहिए, फिर बचे हुए समय में हर कोई अपना-अपना धंधा कर सकता है। कोई बुनकर दिनभर बुनता ही रहेगा, तो उसके शरीर का गठन अच्छा न रहेगा और न आरोग्य ही ठीक रहेगा। आरोग्य के लिए हरएक को खेत में काम करना चाहिए और बचे हुए समय में कोई बुनाई का काम करेगा, कोई बढ़ई का, तो कोई शिक्षक का काम करेगा। मैं तो चाहूँगा कि स्त्रियाँ भी खेती में काम करें और बचे हुए समय में घर का धंधा करें। हरएक को खुली हवा मिलनी ही चाहिए। मनुष्य कुदरत के साथ एकरूप होगा, तो वह एक प्रकार की परमेश्वर की उपासना होगी।

जातियों का स्थान वृत्तियाँ लेंगी

इसके आगे जाति का विचार ही छोड़ देना होगा। यह ध्यान रखना चाहिए कि अब जातियाँ नहीं, वृत्तियाँ रहेंगी। हमारी वृत्ति ग्राम सेवा की होनी चाहिए। किसीमें कोई शक्ति होती है, तो किसीमें कोई, पर हमें अपनी सारी शक्तियाँ

ग्रामसेवा में अर्पण करनी है। जो जूता बनायेगा, वह यह नहीं कहेगा कि मैं चमार हूँ; बल्कि यही कहेगा कि मैं ग्रामसेवक हूँ। बढ़ई यह नहीं कहेगा कि मेरी जाति बढ़ई की है। बल्कि यही कहेगा कि मैं ग्रामसेवक हूँ। शिक्षक नहीं कहेगा कि मेरी जाति शिक्षक की है, बल्कि यही कहेगा कि मैं ग्रामसेवक हूँ। फिर भी हर कोई कहेगा कि मेरी वृत्ति या तो बढ़ई की है या बुनकर की या शिक्षक की है। ये सारी वृत्तियाँ हैं, जातियाँ नहीं हैं। सब मिलकर खेती करेंगे, तो सब जातियाँ किसान के साथ एकरूप हो जायँगी और हरएक मनुष्य किसान होगा। कोई बढ़ई-किसान, कोई बुनकर-किसान, कोई गुरुजी किसान, कोई मंत्री-किसान, कोई न्यायाधीश-किसान—इस तरह हरएक किसान होगा और उसके साथ-साथ उसकी अलग-अलग वृत्ति रहेगी। हमें इस तरह का ग्राम-राज्य बनाना है।

सर्वोदय में व्यक्तिवाद और समाजवाद का विलय

हमारा विश्वास है कि ये छोटे-छोटे गाँव हमारी कल्पना के अनुसार बनेंगे। हम इन सब लोगों को यह समझाने के लिए घूम रहे हैं कि 'भाइयो, इसके आगे तुम्हारे दिन आनेवाले हैं। तुम देख रहे हो कि ये विदेशी लोग तुम्हें देखने के लिए आये हैं*। ये लोग यह देखने के लिए आते हैं कि अपनी सब जमीन देनेवाले ये गाँव के लोग कैसे होते हैं, हम जरा देखें। वे समझते हैं कि ये लोग ऐसा काम कर रहे हैं कि ये हमारे गुरु होंगे और सारी दुनिया से हिंसा मिटा देंगे। क्योंकि अंग्रेज, फ्रेंच, जर्मन, अमेरिकन आदि सबने जो राज्य बनाये, वे सारे स्वार्थ के ऊपर खड़े हैं। वहाँ हरएक का व्यक्तिगत अधिकार इतना बढ़ा दिया गया कि उसके विरुद्ध एक समाजवाद निर्माण हो गया और दोनों के बीच टक्कर शुरू हुई है। अब वे जब देखते हैं कि सर्वोदय में व्यक्तिवाद और समाजवाद, दोनों लीन हो जाते हैं, तो उन्हें कुतूहल होता है कि यह काम कैसे चल रहा है, जरा देखें तो!

भूमिसेवा मूलधर्म है

हमारा विश्वास है कि हमारे कार्यकर्ता इस दृष्टि से काम करेंगे, तो हिन्दुस्तान

* उस समय एक अमेरिकन बहन तथा एक जर्मन भाई भूदान-कार्य का निरीक्षण करने के लिए विनोबाजी के साथ यात्रा कर रहे थे।

के एक किनारे में एक ज्योति प्रकट होगी और उसके प्रकाश से सारा हिन्दुस्तान प्रकाशित हो उठेगा। बड़ी खुशी की बात है कि यहाँ कुछ आदिवासी जमातें भी हैं, जो वर्षों से अपनी जमीन के साथ चिपके हैं और दुनिया की परवाह नहीं करते। ये हिन्दुस्तान की सभ्यता की जड़ें पकड़े हैं। कुछ लोग समझते हैं कि ये लोग जंगल में रहते हैं और 'पोड्डू चास' (पहाड़ पर खेती) करते हैं, उन्हें वही प्रिय है। लेकिन यह खयाल गलत है। इन्हें जंगल में ढकेला गया है, फिर भी ये जमीन के साथ चिपके है और खेती को मूलधर्म मानते हैं। दूसरे लोगों ने अपने मूलधर्म छोड़ दिये और दूसरी अनेक बातें ली हैं। लेकिन इन्होंने मूलधर्म नहीं छोड़ा। ये लोग जंगल के अन्दर ढकेले गये, तो वहाँ भी पहाड़ पर खेती करते है। इस तरह आदिवासियों के ये मूल संस्कार हिन्दुस्तान का मूलधर्म है। वह मूलधर्म है भूमि-सेवा या भूमि-पूजा।

आदिवासी आदिधर्म के उपासक

भिन्न-भिन्न आदिवासियों की जमातें सूर्य, वरुण, भू-माता आदि देवताओं को मानती हैं। ये सारे प्राचीन आर्य ऋषियों के वंशज हैं। ऋषि भी इन्हीं देवताओं का नाम लेते थे। उसके बाद नये-नये देवता निकले। आपके भुवनेश्वर आदि सारे देव तो अर्वाचीन हैं। हमारे देश की मूल-देवता भूमि-माता, सूर्य, वरुण आदि हैं। हमारा रिवाज है कि जिसकी सेवा कर सकते हैं, उसकी सेवा करना और जिसकी सेवा नहीं कर सकते, उसकी पूजा करना। ये लोग भूमि-माता की सेवा और सूर्य की पूजा करते हैं। ये खुले बदन सूर्य-प्रकाश में घूमते हैं, तो हम समझते हैं कि सूर्य की उपासना करते हैं। जो लोग बाहर से यहाँ सेवा करने के लिए आयेंगे, उन्हें भी इनके जैसे खुले बदन घूमने की आदत डालनी चाहिए। वे यह न समझें कि हम इन्हें कुछ सिखाने आये हैं, बल्कि यह समझें कि हम इनसे कुछ सीखने के लिए आये हैं।

देश को मूलधर्म की दीक्षा

हम भूमि-सेवा का यह मूलधर्म, जिसके साथ ये लोग चिपके हुए हैं, सारे हिन्दुस्तान को देना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि हिन्दुस्तान का प्रोफेसर, न्यायाधीश

और मन्त्री भी कुछ देर खेती का काम करें और बाकी बचे हुए समय में अपनी-अपनी वृत्ति कायम रखें। गाँव के लोग ऐसा ही करते थे। गाँव में झगड़ा होता, तो गाँव का कोई आदमी फैसला देता याने न्यायाधीश का काम करता था। परंतु वह बेकार नहीं रहता था। खेती भी करता था और साथ-साथ दूसरा भी काम। इसी तरह देश का हरएक मनुष्य अपनी-अपनी वृत्ति अलग-अलग होने पर भी भूमि-सेवा करेगा। यह महान् विचार, जीवन का मूलभूत विचार हम इस क्षेत्र में निर्माण करना चाहते हैं।

पेनुकम
१६-६-'५५

स्वशासन की स्थापना कैसे ? : ४४ :

[नवजीवन-मंडल प्रशिक्षण शिविरार्थियों के बीच दिया हुआ प्रवचन]

हमारी सेवा के बुनियाद में मुख्य वस्तु यह है कि आज दुनिया केन्द्रित शासन की पकड़ में जकड़ी हुई है। केन्द्रित शासन रखकर वह हिंसा से बचने के उपाय के बारे में सोच रही है। क्योंकि हिंसा से बुरे परिणाम अधिक और अच्छे परिणाम कम हो रहे हैं। जब विज्ञान बढ़ा नहीं था, तब हिंसा से यद्यपि हानियाँ होती थीं, तो भी कुछ तात्कालिक लाभ भी होते थे। लेकिन आज विज्ञान बढ़ा हुआ है, इसलिए हिंसा के शस्त्रास्त्र अत्याचारी हो गये हैं। वे मनुष्य के वश में नहीं रहे। इसीलिए दुनियाभर के राजनीतिज्ञ सोच रहे हैं कि कुछ ऐसी चीज निकलनी चाहिए, जिससे लड़ाइयाँ बंद हों। बीच में 'शांति की स्थापना कैसे हो !' इस बारे में सोचने के लिए यूरोप में एक परिषद् बुलायी गयी थी, जिसमें दुनिया के चार बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए थे, जो एक-दूसरे को अपना दुश्मन समझते थे और आज भी नहीं समझते, ऐसी बात नहीं है। उन्होंने काफी कोशिश की। उन्हें कुछ विश्वास हो गया, जो पहले नहीं था कि दोनों ओर शांति की इच्छा और आकांक्षा काफी है। इसलिए शांति स्थापित हो सकती है। हम सब जानते हैं और दुनिया भी जानती है कि इस तरह का वातावरण तैयार करने में

इस देश का कुछ हाथ रहा। फिर भी वह अल्प हाथ रहा, मुख्य हाथ तो विज्ञान का रहा है, जिसने मनुष्य के सामने एक बड़ी समस्या खड़ी की है। इसलिए कुछ-न-कुछ बातें चलेंगी, हालत सुधरती जायगी और शांति की राह निकलेगी।

अशांति का कारण केन्द्रित सत्ता

जब हम सारी दुनिया के इतिहास की ओर देखते हैं—जो लड़ाइयों से भरा हुआ है—तो उसमें ज्यादा समय शांति का ही दिखाई देता है। लेकिन वह लड़ाइयों से भरा इसलिए दीखता है कि शांति के काम मनुष्य-स्वभाव के अनुकूल होने से वह उसका ज्यादा बोलबाला नहीं करता। बातचीत करके शांति का कुछ रास्ता निकल पड़े, तो भी यह भरोसा नहीं कर सकते कि दस वर्ष के बाद भी शांति रहेगी। वास्तव में शांति तब तक स्थापित नहीं हो सकती, जब तक केन्द्रित शासन कायम है और हर राष्ट्र में केन्द्रित सत्ता चल रही है। अगर केन्द्रित सत्ता का अर्थ यह होता हो कि केंद्र में कुछ नीतिमान् लोग हैं, वे लोगों को सलाहभर देते हैं। लोग उनकी सलाहभर लेते हैं—लोग गाँव-गाँव में अपना काम चलाते हैं और जब उनकी सलाह की जरूरत हो तो वह लेते हैं, तब वे भी सलाह देते हैं। परंतु अपनी सलाह का कोई आग्रह नहीं रखते। किन्तु वह सलाह ज्ञान से युक्त और नीति से प्रेरित सलाह हो, तो सब लोग उसे ग्रहण करते हैं और न हो, तो नहीं ग्रहण करते—तो वह केन्द्रित शासन नहीं रहता, बल्कि विकेन्द्रित शासन का ही एक प्रकार बन जाता है।

जनता का राज्य नहीं आया

आज की हालत ऐसी है कि हम प्राचीन राज्य-परंपरा और इस हालत में हम कुछ ज्यादा फर्क नहीं देखते हैं। अकबर राजा हुआ, तो हिंदुस्तान सुखी हुआ। औरंगजेब राजा हुआ, तो हिंदुस्तान दुःखी हुआ। आज भी करीब-करीब वही हालत है। बावजूद इसके कि वोट लेने का एक नाटक या स्वांग चलता है। मान लीजिये कि जब पाकिस्तान ने तय किया था कि हम अमेरिका की सहायता लेंगे, उस समय अगर पण्डित नेहरू कहते कि हम बाहर से मदद तो नहीं लेंगे, पर हमारी शक्ति कम है, इसलिए शस्त्रास्त्र बढ़ायेंगे, तो हिन्दुस्तान में बहुत-से

लोग उसे पसन्द करते और भारत में शस्त्रास्त्रों का जोर-शोर चलता। लेकिन उन्होंने कहा कि पाकिस्तान ने यह तय किया है, तो उससे हमारा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। हम पहले जैसे थे, वैसे ही रहेंगे। हम शान्त और आत्मनिर्भर रहेंगे, तो लोगों में भी विश्वास आयेगा और वे शान्त रहेंगे। अभी गोवा के मामले में पण्डित नेहरू प्रस्ताव करते कि 'गोवा पर हमला करना चाहिए', तो हिन्दुस्तान के बहुत-से लोग उसका समर्थन करते और आज हिन्दुस्तान में चारों ओर युद्ध की बातें चलतीं। फिर हमारे जैसे मूर्ख लोग कहते रहते कि यह नीति ठीक नहीं, तो लोग हमारी बात सुन लेते, पर हालत वैसी ही चलती रहती।

आज हम कह सकते हैं कि हम भाग्यवान् हैं, क्योंकि हमें पण्डित नेहरू जैसे विवेकी नेता मिले हैं। ऐसे ही अकबर के जमाने में लोग अपने को भाग्यवान् समझते और कहते थे कि हमें अच्छा बादशाह मिला है। जहाँ अकबर के जमाने में लोग भाग्यवान् थे, वहीं औरंगजेब के जमाने में कंबख्त बन गये। इसी तरह दूसरे किसीके नेतृत्व में अभागे बनेंगे। इसलिए कोई केन्द्रित सत्ता हो, जिसके हाथ में सैन्य-शक्ति हो, वही सारे देश के लिए योजना बनाये, यह बात ही गलत है। देश में शान्ति रखने या अशान्ति में डुबोने की ताकत केन्द्रीय शासन में रहती है और लोग वैसे-के-वैसे मूर्ख रह जाते हैं। फिर उनके नेता दावा करते हैं कि हमने जो किया, उसे जनता का समर्थन प्राप्त है। हम हिटलर को तानाशाह कहते हैं, पर वह भी दावा करता था कि मैं लोगों द्वारा चुना हुआ हूँ—बहुत अधिक वोटों से चुना हुआ हूँ। आज दुनिया की हालत ऐसी है कि बड़े-बड़े लोगों के हाथों में सत्ता तथा सेना रहती और वे लोगों पर शासन चलाते हैं। अमेरिका का राष्ट्रपति रूजवेल्ट चार बार चुनकर आया। इस तरह आज भी लोगों और सरकार के बीच पाल्य-पालक संबंध है, जैसा कि राजाओं के जमाने में था। हिन्दुस्तान के विभिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न कानून बनते हैं। बंबई और मद्रास में शराबबंदी कानून लागू है, तो बिहार-बंगाल में खुलकर नशाखोरी चल रही है। और काशी नगरी तो निशा में डूबी हुई है। गंगा-स्नान और मद्य-पान—यह वहाँ का कार्यक्रम है। अब क्या यह कहा जा सकता है कि बंबई और मद्रास का लोकमत शराबबंदी के अनुकूल और बिहार-बंगाल

तथा काशी का लोकमत शराबबंदी के प्रतिकूल है ? स्पष्ट है कि इसमें लोकमत का कोई सवाल ही नहीं है। वहाँ इस मामले में भाग्यवान् शासक मिले हैं और यहाँ नहीं मिले !

स्वशासन के दो पहलू

हमें यह समझना होगा कि जनता को न सिर्फ 'सुशासन' के लिए, बल्कि 'स्वशासन' के लिए तैयार करना है। स्वशासन के दो पहलू हैं : (१) विकेन्द्रित सत्ता, याने सारी सत्ता गाँव-गाँव में बँटी होनी चाहिए और गाँव के लोगों को गाँव का कारोबार खुद चलाना चाहिए और (२) हम हिंसा में शक्ति हरगिज नहीं मानते, प्रेम और अहिंसा में ही मानते हैं—इस तरह का शिक्षण, इस तरह का मानसशास्त्र और तत्त्वज्ञान लोगों में चलाना। अपना राज्य खुद चलाने की पहली बात में जहाँ तक गाँव का राज्य चलाने से ताल्लुक है, सारा कारोबार एकमत से चलाया जायगा, पक्षभेद न रहेंगे। गाँव में इक्कीस साल से उपर के सभी लोगों की एक साधारण समिति (जनरल बॉडी) बनेगी। उन्हीं लोगों की तरफ से एक कार्यकारिणी समिति (एक्जीक्यूटिव कमेटी) चुनी जायगी, जिसमें पाँच, सात या दस लोग होंगे। वह कार्यकारिणी समिति गाँव का कारोबार चलायेगी। पर उसके प्रस्ताव एकमत-से होंगे, तभी काम चलेगा। ग्रामसभा के हाथ में उतनी कुल-की-कुल शक्ति होनी चाहिए, जितनी एक स्टेट के हाथ में होती है। गाँव में बाहर से कौन-सी चीजें लाना, कितनी लाना और गाँव से कौन-कौन-सी चीजें बाहर भेजना, किन चीजों पर रोक लगाना आदि सारी शक्ति गाँव के हाथ में होनी चाहिए। स्वशासन का यह पहला अंग है। दूसरा अंग यह है कि गाँव में जितने लोग होंगे, वे तय करेंगे कि हम जहाँ तक हो सके, अपनी आवश्यकताओं के विषय में स्वावलम्बी बनेंगे। मान लीजिये कि गाँव की एक ग्राम-सभा और कार्यकारिणी समिति बनी, पर गाँववालों ने तय किया कि हम सिर्फ खेती ही करेंगे और बाकी सारी चीजें बाहर से, यन्त्र की बनी मँगवायेंगे, तो 'ग्रामराज्य' न होगा। इस तरह अनुशासन और स्वावलम्बन, दोनों मिलकर ग्राम-सत्ता होती है। दोनों मिलकर स्वशासन का एक विभाग होता है।

अहिंसाधिष्ठित तत्त्वज्ञान, शिक्षण-शास्त्र, मानस-शास्त्र

स्वशासन का दूसरा विभाग यह है कि लोगों के तत्त्वज्ञान, शिक्षणशास्त्र और मानसशास्त्र में अहिंसा का सिद्धान्त दाखिल होना चाहिए। 'आत्मा से देह भिन्न है और देह से आत्मा भिन्न। हम देहस्वरूप नहीं, आत्मस्वरूप हैं। इसलिए इस देह पर कोई हमला करे, तो हम उसकी परवाह न करेंगे। कोई इस देह को तकलीफ दे, तो इसलिए हम उनके वश न होंगे' यह हमारा तत्त्वज्ञान होगा। हमारा मानसशास्त्र यह होगा कि 'एक-दूसरे के साथ व्यवहार करते समय हम कुछ नियमों का पालन करेंगे। इनमें मुख्य नियम यह होगा कि हम व्यक्तिगत मन को गौण समझेंगे और सामूहिक बुद्धि को प्रधान स्थान देंगे।' ध्यान रहे कि मन व्यक्तिगत होता है। हरएक मनुष्य की अलग-अलग वासनाएँ होती है, लेकिन बुद्धि सामूहिक होती है। क्योंकि एक चीज किसीकी बुद्धि को जँचती है और वह ठीक है, तो दूसरे की भी बुद्धि को जँचती है। *इसलिए हम व्यक्तिगत मन को स्थान नहीं* देंगे और सामूहिक बुद्धि का निर्णय प्रमाण मानेंगे। हमारे शिक्षणशास्त्र में, नीतिशास्त्र में और व्यवहार में यह बात रहेगी कि 'कोई किसीको मारेगा, पीटेगा या धमकायेगा नहीं। लेकिन सिर्फ मारने, पीटने और धमकाने से ही हिंसा पुष्ट होती है, ऐसी बात नहीं, बल्कि लालच दिलाने को भी हम हिंसा में समाविष्ट करते हैं। इसलिए माँ-बाप बच्चों को न तो मारेंगे-पीटेंगे और न लोभ ही दिखायेंगे। इसी तरह गुरु भी स्कूल में वैसा ही व्यवहार करेंगे। आजकल इनाम वगैरह की जो बात चलती है, वह न चलेगी, बल्कि दूसरे प्रकार की बात चलेगी। आज भौतिक लोभ का इनाम होता है। इस तरह शारीरिक या भौतिक दण्ड और शारीरिक या भौतिक लोभ, दोनों चीजें हमारे शिक्षणशास्त्र में, व्यवहार में और नीतिशास्त्र में नहीं रहेंगी।' बच्चे-बच्चे को यह समझाना होगा कि तुम्हें किसीसे डरना नहीं है और न लालच में ही पड़ना है। अगर माता और गुरु अपने बच्चे को ऐसी तालीम देंगे, तो वे बच्चे अहिंसक समाज-रचना के स्तंभ होंगे।

कुजेन्द्री
२४-१-'५५

यहाँ कई ग्रामदान मिले हैं। अब आगे नव-निर्माण का काम चलेगा। इस प्रसंग में मुख्य बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि अभी तक यहाँ जो काम हुआ और जो ग्रामदान मिले, वह सब जनशक्ति के जरिये ही बन पाया। दूसरी कोई शक्ति यहाँ काम करती हमने तो नहीं देखी। ग्राम-ग्राम दूसरे कोई पहुँच ही नहीं सकते। अतः उन-उन ग्रामों की शक्ति के अलावा दूसरी शक्ति काम करती हो, यह सवाल ही नहीं उठता। इससे आगे भी यहाँ जो काम होगा, उसमें चाहे पचासों संस्थाओं और सैकड़ों व्यक्तियों की मदद मिले, लेकिन कुल काम का रंग जनशक्ति का ही रहेगा। उत्पादन बढ़े, लोग सुखी हों, लोगों का जीवन-स्तर उठे, ये सब बातें हमें करनी हैं और की जायँगी। लेकिन हमें सब काम जनशक्ति के आधार पर ही करने हैं।

दूसरी बात यह है कि यहाँ जो ग्राम-दान मिले हैं, उनमें बहुत ज्यादा अर्थशास्त्रीय विचार न तो समझाया गया और न लोगों ने समझा ही है। उन्हें यह सादी-सी बात समझायी गयी कि एकत्र काम करने और सब कुछ बाँटकर खाने में क्या-क्या लाभ हैं। हमने इन्हें समझाया कि सुख बाँटने से बढ़ता और दुःख बाँटने से घटता है। हर कोई चाहता है कि सुख बढ़े और दुःख घटे। दोनों का एक ही उपाय है : 'बाँटते चले जाओ!' परमेश्वर की ऐसी कृपा हुई कि उसने हमारे शब्दों में ताकत डाली और लोगों के हृदय में भी उसे ग्रहण करने की ताकत भरी, जिसके फलस्वरूप यह काम संभव हो पाया।

विष्णु-कृपा के साथ लक्ष्मी का अनुग्रह भी

यह तो केवल नैतिक उत्थान का एक काम हुआ। नैतिक दृष्टि से समझानेवालों ने ही इसे समझाया और समझनेवालों ने समझा। इसलिए इसके आगे जो निर्माण-कार्य होगा, उसमें इस बात का मुख्य खयाल रखना होगा कि लोगों का नैतिक चिंतन-मान ऊपर उठना चाहिए। जो साधारण अर्थशास्त्रीय

विचार माने गये हैं, पर जो अक्सर लोभ के विचार होते हैं, उन्हें हम महत्त्व नहीं देते। एक परिवार में हम जो न्याय लागू करते हैं, उसे ही हमें गाँव में लागू करना है और यह जो काम चलेगा, उसमें भी वही न्याय लागू होगा। इसलिए लोगों को उत्तेजन देने के आज तक के मान्य तरीकों को हम नहीं मानते। हमारे उत्साह की बुनियाद आध्यात्मिक ही होगी, इसी पर यह काम खड़ा हुआ है। इसलिए हमें यह देखना होगा कि लोगों की नैतिक प्रवृत्ति दिन-दिन बढ़े और सतत त्याग में ही उन्हें आनन्द महसूस हो। फिर उनके हाथ में ज्यादा पैसे जाते हैं या नहीं, यह सवाल महत्त्व का नहीं है। हम लक्ष्मी का अनुग्रह जरूर चाहेंगे, लेकिन वह विष्णु-कृपा के साथ ही। लक्ष्मी और पैसे में हम उतना फर्क मानते हैं, जितना सुर और असुर में। पैसे को हम दानव समझते हैं और लक्ष्मी को देवता। आज एक अजीब आभास निर्माण हुआ है, जिसे वेदान्त में 'अध्यास' कहते हैं। याने पैसे पर लक्ष्मी का अध्यास हुआ है। इससे बढ़कर भ्रम क्या हो सकता है ? इससे बढ़कर माया का दृष्टान्त क्या हो सकता है ? इसलिए लोगों की जेब में ज्यादा पैसे पड़ें, यह हमारा उद्देश्य नहीं। हम चाहते हैं कि उनमें भक्ति और आत्मनिष्ठा बढ़े।

जन-शक्ति और नैतिक उत्थान अभिन्न

इस तरह जन-शक्ति और नैतिक उत्थान, इन दो बातों को सामने रखकर हमें काम करना है। मैंने ये दो बातें नाहक अलग-अलग आपके सामने रखीं। अधिक गहराई से देखने पर मालूम होता है कि दोनों मिलकर एक ही वस्तु होती है। जन-शक्ति नैतिक शक्ति से भिन्न कोई शक्ति नहीं हो सकती। बाकी की जो सारी शक्तियाँ हैं, वे भिन्न-भिन्न वर्गों की शक्तियाँ हो सकती हैं। लेकिन जो साधारण शक्ति सब लोगों में, छोटे-से-छोटे और बड़े-से बड़े में मौजूद है, वह नैतिक शक्ति ही हो सकती है। इसलिए जनशक्ति और नैतिक उत्थान, दोनों को अलग-अलग चीज मानने का कोई कारण नहीं, दोनों मिलकर एक ही भक्ति-मार्ग बनता है।

पुजेन्द्री
२४-३-'५५

एक प्रसिद्ध रचनात्मक कार्यकर्ता ने हमें पत्र लिखा कि आपको सैकड़ों गाँव मिल गये, अब कहाँ तक लोभ बढ़ाओगे ? कितना घूमोगे ? अच्छे काम का भी लोभ अच्छा नहीं होता। इसलिए अब जो कुछ मिला है, उसे मजबूत बनाओ और वहाँ रचनात्मक कार्य शुरू कर दो। नहीं तो जैसे स्वराज्य से रखी गयी आशा सफल नहीं हुई, वैसे ही इस आंदोलन का भी हाल होगा। लोगों ने आपको भूमिदान दिया, पूरा-का-पूरा गाँव दिया। याने एक तरह का सहयोग का वचन आपने प्राप्त कर लिया। हमारे काम के लिए यह बहुत अच्छा रहेगा। अगर हम यहाँ बैठ जायँ, कुछ चित्र-रचना का काम करें, तो बहुत सुंदर चित्र बनेगा। किन्तु उनको शायद मालूम नहीं कि इसी दृष्टि से हम सोच रहे थे और अब कुछ इंतजाम हो गया है।

हम सर्वत्र रचनात्मक काम करना नहीं चाहते, नमूने का काम करना चाहते हैं। जहाँ हमें पूरा सहयोग मिलेगा, वहीं ऐसा काम करेंगे। नमूनेवाला काम जहाँ करेंगे, उसका लाभ, उसका अनुकरण करने का काम दूसरी संस्थाओं और और सरकार का भी है। निर्माण-कार्य का हम कोई ठेका लेना नहीं चाहते। समाज की विभिन्न संस्थाएँ और सरकार ही ये काम करेंगी। नमूना रूप कुछ काम हम करेंगे, जो हमारा अनुभव है, उसके अनुसार। उतनी ताकत उसमें लगाकर बाकी अपनी ताकत घूमने में लगायेंगे।

नवीन विचार-प्रचार के लिए संचार

हमारा एक विचार है, जिसे इतिहास के निरीक्षण और चिंतन से भी बल मिला है। वह यह है कि जब कोई जीवन का विचार सामने आता है, तो कुछ लोगों को उसकी अनुभूति होती है। लोग उसका विचार करते, आचरण करते हैं और उसके प्रचार के लिए बाहर निकल पड़ते हैं। बिल्कुल पुराना दृष्टांत देना हो, तो वैदिकों का देना पड़ेगा। जीवन का विचार उन्हें जहाँ सूझा, वहीं उसके प्रचारार्थ

वे बाहर निकल पड़े। इसलिए 'ऐतरेय' में एक प्रसिद्ध श्रुति है, जो सबको आज्ञा देती है कि चलो रे चलो, सब चलो : 'चरैवेति चरैवेति।' यह भी कहा गया है कि 'अगर तुम बैठे रहोगे, तो तुम्हारा भाग्य भी बैठ जायगा और चलोगे, तो तुम्हारा भाग्य भी चलेगा।' यह भी कहा है कि 'सोओगे तो कलियुग में रहोगे, बैठोगे तो द्वापरयुग में, खड़े रहोगे तो त्रेतायुग मे और चलोगे तो कृतयुग में, सत्ययुग में आ जाओगे।' ये आदेश देकर वे आचारवान्, विचारवान्, निष्ठावान् लोग निकल पड़े और न सिर्फ भारत में, बल्कि सारी दुनिया में उन्होंने विचार का प्रचार किया। उनका वह संचार सैकड़ों वर्ष तक चला—हजारों वर्ष तक चला।

उसके बाद बुद्ध भगवान् को एक विचार सूझा और उन्होंने अपने सब साथियों एवं शिष्यों को आदेश दिया कि भिक्षुओ, निकल पड़ो—'बहुजन-हिताय बहुजनसुखाय'—निकल पड़ो, घूमो। उन्होंने अकेले घूमने का भी आदेश दिया, ताकि उसमें से लोग अलग-अलग स्थान पर चले जायें और अधिक गंभीर और व्यापक प्रचार करें। यही काम महावीर ने भी किया। यही आदेश उसने दिया। परिव्राजक पुरुष और परिव्राजिका स्त्रियाँ भी निकल पड़ीं। उसने कहा 'परिव्रज्या का अधिकार जैसे पुरुषों को है, वैसे स्त्रियों को भी है।' संभव है कि स्त्री-पुरुषों को परिव्रज्या का आध्यात्मिक समान अधिकार देनेवाला पहला पुरुष महावीर हुआ। आज भी जैनों में कुछ स्त्रियाँ परिव्राजिका बनकर घूमती हैं, जैसे पहले घूमती थीं। यह ठीक है कि इतने वर्ष तक जो चेतना थी, वह आज नहीं है—कुछ कम हुई है, फिर भी इतिहास में क्या हुआ होगा, इसका अंदाजा हम कर सकते हैं।

शंकर और रामानुज को भी यही करना पड़ा। वे और उनके शिष्य भी देशभर घूमे, यह भारत के इतिहास में प्रसिद्ध है। यही संदेश ईसा और मुहम्मद पैगम्बर ने अपने प्रथम शिष्यों को दिया। उनके अनुयायी भी सतत घूमते रहे और दुनिया के कई देशों में उन्होंने विचार का प्रचार किया। तात्पर्य यह कि जहाँ जीवन में नवीन विचार निर्माण होता है, वह केवल एक व्यक्ति, चंद व्यक्तियों में सीमित नहीं रह सकता। वह अखिल मानव के लिए विचार होता है, चाहे किसीको भी सूझा हो।

हमें सर्वोदय का विचार मिला है

हम लोगों को एक नया विचार मिला है, ऐसा हमे भास होता है। यह इस अर्थ में नया विचार नहीं कि अपने पूर्वजों को या दुनिया में किसीको भी नहीं सूझा। पर इस दृष्टि से नया है कि आज की परिस्थिति में जिस रूप में वह हमें सूझा, उस रूप में हमारे पूर्वजों को न सूझा था। इस तरह का सामूहिक सर्वोदय का विचार हमें मिला है। चंद लोगों ने—हम नहीं कहते कि सैकड़ों लोगों ने, फिर भी काफी लोगों ने—सतत वर्षों तक प्रयोग और अनुभव भी किया है। हमारा दिल कहता है कि यह समय हम लोगों के लिए बैठने का नहीं है। ऐसे लोगों का, जिन्हें यह विचार मिला, यह कर्तव्य, यह धर्म होता है कि मानवता का संदेश मानवता को देने के लिए निरहंकार होकर निकल पड़ें। हम कबूल करते हैं कि जगह-जगह ऐसे आश्रम होने चाहिए, वहाँ प्रयोग चलने चाहिए, वे एक नमूने के हों। पर बाकी सबको घूमना चाहिए। विश्राम के लिए आश्रम में आना चाहिए। जहाँ आश्रम मे वे विश्राम के लिए आयेंगे, तो वहाँ शरीर-परिश्रम और मानसिक विचार-विनिमय भी करेंगे, तो उन्हें बल मिलेगा। घूम-घूमकर जो अनुभव उन्होंने हासिल किया होगा, उसे वे अपने साथियों को देंगे। किन्तु इस तरह के नमूने के रचनात्मक कार्य, जो आश्रम मे हों, वे ही करेंगे। उनके अलावा बाकी सब लोगों को सतत घूमना चाहिए, तभी विचार को समाधान मिलेगा।

मैंने जो 'विचार को प्रेरणा का समाधान' कहा, उसका अर्थ समझना होगा। संस्कृत में 'विचार' एक ऐसा सुंदर शब्द है कि उसका मुसाफिरी के साथ, परिक्रमा के साथ संबंध जोड़ा गया है। 'चर्' ऐसी अद्‌भुत धातु है कि आचार, विचार, प्रचार, संचार याने कुल मिलाकर के एक पूर्ण प्रक्रिया हमारे हाथ में आ जाती है, जिससे जीवन-कार्य किस तरह फैलता है, इसकी कल्पना आती है। हम 'चारित्र्य' कहते हैं, सत्‌शील को और 'चरित्र' कहते हैं, सारे जीवन को। इसे अंग्रेजी मे character कहते हैं। हम मनुष्य की चाल कैसी है, यह पूछते हैं। इस तरह नैतिक अर्थ के जितने शब्द हमारी भाषा में हैं, वे बहुत सारे 'गति-

सूचक' हैं। यहाँ तक कि इस विषय में मुझे गति नहीं है यानी इस विषय का मुझे ज्ञान नहीं है।

विचार मनुष्य को घुमाता है

जब किसी विचार का उदय होता है, तो वही मनुष्य को चलाता, घुमाता और प्रेरणा देता है। स्वस्थ बैठने नहीं देता, चारों ओर व्यापक प्रचार हुए बगैर उसका समाधान नहीं होता। यह कहना अधिक सत्य होगा कि वह विचार ही मनुष्य को घुमाता, चलाता और हिलाता है—यह नहीं कि मनुष्य उस विचार को लेकर घूमता है। इसीलिए हमें भान ही नहीं होता कि हम घूमते हैं, बल्कि यही जीवन मालूम होता है। यहाँ तक कि जहाँ दो दिन रहने का मौका आता है, वहाँ अच्छा नहीं लगता। इस तरह विचार की प्रेरणा काम करती है। हमारा विश्वास है कि जो सर्वोदय का विचार, अहिंसात्मक जीवन का विचार हमें मिला है, उसकी प्रेरणा हमें घुमायेगी, जो अत्यन्त अपरिहार्य है। हमारा यह भी विश्वास है कि परिव्रज्या की दीक्षा हमें मिली है और ऐसी मंडली जितनी संख्या में बाहर निकल पड़ेगी, उतना ही यह कार्य बढ़ेगा।

संचार की महिमा

इसके अलावा और एक विचार है और वह यह है : हिंदू-धर्म में जो जीवन-पद्धति हमारे सामने रखी गयी है, उसमें यह देखना होगा कि जिस किसीको एक चीज का अनुभव है, उसे एक जगह रहने की मनाही है। जब तक अनुभूति नहीं होती, प्रयोग नहीं होता और चित्त में आसक्ति बनी रहती है, तब तक वह एक स्थान में रहकर काम कर सकता है। लेकिन कुछ अनुभव आया, चित्त की अनुभूति हुई, चित्त स्थिर हुआ, तो उसके बाद उसे सतत घूमना ही चाहिए। हमारी जीवन-पद्धति और हमारा धर्म हमें ऐसा ही आदेश देता है। स्थितप्रज्ञ के, भक्त के और ज्ञानी के लक्षणों में स्पष्ट ही 'अनिकेतः स्थिरमतिः' कहा है। जो चलता रहता है, जिसका घर नहीं है, उसकी बुद्धि नहीं चलती है, बल्कि स्थिर रहती है—ऐसा वर्णन है। हम स्थितप्रज्ञ के लक्षण रोज बोलते हैं। उसमें 'पुमांश्चरति निःस्पृहः' कहा है। याने जो रोज घूमता रहता है। इसका यह अर्थ नहीं कि

स्थितप्रज्ञ के पीछे यह विधान है कि उसे घूमना ही चाहिए। लेकिन एक संकेत किया गया है कि मनुष्य के जीवन में घूमना एक अंग है। उससे उसे अनासक्ति का अनुभव होता है और समाज में ज्ञान का प्रचार होता है।

कुजेन्द्री
२५-६-'५५

मेरा जन्म सम्पत्ति तोड़ने के लिए ही : ४७ :

[कोरापुट जिले के कार्यकर्ताओं के बीच दिया हुआ प्रवचन]

सम्पत्तिदान का विषय सिर्फ कोरापुटवालों के लिए नहीं, बल्कि सबके लिए है। लेकिन यहाँ जो बात कही जायगी, वह सब दुनिया में 'ब्राडकास्ट' हो जायगी। (रेडियो वगैरह के जरिये नहीं, दुनिया में ऐसी कोई योजना कार्य करती है, जिससे हमारी बातें ब्राडकास्ट हो जायँगी।) लेकिन मुझे ब्राडकास्ट की चिंता कम, बल्कि 'डीपकास्ट' की चिन्ता अधिक रहती है। यहाँ सम्पत्तिदान का जो प्रयोग चलेगा, उसका आरम्भ गहरा होगा। मैंने यह सवाल किया है कि भूदान देनेवाले और भूदान-यज्ञ में शरीक होनेवाले अगर दस होंगे, तो सम्पत्तिदान-यज्ञ में शरीक होनेवाले पचास होने ही चाहिए। कारण भूदान तो वह देगा, जिसके पास भूमि हो। लेकिन सम्पत्तिदान वह देगा, जो खाता है। न खानेवाला मनुष्य आपने कोई देखा है ? इसलिए यह माँग हरएक से होगी। चाहे कोई गरीब हो या अमीर, भोगने के पहले एक हिस्सा दुनिया के लिए छोड़े और बाकी का भोगे। यह कोई नयी बात हम नहीं कह रहे हैं। हिन्दू, मुसलिम, ईसाई, सभी धर्मों के आचार्यों ने यही बात कही है। लेकिन उन्होंने एक विशेष उद्देश्य के लिए कहा था। इसलिए वह सीमित रहा। याने मन्दिर, मस्जिद, उपासना या अध्ययन-अध्यापन के लिए उसका उपयोग किया गया।

करुणा को स्वामिनी बनाना है

उनके यहाँ उसका या तो पान्थिक धर्म-कार्य में विशेष उपयोग होता था 'भूतदयात्मक' काम में, जैसे विधवा, अनाथ आदि को मदद देना आदि में।

हम सिर्फ भूतदया की साधारण-सी नदी बहाना नहीं चाहते, भूतदया का समुद्र बनाना चाहते हैं। हम करुणा का राज्य चाहते हैं, जिसमें करुणा स्वामिनी हो और बाकी सब शक्तियाँ दासी हों। आज ऐसा है कि दूसरी शक्तियाँ राज्य कर रही हैं और उनके राजत्व में करुणा दासी के तौर पर काम कर रही है। ये लोग करुणा का राज्य नहीं बना सकते हैं। इसलिए साधारण अनाथ, विधवा आदि की मदद करना मात्र हमारा सीमित उद्देश्य नहीं, बल्कि समाज का परिवर्तन करना और मालकियत मिटाने की बात लोगों के दिलों में बैठाना ही हमारा काम है। हम यह विचार फैलाना चाहते हैं कि 'मेरे पास जो सपत्ति है, वह सबकी है—सबके लिए है, जिसमें मैं भी आ गया और दूसरों के पास जो सम्पत्ति है, वह सबकी है—जिनके पास है, उनकी भी है और मेरी भी है।' इससे समाज में किसी प्रकार की कोई कमी ही न रहेगी। यह 'दारिद्र्य का बँटवारा' नहीं, 'स्वामित्व-विसर्जन' और 'व्यक्तित्व का समाज के लिए समर्पण' है और वह भी स्वातन्त्र्य-पूर्वक, स्वेच्छापूर्वक, जबरदस्ती से नहीं।

संपत्तिदान क्रांतिकारी कार्य

मेरा यह हाथ मेरे सारे शरीर की सेवा करने में अपनी सार्थकता मानता है और उसमें उसे धन्यता महसूस होती है। हाथ यह नहीं कहता कि मैं अपने लिए ही काम करूँगा, बल्कि वह पाँव की भी सेवा करता है। पाँव में काँटा धँसने पर उसे उसको निकालने की उत्सुकता होती है। उसके मन में किसी प्रकार की उच्चता-नीचता की कल्पना नहीं होती। हमारा हाथ आँखों में या पैरों में कुछ मैल हो, तो उसे भी निकालने, साफ करने के लिए पहुँच जाता है, वह अपने को उनसे अलग महसूस नहीं करता। वह जानता है कि मुझे काटकर इस शरीर से अलग रखा जायगा, तो मैं खतम हो जाऊँगा। मेरी सारी शोभा, सारी जीवन-शक्ति इसीमें निहित है कि मैं समूह के साथ जुड़ा हुआ हूँ। इसलिए समाज में हर व्यक्ति की तरफ से अखंड नित्य दान का प्रवाह बहता रहे, हर व्यक्ति के घर में समाज की बैंक हो—यह एक बिलकुल ही नया विचार इसमें है।

पुराने फंड वगैरह जो इकट्ठे किये जाते थे, उनमें और इसमें बहुत बड़ा फर्क

है, कोई साम्य ही नहीं है। फिर भी दान आदि के जरिये पुराना जो धर्म-कार्य चला, उसमें और इसमें जो फर्क है, उसे समझाना जरूरी था, इसलिए उसे आज समझाया। सारांश, यह साम्प्रदायिक दान-धर्म नहीं है। इसके जरिये स्वर्ग में लाभ मिलनेवाला हो तो मिले, पर हमें उसका कोई आकर्षण नहीं है। इसी तरह पुराने भूतदयात्मक धर्म जैसा भी यह नहीं है, यद्यपि 'भूतदया' का काम इसमें सहज ही हो जाता है। इसमें सारे समाज को एक परिवार बनाने की बात है। यहाँ संपत्तिदान का जो काम चलेगा, उसके जो दानपत्र मिलेंगे, वे तो हमारे हाथ मे रहेंगे और सम्पत्ति हर घर में रहेगी।

सम्पत्तिदान का एक हिस्सा कार्यकर्ताओं के लिए

सम्पत्तिदान का उपयोग सेवकों के लिए प्रथम क्यों होना चाहिए? इस बारे में मैंने काफी समझाया है। मैंने कहा है कि इस कार्य का प्रचार ही जिन कार्यकर्ताओं के जरिये होता है, अगर वे कार्यकर्ता ही खड़े नहीं होते, तो यह कार्य ही खतम हो जाता है। फिर भी एक भाई के मन में यह शंका आयी कि इससे समाज को यह लगेगा कि कार्यकर्ताओं के लिए ही यह कोई योजना बनायी जा रही है, इससे अधिक इसमें क्या है? अवश्य ही इस शका की भी सफाई हो जानी चाहिए। बात यह है, हम चाहते हैं कि हर घर से छठा हिस्सा हासिल हो और अक्सर हम एक गाँव से एक से अधिक कार्यकर्ता की माँग नहीं करेंगे। मान लीजिये, पचास घर का गाँव हो, तो उन पचास घरों से हम आशा करेंगे कि वे कुल मिलकर एक कार्यकर्ता के जीवन की जिम्मेवारी उठायें, तो उनके दिये हुए दान का पचासवाँ हिस्सा ही उसके लिए काफी हो जायगा और हम तो छठा हिस्सा माँग रहे है। इस तरह जाहिर है कि हम जो हिस्सा माँगते हैं, उसका बहुत ही थोड़ा अंश कार्यकर्ताओं के लिए अपेक्षित है। फिर भी माना कि इससे हम कार्यकर्ताओं को कुछ दे रहे हैं, तो भी इसमें किसी प्रकार के आक्षेप की गुंजाइश नहीं है।

शरीर-श्रम में असमर्थ ही 'गरीब'

इस तरह गाँव में जो सम्पत्ति-दान मिलेगा, उसका एक हिस्सा कार्यकर्ताओं—

ग्राम-सेवकों के परिवार के पोषण के लिए खर्च होगा और बाकी का बचा हुआ सारा हिस्सा गाँव के गरीबों के लिए खर्च किया जायगा। आप पूछ सकते हैं कि जब ग्राम का परिवार बनेगा, तो ये गरीब बचेंगे कौन, जिनकी कि हमें सेवा करनी होगी? किन्तु हम आपको समझाना चाहते हैं कि हमारी 'गरीब' की व्याख्या क्या है। हमारी दृष्टि से गरीब तो वे हैं, जिन्हें तालीम प्राप्त नहीं है, जिनमें शक्ति या बुद्धि कम है। गाँव-गाँव में ऐसे जो लोग हों, हमारी दृष्टि में वे गरीब हैं। इसी तरह हजार-हजार रुपयों की सम्पत्ति रखते हुए भी जिन बेचारों में शरीर-परिश्रम करने की ताकत न हो, उन्हें हम गरीब कहते हैं। सारांश, शरीर-शक्तिहीन गरीब, बुद्धिशक्ति से दुर्बल गरीब, ऐसे अनेक प्रकार के गरीब होते हैं। इस प्रकार कुदरत से पैदा किये हुए और समाज द्वारा पैदा किये हुए गरीबों की हमें चिन्ता करनी पड़ेगी। जहाँ शरीर-श्रम-प्रधान समाज बनेगा, वहाँ गरीब वह गिना जायगा, जो किसी कारण शरीर-श्रम करने में समर्थ न हो। किन्तु शरीर-परिश्रम करने में असमर्थ होते हुए भी यदि किसीकी बुद्धि विकसित हो गयी हो, तो उसकी गरीबी मिटी ही समझिये। लेकिन जिसकी बुद्धि का विकास ही न हुआ हो और जिसमें शरीर-श्रम की शक्ति भी न हो, वह मनुष्य पूरी तरह से गरीब और मदद का पात्र है। ऐसे सब गरीबों के लिए ग्राम में जो चीज पैदा होगी, उसका उपयोग किया जायगा।

घर-घर में अनाज की बैंक

गाँवों में घर-घर निज की बैंक रहेगी और जो सामूहिक जगह होगी, वहाँ सिर्फ हर घर में कितनी चीजें बची हुई हैं, इसका हिसाब भर होगा। याने हर मनुष्य ने ग्राम के लिए जो दान दिया, उसका कितना हिस्सा उसके घर है, इसका हिसाब होगा। लोग हमसे पूछते हैं कि आप अनाज का हिस्सा लेंगे, तो वह हिस्सा गाँव में किसी जगह इकट्ठा करेंगे या नहीं? तो हम जवाब देते हैं कि नहीं करेंगे। सिर्फ एक जगह कागज का ढेर जमा रहेगा और उसमें लिखा रहेगा कि फलाने घर में हमारा दस सेर अनाज है। फलाने घर में बीस सेर है और फलाने घर में पचीस सेर। ग्राम-समिति को अगर दस सेर अनाज की जरूरत पड़े, तो

वह गाँववालों से पूछेगी कि इस समय फौरन दस सेर कौन दे सकता है, तो कोई मनुष्य दे देगा। फिर लिखा जायगा कि उसके घर में जो दस सेर अनाज था, वह खतम हो गया। इस तरह हमें अनाज के रक्षण की किसी प्रकार की कोई चिंता न करनी पड़ेगी। अगर किसीके घर चूहे कुछ अनाज खायेंगे, तो हमारा नहीं, उसके घर का खायेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि हमारा अनाज चूहे की शक्ति के बाहर रहेगा।

फंड इकट्ठा करनेवालों का नगद पर ज्यादा आधार होता है। किसीने पाँच हजार रुपये का दान दिया, तो वह हाथ में आने पर समझा जाता है कि उतना दान मिला। लेकिन हमें तो नगद में आनंद नहीं, उधार मे ही आनंद है। हम आपको दस सेर अनाज देंगे, इस तरह का कागज ही हमें खुश कर देता है। इसके बदले अगर कोई हमारे सामने दस सेर अनाज ला रखे, तो हम कहेंगे कि यह कृपा बस कीजिये। हम नगद नहीं, उधार चाहते हैं। जब हमें जरूरत पड़ेगी, तब हमारी चिट्ठी आपके पास आयेगी। फिर आप उसके अनुसार काम करें। अभी महाराष्ट्र से एक भाई का पत्र आया है, जो एक महान् तत्त्वज्ञानी है। उन्होंने संपत्तिदान में अपना एक हिस्सा दिया है। उन्होंने लिखा है कि 'आपके पचीस सौ रुपये हमारे पास हैं। आपने कहा है कि संपत्तिदान देनेवाला दान का एक-तिहाई हिस्सा अपनी इच्छा के अनुसार खर्च कर सकता है। इसलिए हम आठ सौ रुपये अपनी इच्छा के अनुसार खर्च करेंगे और उसका हिसाब आपके पास पेश करेंगे। फिर बारह सौ रुपये एक कार्यकर्ता के लिए देंगे, सौ रुपये महीना। हमने कोई फलाना कार्यकर्ता चुना है, जो अच्छा कार्यकर्ता है, तो हमारी तरफ से आप उसके लिए उतना पैसा दे सकते हैं। याने अगर आपको पसंद हो, तो आपकी आज्ञा के अनुसार हम उसे उतना देंगे। चार सौ रुपये हमने साधन-दान के लिए रखे हैं, जिसमें से गरीबों को मदद दी जायगी। और सौ रुपये हमने साहित्य-प्रचार के लिए रखे हैं। हम अच्छा साहित्य ऐसे विद्यार्थियों में मुफ्त बाँटना चाहते हैं, जो पढ़ने के लिए जिम्मेवार हैं।' इस तरह उन्होंने हमारे लिए कोई तकलीफ नहीं रखी। किस प्रकार, कितना बाँटना, यह सब योजना बना दी और कार्यकर्ता भी चुन लिया। सिर्फ वह योजना पसंद है या नहीं, इतना ही

हमें बताना है। इस तरह उन्होंने अपनी संपत्ति का हिस्सा तो दिया, लेकिन उसके साथ-साथ अपनी बुद्धि का भी हिस्सा दिया। यही बात हम चाहते हैं।

लोगों को मालूम नहीं कि इस आन्दोलन द्वारा कितना असाधारण नैतिक उत्थान हो रहा है। कई लोग हमसे पूछते हैं कि 'आपके हाथ में तो निरे, कोरे कागज ही रह जायँगे। दान का क्या होगा, मालूम नहीं।' लेकिन हम कहना चाहते हैं कि हमें अभी तक इतने दान-पत्र मिले, पर एक भी दाता ने यह नहीं कहा कि 'हमने दान तो दे दिया, पर अब पैसा नहीं दे सकते, लाचार हैं।' कारण इसका तरीका ही ऐसा है कि इसमें मानव का नैतिक उत्थान होता है। मेरी समझ में ही नहीं आता कि लोगों को ऐसी शंका ही क्यों आती है कि 'भूदान तो चला, पर शायद सम्पत्तिदान न चलेगा।' यह ठीक है कि दोनों काम एक साथ नहीं चलाये जा सकते थे। यही सोचकर हमने अब तक सिर्फ भूदान ही चलाया और सम्पत्तिदान की बातभर करते रहे। लेकिन कोरापुट जिले में बीस हजार एकड़ भूमि के दानपत्र मिलने से एक नैतिक वातावरण तैयार हो गया और देने की भावना निर्माण हुई है। इसलिए अब यहाँ आपको घर-घर से संपत्ति-दान भी मिलना चाहिए और वह जरूर मिलेगा।

संपत्तिवान् वास्तव में गरीब

लोगों को यह चिन्ता हो रही है कि बाबा श्रीमानों के पास की संपत्ति कैसे छीन पायेगा। किन्तु मैं उन्हें समझाना चाहता हूँ कि हम उनकी सम्पत्ति की कीमत ही खतम कर देंगे, तो फिर वह हमारे पास अपने मूल्य के लिए ढूँढ़ती आयेगी। श्रीमान् लोग हमारे पास आकर कहेंगे कि 'बाबा, कृपा कर हमारी संपत्ति लीजिये और हमें प्रतिष्ठा दीजिये।' आज तक फंड इकट्ठा करनेवाले पहले बड़े लोगों के पास पहुँचा करते थे। इसमें उन्हें नाहक इज्जत दी जाती थी। आखिर उनकी नीतिमत्ता ही क्या है? किसने, कितने शोषण से संपत्ति हासिल की, यह सब नहीं देखा जाता और पहला दान उनसे लेकर हम उन्हें प्रतिष्ठा देते हैं! फिर दूसरे लोग उस अन्दाज से अपने नाम पर उतना कम करके देते हैं। लेकिन हम इस तरह श्रीमानों को बेकार प्रतिष्ठा देना नहीं चाहते। हमारे कुछ

सर्वोत्तम मित्रों को, जिनके पास ढेर संपत्ति पड़ी है इस बात का रंज हो रहा है कि हमें उनकी संपत्ति का कुछ भी उपयोग नहीं हो रहा है। अगर बाबा उनसे दस-पाँच हजार रुपया माँग ले, तो वे बड़े प्रेम से दे देंगे। लेकिन बाबा ने उन्हें पत्र लिख दिया कि 'आप अपने हाथ की कती हुई एक गुंडी दे सकते हैं और वही दीजिये। हम जानते हैं कि आप दरिद्री हैं, इससे ज्यादा आप दे नहीं सकते। इसलिए कम-से-कम एक गुंडी अवश्य दीजिये।' इस तरह जहाँ संपत्ति की कीमत ही शून्य हो जाती है, वहाँ फिर वे लोग चाहने लगते हैं कि उसकी कीमत बिलकुल शून्य न हो जाय, बल्कि कुछ-न-कुछ अवश्य हो।

संपत्ति का मूल्य काल्पनिक

ये लोग समझते ही नहीं कि संपत्ति और जमीन में कितना फर्क है। कहते हैं कि बाबा जमीनवालों से जमीन माँगता है, तो संपत्तिवालों से संपत्ति क्यों नहीं लेता ? समझने की बात है कि भूमि वास्तविक लक्ष्मी है, उसका मूल्य काल्पनिक नहीं। किन्तु श्रीमानों के पास जो पैसा पड़ा है, उसका मूल्य काल्पनिक ही है, वास्तविक नहीं है। इसीलिए बाबा पहले जमीन बाँट देना और फिर सर्व-साधारण लोगों से संपत्तिदान हासिल करना चाहता है। पैसे का दान नहीं, बल्कि उन्होंने जो पैदा की हुई चीजें हैं, उनका दान ! फिर जिनके पास पैसा है, वे बाबा से आकर कहेंगे कि 'बाबा, हमने कुछ पैदा नहीं किया। हमारे पास इतनी शक्ति ही नहीं है। लेकिन हमारे पास कुछ पैसा पड़ा है। तो, कृपा कर उसे ले लीजिये।'

अभी कलकत्ते से एक भाई का दानपत्र आया था, जिसमें उसने लिखा था कि 'हम दो सौ रुपया देना चाहते हैं।' हमने वह दानपत्र वापस लौटा दिया और लिख दिया कि 'बाबा पैसा नहीं लेता।' फिर उसने दूसरा पत्र लिखा कि 'हमारे पैसे का 'साधन-दान' लीजिये।' तब हमने समझ लिया कि अब यह शरण आ गया है, तो शरणागत का रक्षण अवश्य करना चाहिए। इसलिए हमने उसे लिखा कि 'ठीक, आप साधन-दान दे सकते हैं।' अब हम उससे जो साधन माँगेंगे, उन्हें वही खरीदकर देगा, हम उन्हें खरीदने के पचड़े में न पड़ेंगे।

अगर हमने पैसा लिया होता और हम खुद साधन खरीदते, तो कोई यह आक्षेप उठा सकता कि 'बाबा ने सौ रुपये की चीज खरीदी, लेकिन पचास की ही है। इसलिए बाबा इसमें ठगा गया।' ये पूँजीवाले कहते हैं कि 'हम इन कार्यकर्ताओं को पैसे देते हैं, तो वे उसका उपयोग ही नहीं कर सकते, उन्हें उतनी अक्ल ही नहीं है।' हम कहते हैं कि हम कबूल करते हैं कि जिसे आप अक्ल कहते हैं, वह हमारे पास नहीं है। इसलिए हम आपका पैसा नहीं लेते, आप ही चीजें खरीदकर हमें दीजिये। लेकिन कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो कहते हैं कि 'हमें सिर्फ साठ रुपया तनख्वाह मिलती है और उसमें से पाँच रुपया देना चाहते है। पर हम खुद साधन नहीं खरीद सकते, इसलिए कृपा कर आप हमारे पाँच रुपये स्वीकार कीजिये, तो हमारी मुक्तता होगी। नहीं तो वे पाँच रुपये हमारे संसार में खर्च हो जायेंगे।' इस तरह के लोगों को सिर्फ मुक्ति देने के लिए हमने 'सर्व सेवा-संघ' को इजाजत दी है कि उनके पैसे स्वीकार कीजिये। इस तरह मैत्री के नाते ही हम उतना स्वीकार करते हैं।

मेरा जन्म संपत्ति को तोड़ने के लिए

संपत्ति-दान के इस विचार में 'सम्पत्ति' शब्द से आप भ्रम मे मत पड़िये। इसमें पैसे की कोई प्रतिष्ठा ही नहीं है। मैं तो अपने जीवन में यह महसूस करता हूँ कि मेरा जन्म इस सम्पत्ति को तोड़ने के लिए ही हुआ है और जमाने की भी यही माँग है। इसलिए आपको सम्पत्ति-दान बहुत मिलेगा। आज जिनसे मत्सर किया जाता है और जिनसे सम्पत्ति छीनने की बात की जाती है, वे भी आपके पास दौड़े आयेंगे। लेकिन यह तब होगा जब कि सम्पत्ति-दान की सेना खड़ी होगी। जब वे देखेंगे कि बीस हजार लोगों ने भूदान दिया है और पचीस हजार लोगों ने सम्पत्ति-दान, तो वे सोचेंगे कि हम कैसे अछूत रह सकते हैं। फिर वे आयेंगे और उनका दान हम स्वीकार करेंगे। यह एक अहिंसक प्रक्रिया है।

अपरिग्रह : महान् बँटा हुआ संग्रह

'अपरिग्रह' में कोई शक्ति है, यह हम लोगों ने अब तक महसूस नहीं किया है। हमने इतना ही महसूस किया कि अपरिग्रह में चिन्ता-मुक्ति है, इसलिए साधकों

को परिग्रह छोड़ना चाहिए। सम्पत्ति छोड़कर चिन्तन के लिए मुक्त होना चाहिए। जो ध्यान, अध्ययन आदि करना चाहते हैं, उन्हें सम्पत्ति से मुक्त रहना चाहिए। घर में पाँच कुर्सियाँ, दो टेबल और तीन अमुक हैं, तो सारा समय झाड़ू लगाने में ही जायगा और ध्यान के लिए मौका ही न आयेगा। इसलिए ऐसे परमार्थी लोगों को परिग्रह से मुक्त रहना चाहिए।

इस तरह हमने अपरिग्रह से चिन्ता-मुक्ति की ज्यादा अपेक्षा नहीं की, लेकिन हम अपरिग्रह की शक्ति दिखाना चाहते हैं। हम कहते हैं कि परिग्रह में वह शक्ति हर्गिज नहीं हो सकती, जो अपरिग्रह में है। इसकी मिसाल अपनी यह देह है। इस देह में सारा खून सर्वत्र बँटा हुआ है यानी इसमें अपरिग्रह है। अगर खून का परिग्रह हो जाय और किसी एक हिस्से में—पाँव में—खून का संग्रह हो जाय, तो उसे फूला हुआ पाँव कहेंगे। इस तरह परिग्रह में शक्ति हर्गिज नहीं, बल्कि दुर्बलता हो सकती है।

अपरिग्रह का अर्थ है, महान् बँटा हुआ परिग्रह। अपरिग्रह यानी अत्यन्त परिग्रह। 'अ' शब्द का अर्थ है अत्यन्त। हम कहते हैं कि अपरिग्रह की योजना में एक कौड़ी भी पड़ी नहीं रहेगी, हर क्षण उत्पादन में लगा रहेगा। मैंने देखा है कि यहाँ बच्चों के नाक में छेद होते और उसमें सोना पड़ा रहता है। इससे उतना देश का उत्पादन कम होता है। वह सोना खान में पड़ा था, तो क्या खराब था और यहाँ नाक में पड़ा है, तो क्या अच्छा है? अगर वह सुवर्ण उत्पादन के काम में आ जाय, तो जाहिर है कि उत्पादन बढ़ेगा।

मान लीजिये कि मैंने एक किताब पढ़ ली और वह दस साल तक मेरी संदूक में पड़ी रही, तो इस अपरिग्रह से दुनिया को क्या लाभ हुआ? जहाँ वह किताब मैंने पढ़ ली, वहीं फौरन दूसरे के पास जानी चाहिए और फिर वहाँ से तीसरे के पास! इस तरह होते-होते वह किताब फट जायगी, तो ज्ञान सर्वत्र फैल जायगा और किताब भी मुक्त हो जायगी। इसी तरह हमारी सम्पत्ति सर्वत्र सतत लोगों के काम आयेगी, तो उपयोग होगा और हम चिन्ता से मुक्त भी हो जायँगे। इस तरह अपरिग्रह में चिन्ता-मुक्ति के अलावा उत्पादन बढ़ाने की भी अपार

शक्ति है, क्योंकि वह सारा परिग्रह घर-घर बँट जायगा। इसलिए उससे साम्यावस्था, प्रेमभाव, निर्वैरता और अद्वेष पैदा होगा।

साराश, पहले के लोग इस अपरिग्रह से चिन्ता-मुक्ति, अद्वेष आदि जो चाहते थे, वह तो हम चाहेंगे ही; लेकिन उनके अलावा उससे उत्पादन बढ़ाने में भी मदद लेंगे। सम्पत्ति-दान के जरिये हम अपरिग्रह की यह शक्ति प्रत्यक्ष कर दिखाना चाहते हैं।

कुजेन्द्री
२६-६-'५५

शक्ति-यात्रा : ४८ :

बारिश भगवान् की कृपा है

परमेश्वर की ऐसी योजना थी कि बारिश के चार महीने हमारे इस जिले में बीतें। इस बीच एक वैदिक मंत्र का हम बहुत बार पाठ करते रहे, जब कि मेघ बरसते थे। उस मंत्र में ऋषि भगवान् से प्रार्थना करता है कि हम पर स्वर्ग से खूब वृष्टि हो और हमारी गति में कोई भी रुकावट न आये और हमारी इच्छाशक्ति सहस्रगुणित हो। बड़ा सुंदर मंत्र है वह! आप भी सुन लीजिये :

'स नो वृष्टिं दिवस्परि। स नो वाजमनर्वाणम्।
स नः सहस्रिणीरिषः।'

यह हम खूब जोर से चिल्लाते थे। स्वर्ग से जो बारिश बरसती है, वह भगवान् की हम पर कृपा है। चाहे उसके परिणामस्वरूप जोरों से बाढ़ क्यों न आये और अनर्थ ही क्यों न हो। उस बाढ़ में भी उसकी कृपा होती है। इसलिए बारिश का हम निरंतर स्वागत-सत्कार करते हैं।

दूसरी वस्तु ऋषि कहता है, हमारी गति में कोई बाधा नहीं आनी चाहिए। हमारे पाद-संचार में भी इस बारिश से कोई बाधा नहीं आयी और कार्यकर्ताओं में बड़ा आत्म-विश्वास पैदा हुआ। हर कोई समझते थे कि बारिश में प्रचार-कार्य ढीला पड़ जाता है। खास कर कोरापुट जैसे जिले में, जो मलेरिया के लिए

प्रसिद्ध है, विशेष प्रचार होने का विश्वास नहीं था। लेकिन हम प्रार्थना करते चले गये कि हमारी गति मे कोई बाधा न आये और वैसा ही हुआ।

तीसरी प्रार्थना ऋषि करता है कि ये जो बारिश की हजारों बूँदें हैं, उससे परमेश्वर का मानो हस्तस्पर्श होता है। इसलिए हमारी इच्छा शक्ति सहस्रगुणित होनी चाहिए। इस जिले में हमें जो अनुभव आया, उससे हमारी इच्छा-शक्ति अवश्य सहस्रगुणित हो गयी। क्योंकि जिस इच्छा-शक्ति का हम अनुभव करते थे, उसीका अनुभव सहस्र लोग करते थे। केवल व्यक्तिगत भी देखा जाय, तो भी हमारी इच्छा-शक्ति को बहुत बल मिला और वह बलवान् हुई।

शान्ति-युद्ध छिड़ गया है

बहुत खुशी की बात है कि इसके आगे यहाँ जो छह सौ गाँव मिले हैं, उनमें निर्माण चलेगा। फिर छह सौ गाँवों को छह हजार होने में क्या देर लगेगी? क्योंकि एक शून्य बढ़ने की ही बात है! इन गाँवों में जो रचनात्मक काम चलेगा, उसकी सुगंध सर्वत्र फैलेगी, तो उसकी छूत दूसरे गाँवों को लगे बगैर नहीं रहेगी। लेकिन इस छूत की कल्पना हम सीमित नहीं करते। यह छूत भले ही यहाँ के कुछ गाँवों को लगे या सिर्फ कोरापुट में लगे, लेकिन हमने तो यही अपेक्षा और आशा की है कि यह छूत सारी दुनिया को लगे। जहाँ भूमि-समस्या है और जहाँ नहीं है, दोनों जगह यह छूत लगनी चाहिए। क्योंकि आज समाज में जो विषमताएँ और अन्याय खड़े हैं, उनके खिलाफ यह शांति-युद्ध छिड़ गया है। कहा जाता है कि ये सारी विषमताएँ और अन्याय दुनिया में जब तक कायम रहेंगे, तब तक दुनिया में शांति नहीं हो सकती। लेकिन हम कहना चाहते हैं कि दुनिया में जब तक शांति की शक्ति प्रकट नहीं होती, तब तक ये अन्याय बंद नहीं होंगे। अन्याय और विषमताएँ मिटने पर शांति होगी, ऐसी पुरुषार्थहीन आशा हमने कभी नहीं रखी। हमने ऐसी ही पुरुषार्थमय कल्पना कर आशा व्यक्त की है कि हम शांति की शक्ति प्रकट करेंगे और उससे सारे अन्याय और विषमताएँ मिटेंगी। यहाँ के ग्रामीणों ने उसी शांति-शक्ति का शोध किया है। जब कभी नैतिक शक्ति का आविष्कार होता है, तब यह शांति-शक्ति क्षीण नहीं होती, बल्कि उसे अधिक-से-अधिक बल मिलता और वह सफल होती है

विश्व के अन्याय हममें भी

लोगों को भान नहीं है कि ऐसी कोई शक्ति है, जो दुनिया के अन्याय का मुकाबला कर सकती है। जब विषमताएँ और अन्याय चारों ओर देखते हैं, तो हम भूल जाते हैं कि वह हममें भी है। उधर तो हम विश्वशांति की बात करते हैं, लेकिन अपना क्रोध-द्वेष नहीं मिटाते। इस तरह विश्व-शान्ति की शक्ति हमारे पास मौजूद है और ये जो विश्व में अन्याय चलते हैं, उसके अंश भी हममें हैं। जब हम श्रीमानों के जरिये अन्याय होने का जिक्र करते हैं, तब स्वयं श्रीमान् होने की इच्छा भी करते हैं; क्योंकि वैसा अन्याय करने के लिए हम समर्थ होना चाहते हैं। और हमारे बहुत से भक्ति-मार्गी भी इसी तरह सोचते हैं। वे कहते हैं कि 'पापी लोग दुनिया में उत्कर्ष के शिखर पर बैठे हुए दीखते हैं और हम पुण्यवान् लोग विपत्ति में पड़े हैं। लेकिन इसका बदला स्वर्ग में मिलेगा और वहाँ हम उत्कर्ष की शिखर पर बैठेंगे और पापी विपत्ति में रहेंगे।' इसका मतलब यह हुआ कि लोग अपने को पापी नहीं समझते, लेकिन पापाभिलाषी होते हैं। वे पुण्य का फल दुनिया में यही समझते हैं कि खूब भोग भोगने को मिलना चाहिए। जो लोग आज खूब भोग भोगते और अन्याय करते हैं, वे पूर्वजन्म के पुण्यवान् हैं, ऐसा मानते हैं। इस तरह ये पुण्याचरणशील भी नहीं समझते कि पाप की जड़ें उनमें पड़ी हैं। गरीबों की तरफ से लड़नेवालों की यही गलती हो रही है। वे श्रीमानों का मत्सर करते और चाहते हैं कि श्रीमान् लोग त्याग करें, आसक्ति छोड़ें। लेकिन वे नहीं समझते कि आसक्ति उनमें भी पड़ी है। वे अगर छोटी-छोटी आसक्तियाँ छोड़ें, तो उनमें ऐसी नैतिक ताकत प्रकट होगी, जिससे दुनिया में चलनेवाले अन्याय और झगड़े मिट जायँगे।

यहाँ जो निर्माण-कार्य चलेगा, उसे इसी दृष्टि से देखिये। यह मत सोचिये कि यहाँ के लोगों का भौतिक स्तर कितना ऊपर उठेगा। अवश्य ही जिनका भौतिक स्तर नीचे है, उनका ऊपर उठाना चाहिए और वह होगा ही। पर मुख्य दृष्टि यह रखिये कि शान्ति की जो शक्ति प्रकट की गयी है, उसका विकास कैसे हो—यहाँ के लोगों का नैतिक स्तर कितना ऊपर उठेगा? हमें उम्मीद है कि जिन

कार्यकर्ताओं पर वर्षा सतत बरसती रही, वह उसी तरह बरसे, परमेश्वर की कृपा भी बरसती रहे और वे इसी तरह काम में लगे रहें।

ग्रामदान से सारे रचनात्मक कार्य फलेंगे

हमें इस यात्रा मे कोई तकलीफ हुई हो, तो याद नहीं है। पर यहाँ हमे चिंतन का बहुत मौका मिला और हमने महसूस किया कि उससे हमारी बहुत शक्ति बढ़ी है। इस तरह यह हमारी 'शक्ति-यात्रा' हुई, ऐसा हम कहते हैं। इसके आधार पर दुनिया के मसले हल करने की शक्ति भारत के हाथ में आ सकती है। हमारा यह विश्वास है कि कई छोटी-छोटी समस्याएँ सामने खड़ी रहती हैं, पर यह गुरु-कुंजी अगर हाथ में आ जाय, तो सभी हल हो जायँगी। इसीलिए हम भूदान पर एकाग्र हुए हैं, इसलिए नहीं कि हमारी वृत्ति ही एकाग्रता की है। *लेकिन हम समझते हैं कि यदि हम इसमें एकाग्र होकर दूसरे-तीसरे कामों को* फिलहाल दूर रखें, तो हम कुछ खोयेंगे नहीं। हमारे कुछ मित्र, जो कि रचनात्मक कार्य में प्रेम रखते हैं, हमें कहते है कि आप इसमें इतनी एकाग्रता मत रखिये, ताकि दूसरे कामों पर आपका ध्यान बिलकुल ही न जा सके। उनका जो रचनात्मक कार्य के लिए प्रेम है, यह देखकर हमें खुशी होती है। आप देखेंगे कि हमारे जाने के बाद यहाँ रचनात्मक कार्य जोरों से चलेगा। उसका इन्तजाम हमने कर दिया है। पर हम कहना चाहते हैं कि जब किसान अपने खेत में कुँआ खोदने में ध्यान देता है, तो उसका यह अर्थ नहीं होता कि वह खेत की ओर ध्यान ही नहीं देता है; बल्कि उसीके लिए वह कूप खोदने में समय देता है। इसी तरह यह ग्रामदान वह कूप है, जिसके पानी से शान्तिमय क्रान्ति या रचनात्मक कार्य फलेगा-फूलेगा!

जगन्नाथपुर (कोरापुट)
३०-१-'५५

THE SUVA PADAYATRA OF PUJYA VINOBAJI

IN WEST BENGAL

From 1st January to 25th January 195

विनोबाजीकी बंगालपद-यात्रा

Scale - 1" = 4 Miles

PADAYATRA indicates

अुत्कल में
विनोबा-क्रांतिपथ
२८-१-५५ से
स्केल १" = ३० माइल
ढेंकानाल

उप-शीर्षकों का अनुक्रम

भूदान-सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ

भूदान-यज्ञ (हिन्दी : साप्ताहिक)

संपादक : धीरेंद्र मजूमदार

पृष्ठ-संख्या १२ वार्षिक शुल्क ५)

इस साप्ताहिक में सर्वोदय, भूदान, खादी-ग्रामोद्योग, ग्राम-जीवन, अर्थ-स्वावलंबन-संबंधी विविध सामग्री का सुरुचिपूर्ण चयन रहता है।

भूदान-तहरीक (उर्दू : पाक्षिक)

संपादक : धीरेंद्र मजूमदार

पृष्ठ-संख्या ८ वार्षिक शुल्क २)

इसमें भूदान-संबंधी विचारों को उर्दूभाषी जनता के लिए सरल भाषा में दिया जाता है।

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी

भूदान (अंग्रेजी : साप्ताहिक)

संपादक : धीरेंद्र मजूमदार

पृष्ठ-संख्या ८ वार्षिक शुल्क ६)

भूदान-सम्बन्धी यह अंग्रेजी साप्ताहिक पूना से प्रकाशित होता है, जिसमें भूदान-यज्ञ की विविध प्रवृत्तियों का विवरण और विवेचन रहता है।

[OUR ENGLISH BOOKS]

Swaraj-Shastra	1—0
Bhoodan-Yajna (Navajivan)	1—8
Revolutionary Bhoodan-yajna	0—6
Principles and Philosophy of the Bhoodan	0—5
Voice of Vinoba	0—4
The Call of Puri-Sarvodaya-Sammelan	0—2
A Picture of Sarvodaya Social Order	0—6
Jeevan-Dan	0—2
Bhoodan as seen by the west	0—6
Bhoodan to Gramdan	0—6
Demand of the Times	0-12
Bhoodan-Yajna—the great Challenge of the age	0—4
Progress of a Pilgrimage	3—8
M. K. Gandhi	2—0
Why the Village Movement ?	3—8
Non-Violent Economy and World Peace	1—0
Lessons from Europe	0—8
Sarvodaya & World Peace	0—2
Banishing War	0—8
Currency Inflation-Its Cause and Cure	0-12
Economy of Permanence	3—0
Gandhian Economy and Other Essays	2—0
Our Food Problem	1—8
Overall Plan for Rural Development	1—8
Organisation and Accounts of Relief work	1—0
Philosophy of Work and Other Essays	0-12
Peace and Prosperity	1—0
Present Economic Situation	2—0
Peoples China What I Saw and Learnt there ?	0-12
Science and Progress	1—0
Stonewalls and Iron Bars	0—8
Unitary Basis for a Non-Violent Democracy	0-10
Women and Village Industries	0—4
Economics of Peace : the Cause and the Men	10-0
Peep Behind the Iron Curtain	1—8